MAHY-109

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

खण्ड – 1 स्वराज्य के लिए संघर्ष–1 03-70

इकाई 1 : प्रथम विश्वयुद्ध एवं राष्ट्रीय आन्दोलन 05

इकाई 2 : महात्मा गाँधी का आगमन 19

इकाई 3 : खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन 32

इकाई 4 : क्रांतिकारी दल का उदय 49

इकाई 5 : स्वराज्य दल, साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट 70

खण्ड – 2 स्वराज्य के लिए संघर्ष–2 91-201

इकाई 1 : भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास (1919 का भारत सरकार अधिनियम) 93

इकाई 2 : लोकसेवाओं और न्यायिक प्रशासन का विकास 110

इकाई 3 : सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं घटनाक्रम 139

इकाई 4 : 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम और कांग्रेसी मंत्रिमंडल 162

इकाई 5 : भारत छोड़ो आंदोलन 201

खण्ड – 3 स्वतन्त्रता और विभाजन 213-256

इकाई 1 : द्वितीय महायुद्ध और भारत 215

इकाई 2 : आजाद हिन्द फौज की स्थापना एवं कार्य 222

इकाई 3 : श्रमिक तथा कृषक आन्दोलन का विकास तथा वामपंथ और उसका योगदान 227

इकाई 4 : सत्ता हस्तान्तरण का घटनाक्रम 236

इकाई 5 : आजाद भारत और विश्व राजनीति 243

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

MAHY-109
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

खण्ड – 1
स्वराज्य के लिए संघर्ष–1

इकाई – 1
प्रथम विश्वयुद्ध एवं राष्ट्रीय आंदोलन 05

इकाई – 2
महात्मा गाँधी का आगमन 19

इकाई – 3
खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन 32

इकाई – 4
क्रांतिकारी दल का उदय 49

इकाई – 5
स्वराज्य दल, साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट 70

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार आचार्य — इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सत्यपाल यादव — सहायक आचार्य, इतिहास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(इकाई 1–5)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2022 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2021

ISBN : 978-93-94487-87-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित–२०२४

IOST-021

मुद्रक: सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

इकाई–1

प्रथम विश्वयुद्ध एवं राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई की रूपरेखा :

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारतीय संदर्भ में प्रथम विश्वयुद्ध का परिचय

 1.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीयों का योगदान

 1.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध से भारतीयों की आशाएँ

 1.3.3 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत की स्थिति

 1.3.4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति

1.4 गृहस्वशासन आंदोलन या गृहशासन आंदोलन

 1.4.1 एनी बेसेंट का जीवन परिचय एवं उदारवादियों व उग्रवादियों में मेल।

 1.4.2 गृहशासन आंदोलन का प्रारंभ

 1.4.3 गृहशासन आंदोलन का उद्देश्य

 1.4.4 गृहशासन आंदोलन की प्रगति

 1.4.5 गृहशासन आंदोलन का दमन

 1.4.6 गृहशासन आंदोलन की समाप्ति

 1.4.7 गृहशासन आंदोलन का महत्व

1.5 लखनऊ समझौता की पृष्ठभूमि

 1.5.1 मुस्लिम लीग की नीतियों में परिवर्तन

 1.5.2 लखनऊ समझौता का सम्पन्न होना

 1.5.3 लखनऊ समझौता के प्रमुख प्रावधान

 1.5.4 कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग की संयुक्त माँगे

 1.5.5 लखनऊ समझौता का मूल्यांकन – सकारात्मक पक्ष

 1.5.6 लखनऊ समझौता का मूल्यांकन – नकारात्मक पक्ष

1.6 मिसोपोटामिया आयोग प्रतिवेदन

1.7 मांटेग्यू घोषणा

1.8 सारांश

1.9 बोध प्रश्न

1.10 उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति की चर्चा करती है। यह अध्याय प्रथम विश्व युद्ध में भारत की भूमिका का विश्लेषण करने के साथ–साथ युद्ध का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा करती है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारत में आरंभ होने वाले गृहशासन आंदोलन पर प्रस्तुत इकाई विस्तार से चर्चा करने के साथ साथ लखनऊ समझौता, मेसोपोटामिया आयोग प्रतिवेदन एवं मांटेग्यू घोषणा का भी विशद वर्णन प्रस्तुत करती है।

1.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी बीसवीं सदी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति को समझ सकेंगे। शिक्षार्थी इस अध्ययन से प्रथम विश्व युद्ध में भारत की भूमिका एवं युद्ध का राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने में सक्षम होने के साथ साथ गृहशासन आंदोलन के उद्देश्य एवं महत्व को भी जान सकेंगे। मिसोपोटामिया आयोग प्रतिवेदन तथा मांटेग्यू घोषणा से शिक्षार्थियों का परिचय कराना भी अध्याय का उद्देश्य है।

1.3 भारतीय संदर्भ में प्रथम विश्वयुद्ध का परिचय

3 अगस्त 1914 ई0 को जर्मनी ने रूस व फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर प्रथम विश्वयुद्ध को प्रारम्भ कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध न केवल यूरोप की बल्कि विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस विश्वयुद्ध का भारत की राजनीतिक घटनाक्रम एवं इसके संवैधानिक विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। 1914 में विश्वयुद्ध आरम्भ होने के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उदारवादी दल के नेतृत्व में थी। अंग्रेजों ने यह घोषणा की कि वे संसार में लोकतंत्र को सुरक्षित रखने के लिए इस युद्ध को लड़ रहे हैं। चूँकि अंग्रेज अकेले युद्ध लड़ने में असमर्थ थे, अतः उन्होंने युद्ध के दौरान भारतीयों का पूर्ण सहयोग एवं समर्थन प्राप्त करने के लिए यह घोषणा की कि यदि भारतीय अंग्रेजों को सहयोग देते हैं तो युद्ध के बाद भारतीयों को स्वशासन संबंधी अधिकार दिये जायेंगे। कांग्रेस के उदारवादी नेताओं को लगा कि अंग्रेज संसार में लोकतंत्र को सुरक्षित करने के लिए लड़ रहे हैं तो वह भारत में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना अवश्य करेंगे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय लॉर्ड हार्डिंग

भारत के गवर्नर जनरल थे ; उन्होंने परिस्थिति को कुशलतापूर्वक अंग्रेजों के पक्ष में कर भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त कर ली। भारतीय देशी नरेशों और जनसाधारण ने युद्ध के दौरान अंग्रेजी सरकार को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

1.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीयों का योगदान

1914 में मद्रास कांग्रेस अधिवेशन के दौरान कांग्रेस अध्यक्ष भूपेन्द्रनाथ बसु ने कहा था कि भारत और ब्रिटेन न्याय, प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कंधा से कंधा मिलाकर एक विनाशक युद्ध लड़ रहे हैं। इस अधिवेशन में मद्रास के गवर्नर लॉर्ड ने भी भाग लिया तथा ब्रिटेन के प्रति पूर्ण भक्ति प्रदर्शित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इसी अधिवेशन में अपने भाषण में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा ''स्वशासन जो कि हमारी राजनीतिक आकांक्षाओं का लक्ष्य था, उसकी शर्त आत्मरक्षा है और यदि हम शाही नागरिकता के विशेष अधिकारों की इच्छा करते हैं तो हमें इसकी जिम्मेदारियों तथा बोझ को भी सहन करना चाहिए और उनमें सबसे अधिक साम्राज्य की प्रतिरक्षा के लिए लड़ना है।''

27 अगस्त 1914 ई0 को लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने कहा था कि ''ऐसे संकट के समय प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्तव्य है चाहे वह बड़ा हो अथवा छोटा, धनवान हो या निर्धन, कि वह ब्रिटिश को अपना समर्थन तथा सहायता अपनी अधिकतम योग्यता के अनुसार दें। महात्मा गांधी ने युद्ध के दौरान सेना में भर्ती होकर अंग्रेजों के तरफ से युद्ध में लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। इस कारण उन्हें ''सार्जेंट मेजर'' कहा जाने लगा। भारत सरकार ने युद्ध के दौरान सहायता के रूप ब्रिटिश सरकार को 3,00,00,000 पौंड की विशाल धनराशि भारत के राजकोष से दी जबकि भारतीय जनता ने 7,50,00,000 पौंड की धनराशि चंदा स्वरूप ब्रिटिश सरकार को दिया।

1.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध से भारतीयों की आशाएँ

युद्ध से भारतीय जनता एवं नेताओं को अपनी काफी आकांक्षाओं के पूरा होने की आशा थी। भारतीय नेताओं को स्वशासन प्राप्त करने की आकांक्षा थी। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एस्क्विथ के आश्वासनों ने के युद्ध के बाद भारतीयों की समस्याओं पर गहराई से विचार किया जाएगा तथा बाद में अगले प्रधानमंत्री लॉर्ड जॉर्ज की इस घोषणा ने कि आत्म निर्णय का सिद्धांत उष्णकटिबंधीय देशों पर भी लागू किया जाएगा, ने भारतीय जनता में एक नई आशा और उत्साह का संचार किया। उन्होंने स्वशासन की माँग करना शुरू कर दिया। भारतीयों को आशा थी कि युद्ध समाप्ति के बाद भारतीयों को ब्रिटिश शासन के अंतर्गत स्वशासन का अधिकर दे दिया जाएगा। इस आशा में भारतीयों ने युद्ध के दौरान हर प्रकार से ब्रिटिश शासन को पूर्ण सहयोग एवं समर्थन दिया।

1.3.3 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत की स्थिति

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय जनता ने साढ़े सात करोड़ पौण्ड की विशाल धनराशि युद्ध लड़ने के लिए ब्रिटिश सरकार को चंदास्वरूप दिया। इसका भारत की जनता की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वे आर्थिक रूप से और कमजोर हो गए, वस्तुओं के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि हो गई। आम जनता इस स्थिति में भी नहीं थी कि वह जीवनयापन के लिए आधारभूत वस्तुओं का क्रय कर सकें। भारतीय नवयुवक जिन पर कृषि कार्य का उत्तरदायित्व था, उनके द्वारा अधिकाधिक संख्या में सेना में भर्ती होकर युद्ध में लड़ने चले जाने से कृषि कार्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। दूसरी तरफ युद्ध के दौरान प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा और अकाल से भी कृषि चौपट हो गई। इससे भारत में भूखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गई। भारतीय जनसंख्या का बड़ा भाग इसका शिकार होने लगा। भारत सरकार भारतीयों का पैसा युद्ध में बेतहाशा खर्च कर रही थी किंतु भारत सरकार ने भारतीयों की स्थिति में सुधार करने की दिशा में कोई ध्यान नहीं दिया। भारतीयों की स्थिति दयनीय बनी रही।

1.3.4 प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति

प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। युद्ध के कारण भारतीयों की राजनीतिक चेतना जागृत हो गयी तथा उन्होंने स्वशासन की माँग करना प्रारम्भ कर दिया। युद्ध के दौरान ही तिलक ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए भारतीयों से अधिकाधिक सहयोग एवं समर्थन चाहती थी किंतु बदले में भारतीयों को कुछ भी देने के लिए तत्पर नहीं थी। वह भारतीयों की माँगों के प्रति पूर्णतया उदासीन थी। तिलक ने भारतीयों के स्वशासन प्राप्ति की माँग को लेकर अपना आवाज बुलंद किया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों की आलोचना की तथा उस पर प्रश्न उठाया। उन्होंने कहा कि ''भारतीय बिना शर्त युद्ध में अंग्रेजों को सहायता दे रहे हैं जबकि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के संबंध में भेदभाव की नीति को जारी रखी हुई है''। उन्होंने केसरी में लिखा कि ''हम ब्रिटिश सरकार से यह पूछना चाहते हैं कि वह भारतीयों के लिए वास्तव में न्याय करना चाहती है या वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें केवल सैनिक बनाना चाहती है। यह देखना अभी बाकी है कि सरकार भारतीय नेताओं द्वारा स्वराज्य के लिए की गई विभिन्न अपीलों को स्वीकार करती है या नहीं।'' तिलक ने स्वशासन प्राप्त करने के लिए एक आंदोलन चलाने की आवश्यकता को अनुभव किया तथा उसके लिए प्रयास प्ररम्भ कर दिया।

1.4.1 गृह स्वशासन आंदोलन (Home Rule Movement)

नरम और गरम दल में मेल :– 1907 के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस नरम दल और

गरम दल में विभाजित हो गया था। 1915 ई0 तक गरम दल कांग्रेस से पृथक अपना आंदोलन चलता रहा। 1916 ई0 में ऐनी बेसेंट के प्रयासों से इन दोनों दलों का एकीकरण संभव हो सका। 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

एनी बेसेंट का जीवन परिचय – एनी बेसेंट एक आइरिश महिला थी। इनका जन्म 1847 में लंदन में हुआ था। 15 वर्ष की आयु में ही इनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। इनके बचपन का नाम एनी वुड था। 1867 में 20 वर्ष की आयु में एक पादरी फ्रेंक बेसेन्ट से इनका विवाह हो गया और अब वे एनी वुड से एनी बेसेन्ट कहलायी। पादरी पति से धार्मिक एवं वैचारिक मतभेद होने के कारण 1873 में उनका पति से तलाक हो गया तथा वे गरीबों के कल्याण करने हेतु नेशनल सेक्युलर सोसायटी से जुड़ गयी। 1891 में थियोसोफीकल सोसायटी के प्रमुख ब्लेबटस्की की मृत्यु के बाद इस संगठन का प्रधान कार्यालय भारत के अड्यार (मद्रास) में स्थानांतरित हो जाने पर वे भी स्थायी रूप से भारत आ गई। बाद में इस संगठन का कार्यालय वाराणसी स्थापित हो जाने पर वे वाराणसी में रहने लगी। 1907 से 1933 तक वह थियोसोफीकल सोसायटी की अध्यक्ष बनी रही। एनी बेसेंट आयरलैंड की स्वतंत्रता के लिए आयरिश नेता रेडमांड के नेतृत्व में चलाई गई गृहशासन (होमरूल) आंदोलन से काफी प्रभावित थी। इस आंदोलन के अंतर्गत आयरलैंड में वैधानिक एवं शांतिपूर्ण तरीके से स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयास किया गया था। एनी बेसेंट भी भारत में गृहशासन (होमरूल) आंदोलन चलाने की इच्छुक थी। इस समय नरम दल एवं गरम दल दोनों अलग–अलग कार्य कर रहे थे। एनी बेसेन्ट उग्रवादियों के साथ मिलकर गृहशासन (होमरूल) आंदोलन चलाना चाहती थी। भारत की राजनीतिक का अध्ययन करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आंदोलन को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए दो दलों को संगठित करना अत्यंत आवश्यक है। इस उद्देश्य से एनी बेसेन्ट कांग्रेस के लिए दो दलों को संगठित करना अत्यंत आवश्यक है। इस उद्देश्य से एनी बेसेन्ट कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में एनी बेसेंट कांग्रेस के नियमावली में एक ऐसा संशोधन करने में सफल हुई जिनके द्वारा उग्रवादियों का कांग्रेस में मेल संभव हो सका। एनी बेंसेंट के प्रयासों से तिलक को पुनः कांग्रेस में सम्मिलित कर लिया गया तथा कांग्रेस में पुनः एकता स्थापित हो गई। एनी बेसेंट के इस कार्य से राष्ट्रीय आंदोलन को पर्याप्त मजबूती मिली। आगे चलकर 1917 के कलकत्ता अधिवेशन में ऐनी बेसेंट कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित हुई। वह कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष थी।

1.4.2 होमरूल आंदोलन का प्रारम्भ

1908 में तिलक को गिरफ्तार कर उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया था। 16 जून 1914 में तिलक को रिहा कर दिया गया । इस समय प्रथम

विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो चुका था जिसके कारण ब्रिटिश सरकार संकटमय स्थिति से गुजर रही थी। उग्रवादियों ने इसे स्वराज्य स्वायत्त शासन प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त समय समझा तथा वे पुनः तिलक के नेतृत्व में संगठित होने लगे। सर्वप्रथम बालगंगाधर तिलक ने होमरूल आंदोलन की शुरूआत की। उन्होंने 28 अप्रैल 1916 ई0 को महाराष्ट्र के पूना स्थित बेलगाँव में होमरूल लीग की स्थापना की। पाँच माह बाद सितम्बर 1916 में ऐनी बेसेंट ने मद्रास में अखिल भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की। चूँकि दोनों संगठनों का उद्देश्य समान ही थी, अतः 1916 में लखनऊ अधिवेशन के बाद गंगाधर तिलक एवं ऐनी बेसेंट ने एक साथ होमरूल आंदोलन चलाने का निश्चय किया। दोनों संगठनों को संयुक्त कर दिया गया तथा होमरूल आंदोलन को एक नवीन दिशा प्रदान की गई।

1.4.3 गृहशासन आंदोलन का उद्देश्य

गृहशासन आंदोलन एक वैधानिक आंदोलन था। यह आंदोलन शांतिपूर्ण एवं वैधानिक ढंग से अपनी माँगों को सरकार के समक्ष रखना चाहते थे। गृहशासन आंदोलन को चलाने का प्रमुख उद्देश्य –

(i) भारतीयों को स्वशासन का अधिकार दिलाना।

(ii) स्थानीय संस्थाओं एवं विधान परिषदों में जनप्रतिनिधियों का शासन स्थापित करना।

(iii) भारतीय युद्ध में अंग्रेजों को तभी सहायता देंगे जब अंग्रेज भारतीयों को स्वशासन देंगे। इस भावना का जनता में प्रचार कर उन्हें आंदोलन के लिए तैयार करना।

(iv) भारतीय राजनीति को उग्रधारा की ओर जाने से रोकना।

(v) उग्रवादियों को क्रांतिकारियों के प्रभाव से मुक्त कर उन्हें शांतिपूर्ण तरीके से आंदोलन करने के लिए प्रेरित करना।

(vi) भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्र गति प्रदान करना।

(vii) जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करना।

गृहशासन आंदोलन एक अधिकारपूर्ण माँग की अभिव्यक्ति था। भारत के लिए स्वशासन की माँग एक याचना नहीं थी बल्कि स्वशासन की प्राप्ति भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार था। तिलक ने कहा था कि ''स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा।'' बेसेंट ने भी कहा कि ''भारत एक जाति के रूप में इस बात का दावा करता है कि उसे साम्राज्य के लोगों में न्याय का अधिकार प्रदान किया जाय। भारत ने इसके लिए युद्ध से पूर्व माँग की थी और अभी भी इसकी माँग कर रहा है और युद्ध के बाद भी करेगा किंतु किसी पारितोषिक के रूप में नहीं

बल्कि अधिकार के रूप में।''

1.4.4 गृहशासन आंदोलन की प्रगति

बाल गंगाधर तिलक एवं एनी बंसेंट ने संयुक्त रूप से गृहशासन आंदोलन की शुरूआत की। देश के विभिन्न भागों में होमरूल लीग की शाखाएँ स्थापित की गई। दोनों नेताओं ने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण कर गृहशासन आंदोलन का प्रचार–प्रसार किया। दोनों ने सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दिया। विभिन्न देशी सामाचार पत्रों ने भी होमरूल आंदोलन के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। एनी बेसेंट ने न्यू इंडिया नामक दैनिक पत्र एवं कामन वील नामक साप्ताहिक पत्र द्वारा तथा बाल गंगाधर तिलक ने केसरी नामक दैनिक पत्र एवं मराठा नामक साप्ताहिक पत्र द्वारा वृहत स्तर पर गृहशासन आंदोलन का प्रचार–प्रसार किया। दोनों नेताओं के संयुक्त प्रयासों से गृहशासन आंदोलन का घर–घर में प्रचार हो गया। संपूर्ण देश में आंदोलन का वातावरण उत्पन्न हो गया। जनता आंदोलन में भाग लेने के लिए उत्तेजित हो गई। शीघ्र ही गृहशासन पूरे देश में फैल गया तथा ब्रिटिश सरकार जो प्रथम विश्वयुद्ध में व्यस्त थी, के समक्ष एक गंभीर राजनैतिक संकट उपस्थित कर दिया। 1917 में लीग के सदस्यों की संख्या करीब 27,000 तक पहुँच गयी।

1.4.5 गृहशासन आंदोलन का दमन

1917 ई0 में गृहशासन आंदोलन अपनी प्रगति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। गृहशासन आंदोलन एक वैधानिक एवं शांतिपूर्ण आंदोलन था जिसका सर्वप्रमुख उद्देश्य भारत में स्वशासन की स्थापना करना था। इस आंदोलन ने भारत के राजनीति को अत्यधिक उत्तेजित कर ब्रिटिश सरकार के समक्ष संकट उत्पन्न कर दिया। जनता में गृहशासन आंदोलन तेजी से लोकप्रिय हो रहा था। युद्ध के दौरान यह स्थिति ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध हो सकती थी, अतः ब्रिटिश सरकार ने कठोरतापूर्वक गृहशासन आंदोलन का दमन करना प्रारम्भ कर दिया। एनी बेसेंट एवं उनके दो सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया तथा बाल गंगाधर तिलक को पंजाब एवं दिल्ली में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। एनी बेसेंट एवं तिलक द्वारा संचालित की जाने वाली समाचार पत्रों से जमानत की माँग की गई तथा उन्हें जब्त कर लेने की चेतावनी दी गई। होमरूल लीग द्वारा आयोजित सभाओं में छात्रों, सरकारी कर्मचारियों एवं जनता के भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सरकार के इस दमनात्मक कारवाई से देश में ब्रिटिश सरकार का विरोध होने लगा। कांग्रेस ने भी सरकार की दमनकारी नीतियों की तीव्र आलोचना की तथा सरकार से नजरबंद नेताओं को मुक्त करने की मांग की और अपनी मांग न मानने पर सरकार के विरूद्ध सत्याग्रह चलाने की चेतावनी दी।

1.4.6 गृहशासन आंदोलन की समाप्ति

चूँकि इस समय प्रथम विश्वयुद्ध प्रगति पर था तथा युद्ध में ब्रिटेन की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। ब्रिटिश सरकार को भारतीयों तथा कांग्रेस के सहयोग एवं समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता थी। इस प्रतिकूल स्थिति में यदि कांग्रेस सरकार के विरूद्ध आंदोलन शुरू कर देती तो ब्रिटिश सरकार की मुश्किलें और अधिक बढ़ जाती। इस प्रतिकूल परिस्थिति को अपने पक्ष में करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने टालने की नीति अपनायी। तत्कालीन भारत मंत्री मांटेग्यू ने 20 अगस्त 1917 यह घोषणा की कि प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के उपरांत भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जायेगी। इस घोषणा से भारतीयों में यह आशा बँध गई की शीघ्र ही भारत में संवैधानिक सुधारों का दौर शुरू होगा। ब्रिटिश सरकार के इस घोषणा से गृहशासन आंदोलन की गति तेजी से मंद होने लगा तथा आंदोलनकारियों का उत्साह ठंडा पड़ने लगा। शीघ्र ही यह आंदोलन स्वतः ही समाप्त हो गया।

1.4.7 गृहशासन आंदोलन का महत्व

होमरूल आंदोलन जितनी तेजी से फैला, उतनी ही तेजी से समाप्त भी हो गया। इसका भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। इस आंदोलन ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत की। इसने भारतीयों को सुषुप्तावस्था से जगाया तथा राष्ट्रीय आंदोलन को नई गति प्रदान की और ब्रिटिश सरकार को संवैधानिक सुधार योजना लागू करने के लिए बाध्य किया। वर्ष 1919 में भारत सरकार अधिनियम 1919 पारित कर भारत के संवैधानिक विकास के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया गया।

1.5 1916 ई0 कांग्रेस–लीग समझौता (CONGRESS-LEAGUE PACT)

लखनऊ समझौते की पृष्ठभूमि – 1909 ई0 के मॉर्ले–मिन्टो सुधार से मुस्लिम लीग की नीतियों में तेजी से परिवर्तन हुआ। मुस्लिम लीग 1909 के सुधारों से असंतुष्ट थी। कांग्रेस के प्रयासों के फलस्वरूप शिक्षित एवं राष्ट्रवादी मुसलमानों ने स्वतंत्र एवं राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को अपनाना शुरू कर दिया। मुसलमानों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप वे भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित होने लगे। इसका प्रभाव मुस्लिम लीग की नीतियों एवं उद्देश्यों पर भी पड़ा। धीरे–धीरे मुस्लिम लीग पृथकता की नीति से दूर होने लगी और प्रगतिवादी एवं राष्ट्रीय नीति को अपनाने लगी। पृथकतावादी नीति को त्यागने के फलस्वरूप मुस्लिम लीग कांग्रेस के निकट आने लगी तथा उसने भी उत्तरदायी शासन की माँग करना प्रारम्भ कर दिया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ मिलजुलकर काम करने लगी। इससे कांग्रेस के

साम्राज्यवादी विरोधी अभियान को गति मिली।

1.5.1 मुस्लिम लीग की नीतियों में परिवर्तन

मुस्लिम लीग में 1909 के बाद राष्ट्रवादियों का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा जिसके फलस्वरूप लीग के उद्देश्यों में व्यापक परिवर्तन आया तथा वह राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेस के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने के लिए प्रेरित हुई। 1913 में लीग ने अपने अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया कि लीग का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति है। 1913 में जिन्ना मुस्लिम लीग में शामिल हुए तथा उन्होंने उसी वर्ष लीग के अधिवेशन में हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेस का साथ देने की जोरदार वकालत की जिसके फलस्वरूप 1913 में लीग ने औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति को अपना उद्देश्य घोषित किया। 1914 के अपने अधिवेशन में लीग ने यह प्रस्ताव पारित किया कि वह अन्य जातियों के नेताओं के साथ देश के राजनीतिक हितों को ध्यान में रखते हुए कार्य करेगी। 1915 में मुस्लिम लीग का अधिवेशन बम्बई में आयोजित किया गया जहाँ उसी वर्ष कांग्रेस का भी वार्षिक अधिवेशन चल रहा था। लीग के इसी अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय लिया गया कि भारत में शासन–सुधार की एक ऐसी योजना तैयार की जाए जिसकी प्राप्ति के लिए कांग्रेस एवं लीग साथ कार्य कर सके। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लीग के उद्देश्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया तथा वह कांग्रेस के निकट आ गई। कांग्रेस ने भी एक प्रस्ताव पारित कर अपनी महासभा को निर्देश दिया कि वह लीग के साथ परामर्श कर एक ऐसी सुधार योजना प्रस्तुत करें जो कांग्रेस एवं लीग दोनों के लिए स्वीकार्य हो। सुधार योजना को तैयार करने के लिए दोनों दलों की संयुक्त समिति गठित की गई जिसने 1916 में सुधार योजना प्रस्तुत की।

1.5.2 1916 ई0 लखनऊ समझौता (Lucknow Pact)

मोहम्मद अली जिन्ना 1913 में लीग में शामिल हुए तथा 1916 के लखनऊ अधिवेशन ने लीग के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। लीग एवं कांग्रेस का संयुक्त अधिवेशन 1916 में लखनऊ में आयोजित किया गया। मोहम्मद अली जिन्ना ने अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष की हैसियत से संवैधानिक सुधारों की संयुक्त कांग्रेस–लीग योजना पेश की। इस योजना के अंतर्गत कांग्रेस–लीग समझौते से मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र तथा जिन प्रांतों में वे अल्पसंख्यक थे, वहाँ पर उन्हें अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई। दोनों दलों ने 1915 में गठित की गई संयुक्त समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कांग्रेस एवं लीग में 1916 के अधिवेशन में जो समझौता हुआ, वह भारतीय इतिहास में लखनऊ समझौता के नाम से प्रसिद्ध है। कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (1916) की अध्यक्षता अंबिका चरण मजूमदार ने की थी। इस समझौते में भारत सरकार के ढाँचे

और हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच संबंधों के बारे में प्रावधान था। मोहम्मद अली जिन्ना और बाल गंगाधर तिलक इस समझौते के प्रमुख निर्माता थे। भारतीय राजनीति में एक प्रभावशाली नेता के रूप में जिन्ना का उदय 1916 के लखनऊ अधिवेशन में ही हुआ। लखनऊ समझौता दिसंबर 1916 में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के मध्य संपन्न किया गया था जिसे 29 दिसम्बर 1916 को लखनऊ अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा और 31 दिसम्बर 1916 को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा पारित किया गया था। इस समझौते ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को बल दिया। कांग्रेस और लीग की यह निकटता असहयोग आंदोलन के स्थगित होने तक बनी रही।

1.5.3 लखनऊ समझौता के प्रमुख प्रावधान

लीग एवं कांग्रेस के मध्य संपन्न किये गये लखनऊ समझौते के मुख्य प्रावधान निम्न थे।

(1) कांग्रेस द्वारा उत्तरदायी शासन की माँग को लीग ने स्वीकार कर लिया।

(2) कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन व्यवस्था की माँग को स्वीकार कर लिया।

(3) प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं ने निर्वाचित भारतीय सदस्यों की कुल संख्या का 33 प्रतिशत स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित कर दी गई जो निम्न थी–

पंजाब में 50 प्रतिशत बंगाल में 40 प्रतिशत बम्बई सहित सिंध में 33 प्रतिशत

संयुक्त प्रान्त में 30 प्रतिशत बिहार में 25 प्रतिशत मध्यप्रदेश में 15 प्रतिशत

मद्रास में 15 प्रतिशत

(4) केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा में कुल निर्वाचित भारतीय सदस्यों का 1/9 भाग मुसलमानों के लिए आरक्षित कर दिया गया तथा इनके निर्वाचन हेतु सांप्रदायिक चुनाव व्यवस्था स्वीकार कर ली गई।

(5) यह निश्चित किया गया कि यदि सभा में कोई प्रस्ताव किसी सम्प्रदाय के हितों के विरूद्ध हो तथा 3/4 सदस्य उस आधार पर उसका विरोध करें तो संबंधित प्रस्ताव को पारित नहीं किया जायेगा।

1.5.4 कांग्रेस एवं लीग की संयुक्त माँगे

दिसम्बर 1916 के लखनऊ समझौते के फलस्वरूप एक ओर मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ सरकार के समक्ष संयुक्त रूप से संवैधानिक माँगों का प्रस्ताव पेश करने पर सहमत हो गयी, वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की पृथक

निर्वाचन व्यवस्था की माँग को स्वीकार कर लिया। लखनऊ समझौते के बाद कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग दोनों ने सरकार के समक्ष अपनी संयुक्त माँगे पेश की जो निम्न थी–

- ब्रिटिश सरकार भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण स्वशासन देने की घोषणा शीघ्र करें।
- प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित भारतीयों की संख्या बढ़ाई जाये और उन्हें अधिक अधिकार प्रदान किये जायें।
- वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में आधे से अधिक सदस्य भारतीय हो।

1.5.5 लखनऊ समझौते का सकारात्मक पक्ष

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार ''भारत के इतिहास में यह सुनहरा दिन था।''

कांग्रेस–लीग समझौता राष्ट्रीय एकता की दिशा में एक बहुत बड़ा कदम था। इस समझौते का लाभ यह हुआ कि अल्पसंख्यकों के मन से बहुसंख्यक हिन्दुओं का भय दूर हो गया। समझौते के बाद मुसलमान यह मानने लगे कि उनके हितों को अब हिन्दुओं से कोई खतरा नहीं है। समझौते से भारतीयों में एकता की नयी भावना का विकास हुआ। इससे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को नयी ताकत एवं गति मिली। समझौते के बाद स्थापित हुई एकता को सरकार ने भी महसूस किया तथा उसने भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा में कदम बढ़ाया। इसी उद्देश्य से 20 अगस्त 1917 को मांटेग्यू घोषणा सार्वजनिक की गई।

1.5.6 लखनऊ समझौते का नकारात्मक पक्ष

लखनऊ समझौता मुसलमानों को संतुष्ट करने की कांग्रेस की नीति का प्रतिफल था। लखनऊ के एतिहासिक समझौते के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने एक संयुक्त राजनीतिक मंच का गठन तो कर लिया किंतु इस समझौते के प्रावधानों के निर्धारण में दूरदर्शिता का पूर्ण अभाव परिलक्षित हुआ। कांग्रेस द्वारा लीग की प्रस्तावित सांप्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था को स्वीकार कर लिये जाने से भारतीय राजनीति में दो अलग–अलग दिशाओं का युग प्रारम्भ हुआ। लखनऊ समझौते में कांग्रेस तथा लीग के नेताओं ने आपस में एकता की व्यवस्था तो कर ली किंतु हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदाय के लोगों को नजदीक लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। प्रारम्भ से ही कांग्रेस पृथकतावादी प्रवृत्ति एवं सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के विरूद्ध थी किंतु लखनऊ समझौते के बाद उसे इस नीति को त्यागना पड़ा। मुसलमानों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत स्वीकार करके कांग्रेस ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि मुसलमान एक पृथक राष्ट्रीयता है। इस प्रावधान ने द्विराष्ट्र सिद्धांत की अवधारणा को अंकुरित कर दिया।

मुस्लिम लीग की इस माँग को कि मुसलमान प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए सिर्फ मुसलमान ही मत दे तथा विभिन्न प्रांतों में जनसंख्या के अनुपात से अधिक मुसलमानों को प्रतिनिधित्व दिया जाय, को कांग्रेस ने मानकर मुस्लिम लीग एवं सांप्रदायिकता के सामने स्वेच्छा से अपना सिर टेक दिया। लखनऊ समझौते की आलोचना करते हुए ईश्वरी प्रसाद ने कहा है ''समझौता कांग्रेस द्वारा लीग को संतुष्ट करने की नीति का प्रारम्भ था।''

कांग्रेस ने मुसलमानों को प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में जो रियायतें दी थी वही 1919 में मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार का आधार बना जिसके अंतर्गत मुसलमानों को लखनऊ समझौता की अपेक्षा अधिक स्थान एवं अधिकार प्रदान किया गया। इससे भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

1.6 मेसोपोटामिया आयोग रिपोर्ट

होमरूल आंदोलन जिस समय अपनी प्रगति के चरमोत्कर्ष पर थी, उसी समय मेसोपोटामिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इस आयोग की रिपोर्ट ने भारत की राजनीतिक वातावरण और अधिक उत्तेजित कर दिया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में भारत सरकार द्वारा संचालित मेसोपोटामिया अभियान की विफलता के लिए भारत सरकार को जिम्मेदार ठहराया। उसने भारत सरकार को अकुशल सिद्ध किया तथा शासन में सुधार करना अनिवार्य बताया। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की मित्रराष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध लड़ रहा था। तुर्की के विरूद्ध होने वाले युद्ध का संचालन भारत सरकार कर रही थी। युद्ध संचालन में व्यापक दोष थे। सैनिकों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दी गई थी तथा उन्हें दयनीय स्थिति में युद्ध लड़ना पड़ रहा था। इसकी जानकारी मिलने पर इंग्लैण्ड में काफी विवाद हुआ तथा भारत सरकार की तीव्र आलोचना हुई। इस घटना की जाँच करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने मेसोपोटामिया आयोग की नियुक्ति की। कमीशन ने अपनी जाँच में आरोप को सही पाया तथा इन दोषों के लिए भारत सरकार को दोषी ठहराया। उसने रिपोर्ट में भारत की तत्कालीन शासन प्रणाली को पूर्णतया दोषपूर्ण कहा तथा उसमें व्यापक सुधार करने की सिफारिश की। इस रिपोर्ट के सार्वजनिक होने के बाद तत्कालीन भारत सचिव चेम्बरलेन को त्यागपत्र देना पड़ा उनके स्थान पर लॉर्ड मांटेग्यू को भारत सचिव नियुक्त किया गया।

1.7 माँटेग्यू घोषणा (1917 ई0)

गृहशासन आंदोलन, कांग्रेस–लीग समझौता, उदारवादियों एवं उग्रवादियों में एकता स्थापित होने, कांग्रेस में उग्रवादियों का प्रमुख स्थापित होने तथा मेसोपोटामिया आयोग की रिपोर्ट ने ब्रिटिश सरकार को भारतीय शासन प्रणाली में सुधार करने के लिए बाध्य कर दिया। नवनियुक्त भारत सचिव लॉर्ड मांटेग्यू प्रगतिशील विचारों के थे। उन्होंने 20 अगस्त 1917 ई0 को ब्रिटिश संसद में

ऐतिहासिक घोषणा की। इस घोषणा की प्रमुख बातें निम्न थी –

(1) सम्राट सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, यह है कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का संपर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे–धीरे विकास हो जिससे अधिकाधिक प्रगति करते हुए शासन प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में बना रहे।

(2) क्रमिक विकास द्वारा ही भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय।

(3) ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार उत्तरदायी शासन की दिशा में प्रगति के प्रत्येक चरण का निर्णय कर सकती है जिन पर भारतीय जनता की समृद्धि और भारत का उत्तरदायित्व है।

(4) भारतीय व्यक्तियों द्वारा दिये गये सहयोग और उनके द्वारा दिये गये उत्तरदायित्व के परिचय के आधार पर ही इस संबंध में ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्णय लिया जाएगा। इस घोषणा के बाद भारत सचिव मांटेग्यू ने वायसराय चेम्सफोर्ड के साथ नवम्बर 1917 में भारत की यात्रा की तथा भारत के शासन व्यवस्था में सुधार के संबंध में एक प्रारूप तैयार किया जो माण्टफोर्ड प्रतिवेदन के नाम से जाना जाता है। यही प्रतिवेदन 1919 के भारत शासन अधिनियम का आधार बना। यह घोषणा भारत में नवीन संवैधानिक सुधार की शुरूआत थी। उदारवादियों ने मांटेग्यू घोषणा का स्वागत किया तथा इसे भारत का ''मैग्नाकार्टा'' कहा। वहीं दूसरी ओर इस घोषणापत्र की कमियों के कारण उग्रवादियों ने इसका विरोध तथा इसे भारतीयों के हितों एवं आकांक्षाओं के विरूद्ध माना। अनेक कमियों के बावजूद भारतीय इतिहास में मांटेग्यू घोषणा का महत्वपूर्ण स्थान है। इसने भारत के संवैधानिक विकास की दिशा में एक नए युग की शुरूआत की। 1919 के सुधारों को लेकर कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न हो गया जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस में द्वितीय विभाजन हो गया। 1918 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में कांग्रेस के उदारवादी नेताओं ने मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों का स्वागत किया तथा कांग्रेस से अलग होकर अखिल भारतीय उदारवादी संघ की स्थापना।

1.8 सारांश

प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। युद्ध के कारण भारतीयों की राजनीतिक चेतना जागृत हो गयी तथा उन्होंने स्वशासन की माँग करना प्रारम्भ कर दिया। युद्ध के दौरान ही तिलक ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए भारतीयों से अधिकाधिक सहयोग एवं समर्थन चाहती थी किंतु बदले में भारतीयों को कुछ भी देने के लिए तत्पर नहीं थी।

तिलक ने भारतीयों के स्वशासन प्राप्ति की माँग को लेकर अपना आवाज बुलंद किया। उन्होंने कहा कि ''भारतीय बिना शर्त युद्ध में अंग्रेजों को सहायता दे रहे हैं जबकि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के संबंध में भेदभाव की नीति को जारी रखी हुई है''। सर्वप्रथम बालगंगाधर तिलक ने होमरूल आंदोलन की शुरूआत की। उन्होंने 28 अप्रैल 1916 ई0 को महाराष्ट्र के पूना स्थित बेलगाँव में होमरूल लीग की स्थापना की। पाँच माह बाद सितम्बर 1916 में ऐनी बेसेंट ने मद्रास में अखिल भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की। चूँकि दोनों संगठनों का उद्देश्य समान ही थी, अतः 1916 में लखनऊ अधिवेशन के बाद गंगाधर तिलक एवं ऐनी बेसेंट ने एक साथ होमरूल आंदोलन चलाने का निश्चय किया। होमरूल आंदोलन का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। इस आंदोलन ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत की। इसने भारतीयों को सुषुप्तावस्था से जगाया तथा राष्ट्रीय आंदोलन को नई गति प्रदान की और ब्रिटिश सरकार को संवैधानिक सुधार योजना लागू करने के लिए बाध्य किया। गृहशासन आंदोलन, कांग्रेस–लीग समझौता, उदारवादियों एवं उग्रवादियों में एकता स्थापित होने, कांग्रेस में उग्रवादियों का प्रमुख स्थापित होने तथा मेसोपोटामिया आयोग की रिपोर्ट ने ब्रिटिश सरकार को भारतीय शासन प्रणाली में सुधार करने के लिए बाध्य कर दिया।

1.9 आदर्श प्रश्न अभ्यास कार्य

1. प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों के योगदान की समीक्षा करें ।
2. भारत के स्वराज्य संघर्ष में गृहशासन आन्दोलन की भूमिका पर प्रकाश डालें दिया।
3. लखनऊ समझौता का मूल्यांकन करें ।
4. मान्टेग्यु घोषणा पर संक्षेप में टिप्पणी करें।
5. प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति पर निबंध लिखें।

1.10 उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

शेखर बंदोपाध्याय – प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास

विपिन चंद्रा – भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

इकाई–2
महात्मा गाँधी का आगमन

इकाई की रूपरेखा :

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 महात्मा गाँधी का परिचय
2.4 महात्मा गाँधी का प्रारम्भिक जीवन
2.5 महात्मा गाँधी का भारत आगमन
2.6 महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश
2.7 गाँधी जी के विचारों के अध्ययन स्रोत
2.8 गाँधी जी के विचारों के स्रोत
2.9 गाँधी जी की विचारधाराएँ
2.10 गाँधी जी के प्रारम्भिक आंदोलन
    2.10.1 चंपारण सत्याग्रह
    2.10.2 खेड़ा आंदोलन
    2.10.3 अहमदाबाद आंदोलन
2.11 सारांश
2.12 आदर्श प्रश्न
2.13 उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में गाँधी जी के भारत आगमन से लेकर उनके प्रारंभिक आन्दोलनों तक की चर्चा की गयी है। यह अध्याय गाँधी जी के विचारों खासकर सत्य–अहिंसा, सत्याग्रह, साध्य–साधन, स्वदेशी आदि के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्ष को समझने में शिक्षार्थियों का सहायक सिद्ध होगा। इकाई के अध्ययन से राष्ट्रीय आन्दोलन के दार्शनिक आधार की समझ विकसित की जा सकेगी। प्रस्तुत अध्याय में चंपारण, खेडा अहमदाबाद के आंदोलनों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य शिक्षार्थियों में गाँधी जी के विचारों, राष्ट्रीय

आन्दोलन में उनके योगदानों के प्रति समझ विकसित करना है। यह अध्याय सत्य अहिंसा के सिद्धांतों का विभिन्न आन्दोलनों में होने वाले व्यवहारिक प्रयोग पर प्रकाश डालता है, जिससे गाँधी जी के सिद्धांतों का व्यवहारिक अनुप्रयोग को समझा जा सकता है ।

2.3 महात्मा गाँधी का परिचय

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में एक नए युग का आरम्भ हुआ जिसे गाँधी युग के नाम से जाना जाता है। 1917 से 1947 तक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में रहा। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी का अमूल्य योगदान है जिसके कारण उन्हें भारत का राष्ट्रपिता ¼Father of Indian Nation½ भी कहा जाता है। उन्हीं के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का निर्णायक चरण आरम्भ हुआ। 1917 से 1947 ई0 तक भारतीय राजनीति में उनकी प्रमुख भूमिका रही। उनके निर्देशन एवं नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आंदोलन के चरण को गाँधी युग के नाम से जाना जाता है। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में दो नए अस्त्रों–सत्याग्रह और अहिंसा का उपयोग कर भारतीय जनता में नवीन उत्साह एवं स्फूर्ति का संचार किया। गाँधी युग में राष्ट्रीय आंदोलन का शिक्षित वर्ग से जनसाधारण वर्ग तक विस्तार हो गया। राष्ट्रीय आंदोलन जन आंदोलन में परिवर्तित हो गया। कांग्रेस जनता का संगठन बन गई। गाँधी युग में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति और विचारधारा पूर्णतः नवीन, शांतिपूर्ण एवं क्रांतिकारी हो गई।

2.4 महात्मा गाँधी का प्रारम्भिक जीवन

महात्मा गाँधी आधुनिक युग के महान पुरूष थे। भारतीय उन्हें श्रद्धा से बापू कहकर संबोधित करते हैं। महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहनदास करमचंद गाँधी था। उनका जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबंदर में हुआ। उनके पिता करमचंद गाँधी राजकोट रियासत के दीवान थे। उनकी माता पुतली बाई थी जो धार्मिक प्रवृत्ति की थी। वे सूर्य को अर्ध्य दिये बिना अन्न ग्रहण नहीं करती थीं। माता–पिता की धार्मिक प्रवृत्ति एवं सादगी का उन पर काफी प्रभाव पड़ा। गाँधी जी को बचपन से ही अनुशासित ढंग से रखा गया और उनमें सत्य व अहिंसा की भावना जागृत की गई। महात्मा गाँधी की प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट के अल्फ्रेड हाईस्कूल में हुई, मैट्रिक शिक्षा प्राप्त करके वे कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए लंदन गये। 4 सितम्बर 1888 को वे बम्बई से इंग्लैण्ड रवाना हुए। वकालत की शिक्षा प्राप्त कर वे 1891 में स्वदेश लौटे। 13 वर्ष की अल्पायु में गाँधी जी का विवाह कस्तूरबा नामक कन्या से सम्पन्न हो गया था।

शिक्षा प्राप्त कर इंग्लैण्ड से लौटने के बाद गाँधी जी ने बम्बई में वकालत प्रारम्भ किया। 1893 में एक मुकदमें की पैरवी के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका गए। वहाँ अंग्रेजी सरकार प्रवासी भारतीयों के साथ रंगभेद की नीति अपना रही थी। गाँधी

जी दो वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में रहे। इस दौरान उन्होंने वहाँ भारतीयों के साथ किये गये दुर्व्यवहार के खिलाफ संघर्ष किया। दक्षिण अफ्रीका में ही उन्होंने सत्याग्रह का पहली बार सफल प्रयोग किया। उनके संघर्ष के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों को सभी सुविधाएँ एवं अधिकार प्रदान किया। दक्षिण अफ्रीका में वे भारतीय समुदाय के नेता के रूप में उभरे।

2.5 महात्मा गाँधी का भारत आगमन

जनवरी 1915 ई0 में गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। इस समय प्रथम विश्वयुद्ध प्रगति पर था। युद्ध के दौरान उन्होंने ब्रिटिश सरकार को अपना सक्रिय सहयोग एवं समर्थन किया। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में भ्रमण कर भारतीयों को सेना ने भर्ती होने के लिए प्रेरित किया, जिसके कारण उन्हें सार्जेंट मेजर कहा जाने लगा। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कैसर–ए–हिन्द की उपाधि से सम्मानित किया। 1916 में महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी तट पर साबरमती आश्रम की स्थापना की स्थापना की जो आगे चलकर उनकी गतिविधियों का केंद्र बन गया।

2.6 महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश

जनवरी 1915 में गाँधी जी का दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटते ही उनके जीवन का दूसरा एवं महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ हुआ। दक्षिण अफ्रीका में उनके द्वारा किये गये कार्यों से चारों ओर उनकी ख्याति फैल चुकी थी। भारत आते ही वे तुरंत भारतीय राजनीति में आना चाहते थें किंतु उनके राजनीतिक गुरू ने उन्हें परिस्थिति को समझकर कार्य आरम्भ करने की सलाह दिया। वे गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे। अपने राजनीतिक गुरू की बात मानकर गाँधी जी ने एक वर्ष तक देश के विभिन्न भागों की यात्रा कर देश की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का व्यावहारिक अध्ययन किया। आगे जाकर वे कांग्रेस से जुड़ गए। गाँधी जी की पहली सार्वजनिक उपस्थिति 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में हुई। इस समय तक वह कोई ज्ञात नेता नहीं थे किंतु लोगों को उनके द्वारा दक्षिण अफ्रीका में किये गये कार्यों की जानकारी थी। 1916 में ही भारतीय राजनीति में गाँधीजी का पर्दापण हुआ तथा वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गए।

2.7 गाँधी जी के विचारों के अध्ययन स्रोत

(1) **पत्रिका** – स्वयं गाँधी जी ने अपने विचारों को हिन्द स्वराज्य (1909 ई) नामक पुस्तक और हरिजन (1933 ई) नामक साप्ताहिक पत्र में लेख लिखकर व्यक्त किया। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक विषयों पर वे अपने विचार व्यक्त करते रहते थे। अनेक खंडों

में गाँधी जी के लेख प्रकाशित हो चुके हैं जो गाँधी जी के अध्ययन के प्रमुख स्रोत हैं।

(2) **पत्र** – गाँधी जी समय–समय पर अपने सहयोगियों एवं राजनीतिक प्रतिद्वंदियों को व्यक्तिगत पत्र लिखा करते थें। इन पत्रों के माध्यम से वे अपने विचारों को, अपने अंतः मन के विचारों को बेबाकी से प्रकट करते थे। उन्होंने अपने पत्रों को 'हरिजन' में प्रकाशित करवाया। उनके पत्रों को नेहरू ने संकलित कर 'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' नाम से प्रकाशित करवाया। अनेक पत्र ऐसे हैं जो कांग्रेस के अंदर के वैचारिक और व्यक्तिगत टकराव को स्पष्ट करते हैं। इन पत्रों के माध्यम से कांग्रेस के अंदर टकराव व गाँधी जी द्वारा संयमित होकर सभी को साथ लेकर चलने की क्षमता का पता चलता है। विभिन्न अवसरों पर गाँधी जी ने अनेक ऐसे पत्र लिखें जिनसे उनकी राजनीतिक सूझ–बूझ के साथ अपने साथियों के प्रति सम्मान और सहयोग की भावना भी परिलक्षित होती है।

(3) **आत्मकथाएँ** – महात्मा गाँधी ने 1909 ई0 में 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक लिखा था, जिसके माध्यम से उनसे संबंधित काफी जानकारी मिलती है। स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े अनेक व्यक्तियों ने गाँधी जी की जीवनियाँ लिखी जिनमें उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समालोचना मिलती है। कहीं उनकी प्रशंसा की गई तो कहीं आलोचना भी। आत्मकथाएँ मुख्यतया स्मृति के आधार पर लिखी गई। साथ ही इनमें लेखक के व्यक्तिगत विचार, घटना विशेष के प्रति लगाव–दुराव की भी झलक मिलती है। इनमें लेखक कुछ बिन्दुओं को स्पष्टतः उजागर करते हैं तो वहीं कुछ बिन्दुओं पर वह पूर्णतया चुप्पी साध लेता है। अतः पुस्तकों का अध्ययन करते समय सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

(4) **अखबार** – गाँधी जी को तत्कालीन अखबारों के माध्यम से भी जाना जा सकता है। उस समय अनेक अंग्रेजी एवं देशी भाषाओं में अनेक समाचारपत्र प्रकाशित होते थे जो गाँधी जी के गतिविधियों पर सदैव पैनी नजर रखते थे और प्रत्येक घटना पर समाचार प्रकाशित करते थे। साथ ही, उन घटनाओं पर नेताओं एवं जनसाधारणों का विचार भी प्रकाशित किया जाता था। अखबार भी सरकारी दस्तावेजों के समान निष्पक्ष नहीं थे। ये प्रकाशकों की राजनीतिक सोच को परिलक्षित करते थे। अंग्रेजी अखबारों से देशी अखबारों का दृष्टिकोण अलग होता था। अतः इनका उपयोग तार्किक ढंग से सावधानीपूर्वक किया जा सकता है।

(5) **पुलिस रिकॉर्ड** – गाँधी जी के राजनीतिक प्रभाव के कारण सरकार उनकी गतिविधियों पर सदैव निगरानी रखती थी। यह कार्य पुलिस एवं गुप्तचर

विभाग करता था। गाँधी जी की गतिविधियों की नियमित रूप से गोपनीय सूचनाएँ सरकार के गृह विभाग को भेजा जाता था जिसका पाक्षिक रिपोर्ट तैयार कर सरकार को भेजा जाता था। परन्तु अब ये दस्तावेज विभिन्न अभिलेखागार में उपलब्ध है। इन दस्तावेजों का अध्ययन अत्यंत ही सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए क्योंकि वे मुख्यतया वास्तविकता से परे होते थे। इनका उद्देश्य सरकार की दृष्टिकोण में राष्ट्रीय आंदोलन एवं गाँधी जी को महत्वहीन दिखलाना था।

2.8 गाँधी जी के विचारों के स्रोत

गाँधी जी के विचारों पर हिन्दू धर्म की कई पुस्तकों तथा पश्चिमी धार्मिक दार्शनिकों का व्यापक प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड में उन्होंने सर एडविन अर्नाल्ड की गीता का अनुवाद पढ़ा। इसने उनके दृष्टिकोण को सर्वाधिक प्रभावित किया। वे गीता को अपना पथ प्रदर्शक एवं आध्यात्मिक निर्देश ग्रंथ मानते थे। उन्होंने कहा भी था ''जब मुझे संदेह घेरे रहते हैं, तब हतोत्साह मेरी ओर झांकता है और जब मुझे क्षितिज में आशा रूपी प्रकाश की एक किरण दिखायी नहीं देती तो मैं भगवत गीता की ओर मुड़ता हूँ और अपने–आपको संतोष देने के लिए एक श्लोक पढ़ लेता हूँ और अनंत चिंताओं के समय भी मुस्कराने लगता हूँ।'' उन्होंने सत्य, अहिंसा के बारे में गीता से बहुत कुछ सीखा। गीता के अतिरिक्त गाँधी जी ने उपनिषद, पतंजलि के योग सूत्र, रामायण, महाभारत तथा कुछ जैन एवं बौद्ध ग्रंथों का भी अध्ययन किया। इन पुस्तकों के अध्ययन से सत्य, अहिंसा एवं अपरिग्रह में उनकी आस्था दृढ़ हो गई। उन्होंने गीता से फल की इच्छा किये बिना कर्म करने का पाठ सीखा।ईसाई धार्मिक ग्रंथों में 'न्यू टेस्टामेंट' और 'सर्मन ऑन द माउंट' का प्रभाव भी गाँधी जी पर पड़ा। अहिंसक प्रतिरोध की शिक्षा उन्हें ईसा मसीह के इन शब्दों में मिली – ''भगवान, उन्हें क्षमा कीजिए क्योंकि वे नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।'' इसी प्रकार 'सर्मन ऑन द माउंट' से भी उन्होंने अनेक शिक्षाओं को ग्रहण किया जैसे–''यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी आगे कर दो। अपने शत्रुओं को भी प्यार करो, बद्दुआ देने वाले को दुआ दो, जो तुमसे घृणा करते हो, उनके साथ नेकी करो और जो तुम्हारे साथ अत्याचार करते हो, उनके लिए तुम भगवान से प्रार्थना करो।''

लाओत्से और कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं का प्रभाव भी गाँधी जी की विचारधाराओं पर पड़ा। लाओत्से का कहना था कि ''जो मेरे प्रति अच्छे हैं, उनके प्रति मैं अच्छा हूँ और जो मेरे प्रति सच्चे नहीं है, उनके लिए भी मैं सच्चा हूँ। इस प्रकार, सभी सच्चे हो जाएँगे।'' कन्फ्यूशियस का सिद्धांत था कि ''मनुष्यों को दूसरे के प्रति वैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसा व्यवहार वे स्वयं दूसरों के द्वारा अपने प्रति न चाहते हैं।'' इन शिक्षो को गाँधी जी अपने जीवन में अक्षरशः आत्मसात

किया। गाँधी जी के नैतिक एवं राजनीतिक विचार पर तीन आधुनिक दार्शनिकों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। ये दार्शनिक है – जॉन रस्किन, डेविड थूरो एवं लियो टॉलस्टॉय। जॉन रस्किन की पुस्तक ''अन्टू द लास्ट'' (न्दजव जीम सेंज) से शारीरिक श्रम का आदर करना सीखा तथा उस आर्थिक व्यवस्था को सबसे अच्छा माना जिससे सबको लाभ होता है। डेविड थूरो से उन्होंने सविनय अवज्ञा की प्रेरणा प्राप्त की। हालाँकि गाँधी जी ने इससे इंकार किया था कि सविनय अवज्ञा के विचारों को उन्होंने थूरो से प्राप्त किया था। फिर भी, उन्होंने यह स्वीकार किया था कि ''इसने मेरे ऊपर गहरा प्रभाव छोड़ा।''

लियो टॉलस्टॉय के प्रभाव में गाँधी जी ने ईसाई अराजकतावाद के सिद्धान्त को अपनाया। उसकी पुस्तक ''ईश्वर का साम्राज्य आप के अंदर है'' (The Kingdom of God is within you) को पढ़ने के बाद गाँधी जी के मन का संशय तथा नास्तिकता दूर हो गई और अहिंसा के प्रति उनका विश्वास दृढ़ हो गया। टॉलस्टॉय ने प्रेम को सभी समस्याओं का समाधान माना था। उसने कहा था कि ''एक ईसाई अपने पड़ोसी के साथ कभी भी झगड़ा नहीं करता है। वह न तो आक्रमण करता है न ही हिंसा का प्रयोग करता है। इसके विपरीत वह अपने–आप को स्वतंत्र कर लेता है परन्तु दुनिया को बाह्य सत्ता से स्वतंत्र करने में सहायता करता है।'' गाँधी जी ने लियो टॉलस्टॉय के ईसाई अराजकतावाद से प्रेम और प्रतिरोध के सिद्धान्तों को ग्रहण किया। दार्शनिक के अतिरिक्त एक अन्य व्यक्ति रामचन्द्र जी, जो एक जौहरी, कवि तथा समाज सुधारक थे, का प्रभाव भी गाँधी जी के जीवन पर पड़ा। उनकी नैतिकता और धार्मिक प्रवृत्ति से महात्मा गाँधी काफी प्रभावित हुए। उन्होंने कहा था ''स्वर्गीय रामचंद्र के बाद टॉलस्टॉय एवं जॉन रस्किन ने उनके जीवन पर सबसे अधिक आध्यात्मिक प्रभाव डाला है।''

2.9 गाँधीजी की विचारधारा

1. **राजनैतिक विचार** – महात्मा गाँधी ने अनेक सिद्धान्तों का अन्वेषण कर उनका राजनीति में प्रयोग किया। गाँधी जी के राजनीतिक विचार निम्न है –

   (i) **सत्य एवं अहिंसा (Truth and Non-violence)** – महात्मा गाँधी का सत्य एवं अहिंसा में अटूट विश्वास था। वे सत्य को ही ईश्वर मानते थें। सत्य का अर्थ सबके प्रति प्रेम और सेवा के द्वारा आध्यात्मिक एकता को प्राप्त करना, सबकी सेवा करना और प्रेम करना है। अहिंसा का अर्थ मनसा, वचसा, कर्मणा द्वारा किसी भी जीवधारी को आघात न पहुँचाना है। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम डल म्गचमतपउमदजे ूपजी जतनजी रखा। गाँधी जी इस बात से सहमत थे – सत्य ब्रूयात, प्रिय ब्रूयात, न ब्रूयात सत्यं अप्रियं। अर्थात वहीं बोलना चाहिए जो शुभ और सुंदर हो – मन, वचन और शरीर

से किसी भी जीव को दुख न देना, अपना या दूसरे को भला मानकर भी किसी जीव को दुख न देना अहिंसा है।

(ii) सत्याग्रह (Stayagrah) – गाँधी जी का सत्याग्रह रूपी हथियार राजनीति के युद्ध क्षेत्र में अनोखी खोज है। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह। गाँधी जी ने अहिंसक प्रतिकार के स्थान पर सत्याग्रह शब्द का प्रयोग किया है। सत्य का उपासक सत्य को ही हिंसात्मक साधनों से सिद्ध करने का प्रयास नहीं करेगा बल्कि वह आत्मकष्ट द्वारा विरोधी को गलत मार्ग से हटायेगा। सत्याग्रही के हथियार हैं – प्रेम, आत्मशोधन और अहिंसा, न कि शत्रु के प्रति क्रोध और हिंसा। सत्याग्रह में विरोधी के मन को परिवर्तित किया जाता है। सत्याग्रह आत्मबल है। प्दकपंद व्यपदपवद में गांधीजी ने लिखा – ''सत्याग्रह से लड़ने वालों के मार्ग में बाहरी कारणों से बिल्कुल अड़चन नहीं आ सकती। उनके लिए तो केवल उनकी अपनी कमजोरी ही बाधक होती है। दूसरी ओर साधारण लड़ाई में जो पक्ष हारता है उसके सभी लोग मारे हुए माने जाते हैं और वे हारते भी हैं। सत्याग्रह में एक की जीत से दूसरे की हार नहीं होती।'' अर्थात सत्याग्रही की सबसे बड़ी ताकत उसकी आंतरिक शक्ति होती है। महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह की अनेक प्रविधियों का अन्वेषण किया जो निम्न है –

(1) असहयोग (2) सविनय अवज्ञा

(3) हिजरत (4) उपवास (5) हड़ताल

(iii) साध्य और साधन – गाँधी जी ने राजनीति में भी नैतिक साधनों के प्रयोग पर बल दिया है। वे लक्ष्य को तो उच्च मानते ही थे परन्तु उसकी प्राप्ति के साधन का भी उच्च होना आवश्यक मानते थे। महात्मा गाँधी के अनुसार साध्य और साधन अभिन्न है। साधन सदा साध्य के अनुरूप होना चाहिए। उनके अनुसार ''साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है और साध्य की वृक्ष से – और जो अटूट संबंध बीज और वृक्ष से है, यही साध्य और साधन के बीच भी है।''

(iv) स्वदेशी, खादी और चरखा – महात्मा गाँधी स्वदेशी के प्रबल समर्थक थें। गाँधी जी ने खादी के वस्त्रों के उपयोग पर बल दिया। ''खादी का रहस्य तो यह है कि यह चीज इस देश में सहज ही बन सकती है और बनती भी है जिससे गरीबों का पेट पलता है, उस स्वदेशी चीज का उपयोग करना हमारा धर्म और उसे छोड़कर उसकी जगह इच्छापूर्वक विदेशी चीज का उपयोग करना अधर्म है। चरखा

राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गया। उनका मानना था कि चरखा चलाने से विदेशी माल का बहिष्कार होगा।''

(v) **हिन्दू–मुस्लिम एकता** – महात्मा गाँधी हिन्दू–मुस्लिम, सिख ईसाई एवं पारसी सभी संप्रदायों को एकता के एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। वे हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। जिन्ना के ज्ूव दंजपवदे जीमवतल से वे कभी सहमत नहीं हुए। उन्होंने अंत तक भारत विभाजन का कड़ा विरोध किया।

(vi) **दलितों का उत्थान (Upliftment of Horizons)** – महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को समाज का सबसे बड़ा कलंक मानते थें। समाज सुधारक के रूप में गाँधी जी ने हरिजनों के विकास के लिए अथक प्रयास किया। उनका मानना था कि ''यह मानव तथा ईश्वर के प्रति एक पाप था जो विष के समान हिन्दूवाद की मजबूत जड़ों को नष्ट कर रहा है। हिन्दू शास्त्रों में अस्पृश्यता को कही भी मान्यता दी गयी है।'' उन्होंने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया।

(vii) **लोकतंत्र में विश्वास** – गाँधी जी देश के सर्वांगीण विकास के लिए लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की वकालत करते थे। उनके अनुसार जनता की भावनाओं के अनुरूप शासन संचालन लोकतांत्रिक प्रणाली में ही संभव है। वे जनता की प्रभुसत्ता में विश्वास करते थें तथा आंदोलन को गरीब किसान एवं मजदूर तक ले जाना चाहते थे।

(viii) **समाज सुधारक** – महात्मा गाँधी एक समाज सुधारक भी थे। उन्होंने भारतीय समाज में सुधार करने के लिए अनेक कदम उठाए। अछूतों का कल्याण, नारियों का उत्थान, हिन्दू मुस्लिम एकता, मादक द्रव्य निषेध, शिक्षा का प्रसार आदि क्षेत्र में उन्होंने उल्लेखनीय प्रयास किया।

(ix) **राष्ट्रवाद एवं अतंर्राष्ट्रीयवाद** – महात्मा गाँधी एक सच्चे राष्ट्रवादी थें किंतु वे कट्टर नहीं थे। वे अंतर्राष्ट्रीयवाद के भी प्रबल समर्थक थे। वे पूरे विश्व को एक परिवार मानते थें। **वसुधैव** कुटुम्बकम के सिद्धांत में उनकी गहरी आस्था थी।

(x) **राज्य के प्रति दृष्टिकोण** – गाँधी जी ने भावी राज्य और सरकार की स्पष्ट रूपरेखा नहीं प्रस्तुत की है लेकिन उनके विचार यत्र–तत्र व्याख्यानों और लेखों के आधार पर संकलित किये जा सकते हैं। अराजकतावादी दार्शनिक के रूप में गाँधी राज्य के विरूद्ध थे। उनका आदर्श समाज राज्यविहीन होगा। ग्रामीण गणराज्य

स्वायत्तशासी ईकाई के रूप में संघ का निर्माण करेंगे। उनके आदर्श राज्य की प्रमुख विशेषता शासन शक्ति का विकेंद्रीकरण है। राज्य को वे साध्य नहीं मानते थे। वे एक महान लोकतंत्रवादी एवं महान व्यक्तिवादी थे। उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक अनुशासन के बीच सामंजस्य की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। वे राज्य को एक आवश्यक बुराई मानते थे तथा उसे कम से कम शक्ति देना चाहते थे।

2. **गाँधी जी के आर्थिक विचार** – महात्मा गाँधी मशीन युग के विरोधी थे। वे मशीन के साथ–साथ शारीरिक श्रम पर जोर देते थे। वे प्राचीन सभ्यता के प्रशंसक, औद्योगिक पूँजीवाद के विरोधी एवं ग्राम केंद्रित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के हिमायती थे। वे ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का पुर्नरूद्धार चाहते थे। वे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा बड़े–बड़े उद्योग–धन्धों के विरूद्ध थे। वे गृह उद्योग के प्रबल समर्थक थें। वे संपत्ति के संबंध में सीमा सिद्धांत के समर्थक थे। उनके आर्थिक विचारों में ट्रस्टीशिप का सिद्धांत सर्वप्रमुख है। ट्रस्टियों के रूप में जमींदारों एवं पूँजीपतियों को वे अपने हित में प्रयोग नहीं करने देना चाहते थें।

3. **गाँधी जी की धार्मिक विचारधारा** – धर्म गाँधीजी की विचारधारा का मुख्य आधार था। उनकी समस्त क्रियाओं का प्रधान प्रेरक धर्म था। धर्म से गाँधीजी का आशय किसी विशेष मत या धर्म से नहीं था।उनका धर्म हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म जैसा कोई धर्म नहीं था बल्कि वह एक सार्वभौमिक धर्म था। गाँधी जी ने कहा था कि ''धर्म मनुष्य के अंदर एक स्थायी तत्व है जो मनुष्य को उसके आंतरिक सत्य से अटूट संबंध में बाँध देता है। उनके धर्म का मुख्य आधार था ईश्वर में अटल विश्वास। उनके विचार में समस्त मानवीय क्रियाओं का नैतिक आधार धर्म है। वे राजनीति को अपने धार्मिक कर्तव्यों का अंश समझते थें।

2.10 महात्मा गाँधी के प्रारम्भिक आंदोलन

(i) **चंपारण सत्याग्रह (Champaran Satyagraha)** – 1916 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में आयोजित किया गया। लखनऊ में ही बिहार के चंपारण के एक किसान राजकुमार शुक्ल गाँधी जी से मिले तथा उन्हें किसानों पर निलहों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों और किसानों की दयनीय स्थिति से गाँधी जी को अवगत कराकर उन्हें चंपारण आने का निमंत्रण दिया। 19वीं सदी के प्रारम्भ में गोरे बागान मालिकों ने किसानों से एक अनुबंध किया जिसके अनुसार किसानों को अपनी जमीन के 3/20 वें हिस्से (प्रति बीघा 3 कट्ठा) में नील की खेती करना अनिवार्य था। इसे

‘‘तिनकठिया पद्धति’’ कहा जाता था जो किसान अपने खेत में नील की खेती करने से मना करते थें, उन पर अत्याचार किया जाता था। और जो किसान अपने खेतों में नील की खेती करते थें, उन्हें एक ओर तो उत्पादित नील का कम मूल्य दिया जाता था तथा दूसरी ओर उन्हें खाद्यान्न के अभाव का सामना करना पड़ता था। किसान इस अनुबंध से मुक्त होना चाहते थें। राजकुमार शुक्ल के निमंत्रण पर 1917 में गाँधी जी, राजेंद्र प्रसाद, जे.बी. कृपलानी और अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ चंपारण गए। चंपारण पहुँचकर गाँधी जी ने किसानों की समस्याओं को सुना तथा उनकी शिकायतों को पूर्णतया सही पाया। उन्होंने अपनी जाँच में पाया कि चंपारण के रामनगर और बेतिया राज में अंग्रेज बगान मालिक किसानों को तीन कट्ठा खेत में नील की खेती करने के लिए बाध्य किया जाता था, साथ ही उनपर अनेक प्रकार के कर भी लगा दिये गये थे। अगर कोई किसान नील की खेती से मुक्ति पाना चाहता था तो उसके लिए उसे बगान मालिकों की बड़ी धनराशि ‘तवान’ के रूप में देना पड़ता था। किसानों से बेगार भी लिया जाता था तथा उन पर शारीरिक अत्याचार भी किया जाता था।

गाँधी जी ने किसानों को अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन चलाने की प्रेरणा दी। महात्मा गाँधी की प्रेरणा पाकर किसानों के दिल से निलहों का डर समाप्त हो गया और वे उन्हें चुनौती देने लगे। गाँधी जी की लोकप्रियता तेजी से बढ़ने लगी। जाँच के दौरान ही कमिश्नर ने उन्हें चंपारण छोड़ने का आदेश दिया जिसे गाँधी जी ने अस्वीकार कर दिया। उनपर मुकदमा चलाकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया किंतु बढ़ते विरोध को देखते हुए लेफ्टिनेंट गर्वनर ने उन्हें रिहा कर स्थिति का परीक्षण करने की अनुमति प्रदान कर दी।

महात्मा गाँधी ने किसानों की समस्याओं को सरकार के समक्ष जोरदार तरीके से उठाया। गाँधी जी के प्रयासों से सरकार ने किसानों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक जाँच समिति का गठन किया। गाँधी जी को भी इस जाँच समिति का सदस्य बनाया गया। समिति की अनुशंसा के आधार पर सरकार ने चंपारण कृषि कानून बनाया। जिसके अंतर्गत तीनकठिया प्रणाली समाप्त कर दी गई तथा अंग्रेजों की अवैध वसूली का 25 प्रतिशत किसानों को वापस करना पड़ा। इससे किसानों को काफी राहत मिला तथा उनमें राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास हुआ। यह गाँधी जी का पहला सफल सविनय अवज्ञा आंदोलन था। चंपारण सत्याग्रह के सफल नेतृत्व के बाद ही रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गाँधी जी को पहली बार महात्मा कहा।

(ii) **खेड़ा आंदोलन (Khera Movement)** – चंपारण के बाद गाँधीजी ने गुजरात के खेड़ा के किसानों की समस्याओं की ओर ध्यान दिया। खेड़ा के

पाटीदार किसानों के समक्ष अनेक समस्याएँ विद्यमान थी। वर्षा न होने से किसानों की फसल खराब हो गयी थी। फसल नहीं होने, खेतिहर मजदूरी में वृद्धि तथा लगान में बढ़ोत्तरी, तथा सूखा एवं महामारी के कारण किसान सरकार को मालगुजारी नहीं देने की स्थिति में थे। परेशान होकर किसानों ने गुजरात सभा के माध्यम से गाँधी जी से संपर्क किया। महात्मा गाँधी ने सरदार बल्लभ भाई पटेल एवं इंदुलाल याज्ञिक के साथ गाँवों का दौरा किया तथा किसानों की मालगुजारी माफ करने की माँग की पूर्णतया सही पाया। सरकार ने किसानों की मालगुजारी माफ कर देने की माँग को अस्वीकार कर दिया था। गाँधी जी ने 1918 में खेड़ा के किसानों को संगठित होकर सत्याग्रह करने के लिए कहा। इसका किसानों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्होंने 'कर नहीं दो' आंदोलन शुरू किया। किसानों ने एकजुटता का प्रदर्शन करते हए सरकार को लगान देना बंद कर दिया। किसान सरकार की सख्ती से भी नहीं डरे। व्यापक विरोध को देखते हुए सरकार ने निर्धन किसानों का लगान माफ करने का निर्णय लिया तथा यह भी निश्चय किया गया कि जो लगान देने में समक्ष थे, वे किसान लगान का भुगतान करेंगे। मालगुजारी न दे सकने वाले किसानों की जमीन सरकार ने जब्त नहीं की तथा जिनकी जमीन जब्त कर ली गई थी, उनकी भूमि को मुक्त कर दिया गया। इस आंदोलन के दौरान ही बिट्ठल भाई पटेल और बल्लभ भाई पटेल गाँधी जी के संपर्क में आए। बल्लभ भाई पटेल ने इस आंदोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(iii) अहमदाबाद आंदोलन (Ahmedabad Movement) – 1918 में ही गाँधी जी के समक्ष दूसरा मामला अहमदाबाद के मिल मजदूरों का आया। मिल मालिकों एवं मजदूरों में प्लेग बोनस को लेकर विवाद छिड़ा हुआ था। 1918 में अहमदाबाद के मिल मजदूरों ने प्लेग बोनस समाप्त किये जाने के विरोध में हड़ताल कर दिया। गाँधी जी ने मजदूरों एवं मिल मालिकों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया। आरम्भ में मिल मालिक मजदूरों की माँगों को मानने के लिए तैयार नहीं थे। वे हड़ताल पर पूर्ण पाबंदी चाहते थे। गाँधीजी ने मजदूरों को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे 35 प्रतिशत से अधिक मजदूरी में वृद्धि की माँग नहीं करेंगे। जब इस बात पर भी मिल–मालिक नहीं माने तो गाँधीजी ने मजदूरों को संगठित कर 15 मार्च 1918 को आमरण अनशन शुरू कर दिया। अनशन के चौथे दिन ही मिल–मालिकों ने विवश होकर समझौता करने पर अपनी सहमति दे दी। मजदूरों को उनकी मजदूरी में 27.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी कर दी गई तथा 35 प्रतिशत बोनस दिया गया। गाँधी जी से इस कार्य से श्रमिकों का मनोबल बढ़ा तथा उनका संगठन मजबूत हुआ। इस आंदोलन ने 1920 में

कपड़ा मजदूर सभा (Textile Labour Association) के गठन का मार्ग प्रशस्त किया । अहमदाबाद आंदोलन में ही गाँधी जी ने सर्वप्रथम भूख हड़ताल के अस्त्र का उपयोग किया।

इस तरह तीन प्रमुख स्थानीय मामलों को सुलझाकर गाँधी ने सत्याग्रह का सफल परीक्षण किया। उनकी सफलता से उनकी लोकप्रियता में अप्रत्याशित वृद्धि हुई तथा वे राष्ट्रीय आंदोलन के एक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली नेता के रूप में उभरे। गाँधी जी जनता के और जनता गाँधी जी के निकट संपर्क में आई तथा वे भारत की वास्तविकता से पूर्णतया परिचित हो गए और राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती प्रदान करने तथा आम जनता तक उसका विस्तार करने की दिशा में अग्रसर हुए।

2.11 सारांश

जनवरी 1915 ई0 में गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। इस समय प्रथम विश्वयुद्ध प्रगति पर था। युद्ध के दौरान उन्होंने ब्रिटिश सरकार को अपना सक्रिय सहयोग एवं समर्थन किया। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में भ्रमण कर भारतीयों को सेना ने भर्ती होने के लिए प्रेरित किया, जिसके कारण उन्हें सार्जेंट मेजर कहा जाने लगा। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कैसर–ए–हिन्द की उपाधि से सम्मानित किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में एक नए युग का आरम्भ हुआ जिसे गाँधी युग के नाम से जाना जाता है। 1917 से 1947 तक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में रहा। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी का अमूल्य योगदान है जिसके कारण उन्हें भारत का राष्ट्रपिता (थ्जीमत वि्पदकपंद छंजपवद) भी कहा जाता है। उन्हीं के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का निर्णायक चरण आरम्भ हुआ। 1917 से 1947 ई0 तक भारतीय राजनीति में उनकी प्रमुख भूमिका रही। उनके निर्देशन एवं नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आंदोलन के चरण को गाँधी युग के नाम से जाना जाता है।

2.12 आदर्श प्रश्न अभ्यास कार्य

1. महात्मा गाँधी द्वारा भारतीय राजनीति में किये गये नवीन प्रयोगों की समीक्षा करें ।
2. चम्पारण सत्याग्रह का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें ।
3. महात्मा गाँधी की दृष्टि में सत्य अहिंसा व सत्याग्रह का क्या महत्व है ?
4. महात्मा गाँधी के साध्य एवं साधन की अवधारणा को समझाइए।
5. महात्मा गाँधी के भारत आगमन एवं स्वराज्य संघर्ष पर उसके पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें।

2.13 उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

शेखर बंदोपाध्याय – प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास

विपिन चंद्रा भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

बी.एल. ग्रोवर और यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास

आर.सी. अग्रवाल – भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

पी.एल. गौतम – आधुनिक भारत

आर.सी. अग्रवाल – भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई–3
खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन

इकाई की रूपरेखा :

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 खिलाफत आंदोलन
    3.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की भूमिका
    3.3.2 भारतीय मुसलमानों द्वारा अंग्रेजों का विरोध
    3.3.3 भारतीय मुसलमानों द्वारा ब्रिटिश शासन के विरूद्ध आंदोलन
3.4 खिलाफत आंदोलन में गाँधीजी की भूमिका।
3.5 असहयोग आंदोलन
3.6 असहयोग आंदोलन के कारण
3.7 असहयोग आंदोलन का प्रारम्भ
    3.7.1 असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम
    3.7.2 असहयोग आंदोलन की प्रगति
    3.7.3 असहयोग आंदोलन का दमन
3.8 चौरी–चौरा की घटना और असहयोग आंदोलन का स्थगन
3.9 असहयोग आंदोलन के विरूद्ध प्रतिक्रिया
3.10 असहयोग आंदोलन का मूल्यांकन
3.11 सारांश
3.12 आदर्श प्रश्न
3.13 उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंतिम वर्षों में एक अंतरराष्ट्रीय घटना ने भारत के हिंदुओं व मुसलमानों को पुनः आपस में जोड़ने का कार्य किया था। मूलतः तुर्की से संबंधित यह घटना भारत में खिलाफत आंदोलन के रूप में उद्घटित हुआ। इसी समय महात्मा गांधी के आहवाहन पर असहयोग आंदोलन को भी आरंभ कर दिया गया। यह आंदोलन अपने महत्वपूर्ण चरण में पहुँचा ही था कि एक हिंसक

घटना से आहत होकर गांधीजी ने इसे स्थगित करने का निर्णय ले लिया। प्रस्तुत अध्याय में हम खिलाफत एवं असहयोग आंदोलन पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम खिलाफत आंदोलन के कारण एवं परिणामों को समझ सकेंगे। यह इकाई हमें खिलाफत आंदोलन में गांधीजी की भूमिका को समझाने में सार्थक सिद्ध होगी। प्रस्तुत अध्ययन से हम असहयोग आंदोलन के कारण एवं प्रभाव को भी जानने में सक्षम होंगे। इस अध्ययन से हम गांधीजी के जीवन में अहिंसा के महत्व को भी समझ सकेंगे।

3.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की भूमिका

तुर्की के ऑटोमन साम्राज्य पर सुल्तान महमूद VI शासन कर रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान युवा तुर्कों का तुर्की संसद में बहुमत था तथा वे ही सत्ता में थें। उन्होंने जर्मनी से मित्रता को अपने विदेश नीति का आधार बनाया। ब्रिटेन, रूस, फ्रांस, ऑस्ट्रिया आदि यूरोपीय देश तुर्की पर अधिकार कर उसे आपस में बाँटने की योजना बना रहे थे तथा जर्मनी कुछ हद तक तुर्की को इन राज्यों से संरक्षण दे रहा था। 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया जो 1918 तक चला। इस युद्ध में तुर्की मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध जर्मनी की ओर से लड़ रहा था। 29 अक्टूबर 1914 को तुर्की नौसेना ने काला सागर में रूसी जल सेना पर आक्रमण कर प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल होने के पीछे तुर्की का उद्देश्य ऑटोमन साम्राज्य को विदेशी प्रभावों से मुक्त करना, निकटस्थ मिस्त्र, लीबिया, टयूनिस, साइप्रस एवं अल्जीरिया आदि प्रदेशों को प्राप्त करना, रूस स्थित तुर्क प्रधान क्षेत्र का केशश व तुर्कीस्तन पर अधिकार करना, खलीफा के पद एवं मर्यादा को संपूर्ण इस्लाम समुदाय पर पुनर्स्थापित करना आदि था। इन उद्देश्यों की पूर्ति मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध करके ही हो सकती थी। 4 नवम्बर 1914 को रूस ने, 5 नवम्बर को ब्रिटेन, फ्रांस ने भी तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रारम्भिक काल में तुर्की को पर्याप्त सफलता मिली किन्तु 1918 के मध्य से उसे निरंतर पराजय का सामना करना पड़ा।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही मित्रराष्ट्रों की कूटनीति द्वारा अरब प्रदेश में ही तुर्की के विरूद्ध भीषण विद्रोह का सूत्रपात किया जिससे तुर्की की स्थिति कमजोर हो गयी। ब्रिटेन ने अरबों के नेता शरीफ हुसैन को मित्र राष्ट्रों के ओर से स्वतंत्र अरब देश की स्थापना करने का तथा मुस्लिम तीर्थ स्थानों की सुरक्षा एवं उसे प्रति माह दो लाख पौंड देने का वचन दिया। 5 जून 1916 को शरीफ हुसैन ने अरब विद्रोह की घोषणा की तथा अमीर फैसल के नेतृत्व में अरबों ने तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अरब की नवीन संगठित सेना की सहायता से ब्रिटेन सेना लगातार सफलता प्राप्त कर रही थी तथा वह तेज गति से आगे बढ़ते हुए जेरूसलम तक

पहुँच चुकी थी। अक्टूबर 1918 के आरम्भ में जमाल पाशा मंत्रिमंडल का पतन हो गया। नवीन प्रधानमंत्री इजात पाशा ने युद्ध अंत करने का निर्णय लिया तथा ब्रिटेन से वार्ता प्रारम्भ किया। 30 अक्टूबर 1918 को मुद्रोस की विराम संधि द्वारा युद्ध का अंत हुआ तथा संपूर्ण ऑटोमन साम्राज्य पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हो गया और तर्की के भाग्य का निर्धारण शांति सम्मेलन के जिम्मे छोड़ दिया गया। 10 अगस्त 1920 अं0 को परास्त तुर्की एवं ब्रिटेन के बीच सेब्र की संधि (Treaty at Serves) संपन्न हुई। तुर्की को विभिन्न भागों में विभाजित कर मित्र राष्ट्रों ने आपस में बाँट लिया। सुल्तान महमूद ने बाध्य होकर संधि को स्वीकृति प्रदान कर दी। तुर्की सुल्तान की समस्त राजनीतिक एवं धार्मिक शक्तियाँ छीनकर उसे शक्तिहीन बना दिया गया। तुकी को शक्तिहीन राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

3.3.2 भारतीय मुसलमानों द्वारा अंग्रेजों का विरोध

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध जर्मनी की ओर से लड़ रहा था। चूँकि भारतीय मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफा (धर्मगुरू) मानते थें। अतः ब्रिटेन द्वारा तुर्की के विरूद्ध युद्ध किया जाना उसकी दृष्टि में उनके धर्मगुरू का विरोध किया जाना था। इसलिए इस युद्ध में भारतीय मुसलमान ब्रिटेन को किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं देना चाहते थे। अंग्रेजों को मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक था। युद्ध काल में भारतीय मुसलमानों से सहयोग लेने के लिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें आश्वासन दिया था कि युद्ध की समाप्ति के बाद इंग्लैण्ड तुर्की के विरूद्ध प्रतिरोध की नीति नहीं अपनाएगा और न ही तुर्की साम्राज्य को छिन्न–भिन्न होने देगा। इस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीय मुसलमानों ने तुर्की के विरूद्ध अंग्रेजों की इस शर्त पर मदद की कि वे भारतीय मुसलमानों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

युद्ध समाप्ति के बाद अंग्रेज अपने वायदे से मुकर गए एवं सेब्र की संधि द्वारा मित्र राष्ट्रों ने तुर्की साम्राज्य को छिन्न–भिन्न कर दिया तथा उसे कुछ क्षेत्रों तक सीमित कर दिया। उसके अधिकांश भागों को मित्र राष्ट्रों ने अपने बीच बाँट लिया। तुर्की का खलीफा इस्लामी जगत का धर्मगुरू भी था। पैगंबर के बाद सबसे अधिक प्रतिष्ठा उसी की थी। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की के पराजित होने के बाद खलीफा की सत्ता व प्रतिष्ठा संकटग्रस्त हो गई। खलीफा के साथ किए गए इस अन्याय से मुसलमानों क्रोधित हो गए तथा वे ब्रिटेन का विरोध करने लगे। भारतीय मुसलमाने के बहुसंख्यक वर्ग ने 1919–22 के अखिल भारतीय स्तर पर खिलाफत आंदोलन का सूत्रपात किया।

3.3.3 मुसलमानों द्वारा ब्रिटिश शासन के विरूद्ध आंदोलन

(i) आंदोलन का सूत्रपात – प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के बाद मित्र राष्ट्रों द्वारा खलीफा के साथ किये गये दुर्व्यवहार ने भारतीय मुसलमानों को

ब्रिटिश शासन का विरोधी बना दिया। वे खलीफा की शक्ति और प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना करने के लिए संघर्ष करने हेतु प्रतिबद्ध हो गए। उन्होंने खलीफा की सत्ता को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से खिलाफत आंदोलन शुरू कर दिया।

(ii) खिलाफत समिति का गठन – 1 सितम्बर 1919 खिलाफत आंदोलन को चलाने के लिए खिलाफत समितियाँ स्थापित की गई। इस आंदोलन को संगठित करने का श्रेय अली बन्धुओं– मुहम्मद अली और शौकत अली को जाता है। इस आंदोलन को प्रमुख राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं जैसे एम.ए. अंसारी, हकीम अजमल खाँ और अबुल कलाम आजाद का सक्रिय सहयोग मिला। 17 अक्टूबर 1919 को पूरे देश में खिलाफत दिवस मनाया गया। 24 नवम्बर 1919 को दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसके अध्यक्ष महात्मा गाँधी बनाये गये। महात्मा गाँधी ने खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया।

(iii) खिलाफत आंदोलन की माँगे – खिलाफत आंदोलन की प्रमुख माँगे निम्न थीं।

- तुर्की सुल्तान का खलीफा पद बरकरार रखा जाए।
- विघटित ऑटोमन साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले सभी पवित्र इस्लामी स्थान खलीफा के नियंत्रण में बने रहे।
- खलीफा मुस्लिम तीर्थ स्थानों की रक्षा करें।
- जजीरात–उल–अरब अर्थात अरब, सीरिया, इराक और फिलिस्तीन खलीफा की संप्रभुता के अधीन रहें क्योंकि ये क्षेत्र इस्लाम के धार्मिक केन्द्र थे।
- खलीफा के पास इतना क्षेत्र हो कि वह इस्लामी विश्वास को सुरक्षित करने के योग्य बन सके।

3.4 खिलाफत आंदोलन में गाँधी जी की भूमिका

कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने खिलाफत आंदोलनकारियों की माँगों का समर्थन किया। महात्मा गाँधी खिलाफत आंदोलन को हिन्दू–मुस्लिम एकता के साथ उदारवादी एवं राष्ट्रवादी मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में लाने के एक प्रयास के रूप में देख रहे थें। वे आंदोलन को न्याय और सत्य पर आधारित मानते थे इसलिए उन्होंने इस आंदोलन को पूर्ण समर्थन दिया। 24 नवम्बर 1919 को दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन में गाँधी जी उसके अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने सरकार को चेतावनी दी कि अगर खलीफा के साथ न्याय नहीं किया जाएगा तो वे सरकार के साथ असहयोग करेंगे। संपूर्ण देश में खिलाफत का

प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया। महात्मा गाँधी के कहने पर 13 जनवरी 1920 में डॉ0 एम0ए0 अंसारी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल वायसराय से मिलने गया किन्तु उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। उसे निराश वापस लौटना पड़ा। खिलाफत समिति ने आंदोलन को चलाते रहने का निश्चय किया। अंत में यह आंदोलन असहयोग आंदोलन में मिल गया। जून 1920 में इलाहाबाद में केंद्रीय खिलाफत समिति ने चार चरणों में चलने वाला असहयोग आंदोलन को चलाने का निर्णय लिया गया। हिन्दू–मुस्लिमों में एकता स्थापित होने के आधार पर असहयोग आंदोलन चलाने का निश्चय किया गया। जुलाई में गाँधी जी ने खिलाफत के प्रश्न, पंजाब की घटनाओं और स्वराज्य की प्राप्ति के उद्देश्य से 1 अगस्त 1920 से असहयोग आंदोलन आरम्भ करने का निर्णय लिया।

महात्मा गाँधी पर यह दोष लगाया जाता है कि खिलाफत में सहयोग करके उन्होंने बड़ी भूल की थी। परन्तु महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण अलग था। वे हिन्दू–मुस्लिम एकता के पक्षधर थे और उन्हें यह अवसर हिन्दू–मुस्लिम एकता को मजबूती प्रदान करने का लगा। खिलाफत समर्थन के द्वारा मुसलमानों का भरोसा जीतकर वे असहयोग आंदोलन में उनकी मदद लेना चाहते थे इसलिए वह प्रारम्भ से ही खिलाफत आंदोलन के साथ रहे तथा मुसलमानों को यह भरोसा दिलाया कि हिन्दू उनके साथ है। इस संबंध में उन्होंने कहा था कि ''यह मेरी नैतिक जिम्मेदारी की भावना है जिसने मुझे खिलाफत के प्रश्न को हाथ में लेने तथा मुसलमानों के सुख–दुख में उनका साथ देने के लिए प्रेरित किया है। यह बिल्कुल सही है कि मैं हिन्दू मुस्लिम एकता में सहायता दे रहा हूँ और उसे प्रोत्साहित कर रहा हूँ।''

3.5 असहयोग आंदोलन (NON-COOPERATION MOVEMENT) (1920 ई.– 22 ई.)

असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि – प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर भारतीय राजनीति में एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिसे भारतीय इतिहास में ''गाँधी युग'' के नाम से जाना जाता है। 1919 तक गाँधी जी सरकार के सहयोगी बने रहे। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सरकार को बिना शर्त सहयोग प्रदान किया था। उन्होंने कहा था कि ''साम्राज्य के हिस्सेदार के रूप में हमारा निश्चित लक्ष्य है। हमें अपने सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक कष्ट उठाना चाहिए और साम्राज्य की रक्षा में अपनी जान तक दे देनी चाहिए। यदि साम्राज्य नष्ट हो जायेगा तो उसके साथ ही हमारी अभिलााषाएँ भी नष्ट हो जायेंगी। अतः साम्राज्य की रक्षा के कार्य में सहयोग देना स्वराज्य प्राप्ति का सरलतम और सीधा मार्ग है।'' इस तरह गाँधी जी की अपील पर भारतीय जनता ने ब्रिटिश साम्राज्य को भरपूर सहयोग प्रदान किया। भारतीयों को प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजों द्वारा स्वराज्य प्रदान करने का आश्वासन दिया गया था किन्तु उन्होंने स्वराज्य के स्थान पर दमनकारी कानून

दिये। ऐसी स्थिति में गाँधी जी के विचारों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। उन्होंने सरकार के साथ असहयोग करने का निश्चय किया। भारतीय जनता को असहयोग आंदोलन के पक्ष में करने तथा उन्हें इसके सिद्धान्तों से अवगत कराने के लिए जनसभाओं, भाषणों एवं ''यंग इंडिया'' नामक पत्रिका में अपने लेखों द्वारा प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने संपूर्ण देश में राजनीतिक चेतना जागृत की और राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध सर्वप्रथम 1920 में असहयोग आंदोलन चलाने का निर्णय लिया।

3.6 असहयोग आंदोलन के कारण

जिन घटनाओं और कारणों ने महात्मा गाँधी को ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध असहयोग आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित किया उनमें से प्रमुख निम्न हैं –

(i) युद्धकालीन भारत में असंतोष – युद्ध के दौरान युद्ध के व्ययों की पूर्ति करने के लिए सरकार ने भारतीय जनता पर अनेक कर आरोपित किये तथा उन्हें जबरदस्ती वसूल किया। आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में असाधारण वृद्धि करके भी धन की वसूली की गई। इन परिस्थितियों के कारण जनसाधारण को भयानक आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। जनता को अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अकाल, सूखा के कारण देश में भूखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। महामारी ने उनकी स्थिति को और दयनीय बना दिया था। किंतु सरकार ने इस स्थिति से निपटने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। इसने भारतीय जनता के मन में असंतोष की भावना को अत्यधिक बढ़ा दिया। इस प्रतिकूल परिस्थितियों ने गाँधी जी को ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने के लिए प्रेरित किया।

(ii) युद्धोत्तर भारत में असंतोष – ब्रिटेन ने स्वतंत्रता और प्रजातंत्र की रक्षा के नाम पर प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया था। भारत में शीघ्रातिशीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना का आश्वासन देने पर भारतीयों ने हर प्रकार से ब्रिटिश सरकार को सहयोग एवं समर्थन दिया। लेकिन युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने के स्थान पर 1919 में भारत शासन अधिनियम दिया जो भारतीयों की आकांक्षाओं के विपरीत था। इससे भारतीय असंतुष्ट हो गए।

(iii) मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों से असंतोष – 1918 के अंत में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता को स्वशासन के स्थान पर अत्यंत ही सीमित अधिकारों वाला भारत शासन अधिनियम 1919 पारित किया। जिसे मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार कहते हैं। मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार योजना भारतीयों की स्वराज्य की माँग को संतुष्ट करने की दिशा में पूर्णतया असफल रही। युद्ध के समय सरकार ने भारत को उत्तरदायी शासन देने का

वायदा किया था किंतु युद्ध के बाद उसने उत्तरदायी शासन तो दूर, सिक्खों को भी मुसलमानों के समान पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया। इससे जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष तीव्र गति से फैला।

(iv) मूल्य वृद्धि – युद्ध के दौरान भारत सरकार को करीब डेढ़ अरब पौंड की विशाल धनराशि व्यय करना पड़ा। उस पर ऋणों का भार अत्यधिक बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप देश को मुद्रा स्फीति का सामना करना पड़ा। इससे देश की आर्थिक स्थिति डंबाडोल हो गई तथा देश को अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिसका प्रतिकूल प्रभाव जनता के जीवन पर पड़ा। परिणामस्वरूप जनता सरकार से असंतुष्ट हो गई तथा उसका विरोध करने लगी।

(v) अकाल और महामारी – 1917 में अनावृष्टि के कारण पूरे देश में कृषि की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सूखा के कारण देश की जनता को अकाल का सामना करना पड़ा। जब भारतीयों को सरकार के सहायता की अत्यधिक आवश्यकता थी, तब सरकार ने इस स्थिति से निपटने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। सरकार के गोदाम अनाज से भरे थे तथा वे उन्हें ,भारतीयों को देने के स्थान पर विदेशों में निर्यात कर लाभ कमा रही थी। खाद्यान्न के अभाव में खाद्यान्न के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी। महामारी ने जनता की स्थिति को अधिक दयनीय बना दिया। प्लेग से निपटने के लिए सरकार ने सेना तैनात कर दिया जिन्होंने आम जनता के साथ दुव्यवहार किया। इससे भारतीय जनता में असंतोष फैला।

(vi) विदेशी घटनाओं की प्रतिक्रिया – प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद यूरोप के तीन प्रमुख देशों – जर्मनी, ऑस्ट्रिया और रूस से निरंकुश शासन की समाप्ति हो गई। रूस में रूसी क्रांति के बाद वहाँ साम्यवादी शासन की स्थापना हुई। नवस्थापित साम्यवादी शासन ने एशिया के अनेक प्रदेशों को स्वतंत्र कर दिया। इन देशों की स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनता की चेतना पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा तथा उनमें राजनीतिक चेतना जागृत हुई। इसके परिणामस्वरूप वे राष्ट्रीय संघर्ष के लिए सक्रिय होने लगे।

(vii) रौलेट एक्ट – प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जनता विशेष कर युवकों में तेजी से असंतोष फैलाने के परिणामस्वरूप भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों में काफी वृद्धि हुई है। ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारियों के दमन के नाम पर अपना दमन चक्र बनाये रखना चाहती थी। देश में उठने वाली व्यापक जन असंतोष से निपटने के लिए 17 मार्च 1919 को रौलेट एक्ट नामक ''काला कानून'' पारित किया, जिसके अनुसार ''सरकार किसी भी व्यक्ति को संदिग्ध घोषित कर बिना किसी सुनवाई के अनिश्चित काल तक नजरबंद रख सकती थी।

इस अधिनियम से सरकार को पर्याप्त दमनकारी अधिकार प्राप्त हो गया तथा भारतीयों की स्वतंत्रता निरर्थक एवं महत्वहीन हो गई। इस अधिनियम के कारण जनता उग्र हो गई तथा सरकार का विरोध करने लगी। गाँधी जी को भी सरकार के साथ असहयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

(viii) जलियावाला बाग हत्याकांड – रौलेट एक्ट तथा सरकार के दमनात्मक कार्यवाई के विरोध में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियावाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। इस शांतिपूर्ण सभा पर जनरल डायर ने अंधाधुंध गोली चलाने का आदेश दिया, जिसमें लगभग 1000 स्त्री, पुरूष तथा बच्चे मारे गये और करीब 2000 लोग घायल हुए थें। डायर के द्वारा किये गये इस अमानुषिक कार्य से सारा देश क्रोधित हो गया। महात्मा गाँधी ने इसे पाश्विक अत्याचार कहा। जलियावाला बाग हत्याकांड ने असहयोग आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया।

(ix) हण्टर समिति प्रतिवेदन – सरकार ने पंजाब में घटी घटना से जनता में उत्पन्न असंतोष को शांत करने के लिए तथा महात्मा गाँधी के विरोधी रूख को देखते हुए सरकार ने लॉर्ड हंटर की अध्यक्षता में एक जांच समिति का गठन किया, जिसने डायर के कार्यों को सही ठहराया किंतु गलत धारणा पर आधारित बताया। हंटर समिति के रिपोर्ट ने भारतीयों के घाव पर नमक छिड़क दिया। जलियावाला हत्याकांड एवं हंटर समिति प्रतिवेदन ने भारतीय आंदोलन की दिशा को परिवर्तित कर दिया तथा असहयोग आंदोलन के शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(x) खिलाफत आंदोलन – प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन से पराजित होने के बाद तुर्की के साथ हुए सेब्रे की संधि के द्वारा तुर्की के सुल्तान जो मुसलमानों का धर्मगुरू था, को शक्तिविहीन कर दिया गया तथा ऑटोमन साम्राज्य को छिन्न–भिन्न कर दिया। इससे दुनिया भर के मुस्लिम मित्र राष्ट्रों विशेषकर ब्रिटेन के विरूद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध खिलाफत आंदोलन शुरू किया जिसका उद्देश्य खलीफा की सत्ता को पुनर्स्थापित करना था। इस आंदोलन के दौरान ही गाँधी जी ने सरकार को असहयोग की चेतावनी दी थी। सरकार द्वारा उनकी माँगों को न मानने पर उन्होंने 1920 में असहयोग आंदोलन चलाने का निर्णय किया।

3.7 असहयोग आंदोलन का प्रारम्भ

जून 1920 ई0 में इलाहाबाद में केंद्रीय खिलाफत समिति ने चार चरणों में चलने वाले असहयोग आंदोलन को चलाने का निर्णय लिया। 1 अगस्त 1920 ई0 को महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया। असहयोग और खिलाफत आंदोलन साथ–साथ चले। गाँधीजी ने बहिष्कार और असहयोग की नीति अपनायी।

सितम्बर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन आयोजित किया गया। इसी अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध असहयोग आंदोलन चलाने संबंधी प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा कि ''ब्रिटिश सरकार शैतान है जिसके साथ सहयोग करना संभव नहीं है, बिना स्वराज्य के पंजाब व खिलाफत जैसी गलतियाँ दोहरायी जायेंगी, उन्हें रोका नहीं जा सकेगा। अंग्रेज सरकार को अपनी भूलों पर कोई दुख नहीं है। अतः हम यह कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि नवगठित विधान परिषदें हमारे स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त करेंगी। स्वराज्य प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा प्रगतिशील नीति अपनायी जानी चाहिए।'' इस प्रस्ताव का विरोध सभापति लाला लाजपत राय, एनी बेंसेंट, मदन मोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिन चंद्र पाल, देशबंधु चितरंजन दास, मोहम्मद अली जिन्ना, शंकरन नायर तथा सर नारायण चंद्रावश्कर ने किया किंतु अली बन्धुओं– मोहम्मद अली एवं शौकत अली तथा मोतीलाल नेहरू एवं अन्य नेताओं के समर्थन से असहयोग का प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। अधिवेशन में एक अन्य प्रस्ताव पारित किया गया, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध शांतिपूर्ण और अहिंसात्मक आंदोलन चलाने संबंधी सभी अधिकार गाँधी जी को दे दिये गये। यहीं से वास्तविक अर्थ में गाँधी युग की शुरूआत हुई।

दिसम्बर 1920 के नागपुर अधिवेशन में गाँधी जी ने कांग्रेस के पुराने लक्ष्य अंग्रेजी शासन के अंतर्गत स्वशासन के स्थान पर स्वराज्य को नया लक्ष्य घोषित किया। उनका (गाँधी जी) का कहना था कि ''यदि आवश्यक हुआ तो स्वराज्य को ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर भी प्राप्त किया जा सकता है।'' इसी अधिवेशन में लाला लाजपत राय एवं चितरंजन दास ने असहयोग प्रस्ताव से संबंधित अपना विरोध वापस ले लिया तथा एनी बेसेंट, विपिनचंद्र पाल, मुहम्मद अली जिन्ना, जी.एस. खपार्डे आदि नेताओं ने कांग्रेस से असंतुष्ट होकर त्यागपत्र दे दिया। नागपुर अधिवेशन को इसलिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने स्वशासन प्राप्ति के लक्ष्य का त्याग कर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध सक्रिय विरोध करने की बात को स्वीकार किया। इसी अधिवेशन में उसने ब्रिटिश शासन से पूर्ण छुटकारा पाने की घोषणा की। इसी अधिवेशन में असहयोग आंदोलन संबंधी प्रस्ताव की पुष्टि कर दी गई।

3.7.1 असहयोग आंदोलन कार्यक्रम

असहयोग आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग कर ब्रिटिश शासन तंत्र को पूर्णतया ध्वस्त करना था। इसके लिए ब्रिटिश भारत की समस्त राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं के बहिष्कार का निश्चय किया गया था। असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम को उनकी प्रकृति के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1. **विरोधात्मक पक्ष –**

- सरकारी पदों एवं उपाधियों का त्याग
- सरकारी सेवाओं से त्यागपत्र
- विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार
- 1919 के अधिनियम के अंतर्गत 1920 में होने वाले निर्वाचन का बहिष्कार
- स्थानीय संस्थाओं के मनोनीत सदस्यों द्वारा अपने पदों का त्याग
- अदालतों का बहिष्कार
- सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार
- सेना में भर्ती होने से इंकार करना
- सरकारी दरबारों, उत्सवों एवं समारोहों का बहिष्कार
- आवश्यकतानुसार कर नहीं देने का कार्यक्रम भी अपनाया गया। (कर देने से इंकार)

2. **रचनात्मक पक्ष –**

- रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत वे कार्यक्रम थे जिसमें स्वदेशी को प्रोत्साहन देने और सामाजिक सुधार के उद्देश्य निहित थे
- तिलक स्वराज्य कोष में एक करोड़ रूपये जमा करना
- स्वयंसेवकों का दल तैयार करना
- चरखा एवं कताई–बुनाई का प्रचार करना
- राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना करना
- स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करना
- सरकारी न्यायालयों के स्थान पर गैर सरकारी पंचायती न्यायालयों की स्थापना
- अस्पृश्यता निवारण हेतु प्रचार करना
- हिन्दू–मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करना

3.7.2 असहयोग आंदोलन की प्रगति

जनवरी 1921 से असहयोग आंदोलन जोर पकड़ने लगा। महात्मा गाँधी ने सर्वप्रथम अपनी उपाधि ''कैसर–ए–हिन्द'' ब्रिटिश सरकार को वापस कर असहयोग

आंदोलन का सूत्रपात किया। गाँधी जी द्वारा पद त्याग के बाद सेठ जमुनादास बजाज ने अपनी ''रायबहादुर'' की उपाधि लौटा दी तथा मजिस्ट्रेट पद से त्यागपत्र दे दिया। सी.आर.दास, मोतीलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, पंडित जवाहर लाल नेहरू, लाला लाजपत राय, चितरंजन दास, आसफ अली आदि ने वकालत करना छोड़ दिया। स्थान–स्थान पर अध्यापकों विद्यार्थियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया। शिक्षण संस्थाओं का सर्वाधिक बहिष्कार बंगाल में किया गया। आंदोलन के नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के आधार पर अनेक राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की। आंदोलन के दौरान बिहार विद्यापीठ (पटना) गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद), तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ (पूना) मुस्लिम विद्यापीठ (अलीगढ़) तथा हिन्दू विद्यापीठ (काशी) आदि स्थापित किया गया। कलकत्ता में नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई जिसके प्रधानाचार्य सुभाषचंद्र बोस बने। असहयोग आंदोलन को मोहम्मद अली, डॉ0 एम.ए. अंसारी, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं का भी समर्थन प्राप्त हुआ।

गाँधीजी ने देशव्यापी दौरा कर आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। आंदोलन तीव्र गति से फैलने लगा। वृहद स्तर पर वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार कर दिया। छात्रों, अध्यापकों और प्राध्यापकों ने सरकारी शिक्षण संस्थानों का त्याग कर दिया। कामगारों ने अनेकों हड़तालें आयोजित की। अनुमानतः 1921 में 396 हड़तालें हुई जिनमें लगभग 6 लाख श्रमिक सम्मिलित थे और इससे 70 लाख कार्य दिवसों का नुकसान हुआ।

विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। इस कार्य में जनता ने काफी उत्साह दिखाया। विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्राथमिकता दी गई तथा उसका प्रचार–प्रसार किया गया। चरखा और खादी राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई। लोग खादी के वस्त्र पहनने लगे जिससे भारतीय हस्तकरघा और बुनाई उद्योग को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। स्वदेशी को बढ़ावा देने के लिए बड़ी संख्या में स्वयं सेवक बनाए गए। तिलक स्वराज्य कोष में मार्च 1921 की वैजवाड़ा बैठक में एक करोड़ रूपया एकत्रित करने का निश्चय किया गया। इस कोष में काफी धन जमा हो गया। आर्थिक बहिष्कार सबसे अधिक सफल रहा। आयातित वस्त्रों के मूल्य में भारी कमी आई। शराबबंदी के कारण आबकारी की आमदनी में भी गिरावट आई तथा हथकरघों के उत्पादन में वृद्धि हुई। चुनावों का बहिष्कार किया गया। कोई भी कांग्रेसी चुनावों में खड़ा नहीं हुआ। आंदोलन का प्रसार देश के सभी भागों में समान रूप से नहीं हुआ। अधिकांश स्थानों पर आंदोलन गाँधी जी के निर्देश के अनुसार हुआ। कुछ स्थानों पर लोगों ने स्थानीय मुद्दों को आंदोलन का आधार बनाया तो कुछ स्थानों पर हिंसा का भी सहारा लिया गया। मालाबार में मोपला विद्रोह, पंजाब में अकाली आंदोलन, अवध, बंगाल, उड़ीसा में किसान आंदोलन हुआ। आंध्रप्रदेश के गोदावरी

जिला में मालगुजारी रोको अभियान चलाया गया। कुमाऊँ तथा गढ़वाल में ठंडक की परम्परा को जारी रखते हुए आंदोलन जारी रखा गया तो वही अल्मीज में उतार और जंगल कानूनों के विरूद्ध सशक्त आंदोलन चला। आंध्र में अल्लूरी सीताराम राजू ने प्रचार करते हुए भी फितूरी की परम्परा को जारी रखते हुए एक सशक्त आंदोलन चलाया।

3.7.3 असहयोग आंदोलन का दमन

आरम्भ में सरकार ने असहयोग आंदोलन को गंभीरता से नहीं लिया परन्तु जैसे–जैसे इसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी, सरकार आंदोलन को बढ़ने से रोकने का प्रयास करने लगी। आंदोलन की निरंतर बढ़ती लोकप्रियता एवं प्रगति को देखकर सरकार ने क्रूर दमन चलाने का निर्णय लिया। असहयोग आंदोलन का दमन करने के लिए सरकार ने राजद्रोह सभा अधिनियम (Seditions Meeting Act) पारित करके उसका खुलकर प्रयोग किया। इस अधिनियम द्वारा सरकार को अत्यधिक दमनकारी अधिकार प्राप्त हो गया। सार्वजनिक सभाओं को जबरदस्ती विसर्जित करा दिया जाता था। आंदोलन के नेताओं के आगमन को प्रतिबंधित कर दिया गया। आंदोलन के दौरान मोहम्मद अली जिन्ना, मोतीलाल, नेहरू, सरदार पटेल, चित्तरंजन दास, मौलाना आजाद, राजेन्द्र प्रसाद, सी. राजगोपालचारी जैसे नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। आंदोलन से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भी गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। लगभग 60 हजार व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। इसके बाद भी जनता के उत्साह में कोई कमी नहीं आई।

कुछ स्थानों पर सरकार ने शक्ति का प्रयोग भी किया जिसमें अनेक व्यक्ति मारे गये। 4 मार्च 1921 को ननकाना साहिब गुरूद्वारा में शांतिपूर्वक एकत्रित लोगों पर पुलिस ने अकारण गोली चलाई जिसमें 70 व्यक्ति मारे गए। 20 अगस्त 1921 को अली बंधुओं द्वारा दिये गये भाषण से हिंसा को प्रोत्साहन मिला। अली बंधुओं द्वारा हिंसा का समर्थन न करने का आश्वासन देने के बाद भी सितम्बर 1921 में उनको गिरफ्तार कर लिया गया। नवम्बर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स भारत की यात्रा पर आने वाले थे। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड रीडिंग यह चाहते थे कि प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर भारत में शांति बनी रहें तथा भरतीय जनता उनका स्वागत करें। परन्तु कांग्रेस महासमिति ने अलीबंधुओं की गिरफ्तारी के विरोध में प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन के दिन संपूर्ण देश में हड़ताल करने का निर्णय किया। 17 नवम्बर 1921 को प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन के दिन कांग्रेस ने हड़ताल और प्रदर्शनों से उनका स्वागत किया। इसके परिणाम स्वरूप सरकार ने अपना दमनचक्र और तेज कर दिया। सरकार ने दमनात्मक कार्यवाई के प्रतिक्रिया स्वरूप दिसम्बर 1921 के अहमदाबाद अधिवेशन में कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने का

निश्चय किया। फरवरी 1922 को गाँधी जी ने गवर्नर जनरल लॉर्ड रीडिंग को पत्र लिख कर उन्हें चेताया कि यदि 7 दिनों के भीतर अगर सरकार ने राजनीतिक बंदियों को रिहा नहीं किया कि तो कांग्रेस करों की नाअदायगी समेत सामूहिक रूप से बारदोली से सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर देगी। किन्तु सप्ताह समाप्ति से पूर्व ही चौरी–चौरा की घटना हो गई।

3.8 चौरी–चौरा की घटना और असहयोग आंदोलन का स्थगन

गाँधी जी द्वारा गवर्नर जनरल लॉर्ड रीडिंग को पत्र लिखे एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि चौरी–चौरा की घटना घट गई जिसने संपूर्ण राजनीतिक परिदृश्य को ही पूर्णतया परिवर्तित कर दिया। 5 फरवरी 1922 ई0 को पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौरी–चौरा गाँव में कांग्रेस ने एक जुलूस का आयोजन किया था, जिसमें हजारों लोगों ने भाग लिया। पुलिस ने बलपूर्वक प्रदर्शन को रोकने का प्रयास। इससे उत्तेजित होकर भीड़ हिंसा पर उतर आयी तथा पुलिसकर्मियों को थाने के अंदर खदेड़ दिया। उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दिया। इस अग्निकांड में एक थानेदार समेत 21 सिपाही जलकर मर गये। भारतीय इतिहास में इस घटना को चौरी–चौरा हत्याकांड के नाम से जाना जाता है। इस हिंसक घटना से महात्मा गाँधी काफी आहत हुए तथा उन्हें यह विश्वास हो गया कि जनता अभी अहिंसात्मक आंदोलन के लिए तैयार नहीं है। इस घटना के बाद गाँधी जी असहयोग आंदोलन को स्थगित कर देना चाहते थे। अनेक कांग्रेसी नेताओं के विरोध के बावजूद कांग्रेस कार्यसमिति ने 12 फरवरी 1922 को बारदोली में हुई कांग्रेस की बैठक में असहयोग आंदोलन को स्थगित करने का निर्णय लिया गया तथा आंदोलन समाप्त हो गया।

3.9 असहयोग आंदोलन के स्थगन के विरूद्ध प्रतिक्रिया

महात्मा गाँधी का मानना था कि असहयोग आंदोलन दिशाहीन होकर अपने उद्देश्य से भटक गया था। अतः आंदोलन को वापस लेना आवश्यक था। महात्मा गाँधी के इस निर्णय से नेता एवं जनता सभी स्तब्ध रह गए। कांग्रेस नेताओं में इसके विरूद्ध तीखी प्रतिक्रिया हुई। देशबंधु चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय और सुभाष चंद्रबोस तो आंदोलन को स्थगित करने के बिल्कुल पक्ष नहीं थे। सुभाष चंद्र बोस ने तो यहाँ तक कह दिया कि ''ठीक उस समय जब जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, उसे वापस लौटने का आदेश दिया जाना राष्ट्रीय दुर्भाग्य ही था। मोतीलाल नेहरू एवं लाला लाजपत राय ने जेल से ही पत्र लिखकर गाँधी जी को किसी एक स्थान पर पाप के लिए संपूर्ण देश को दंड देने के लिए काफी आलोचना की। आंदोलन के अचानक स्थगन का तीव्र विरोध किया गया। आंदोलन स्थगित किये जाने के बाद से ही अली बंधु एवं अन्य मुस्लिम नेता कांग्रेस से दूर होने लगे। आंदोलन स्थगन का हिन्दू–मुस्लिम एकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

आंदोलन स्थगन के प्रतिक्रिया स्वरूप संपूर्ण देश में गाँधी जी का तीव्र विरोध

हुआ तथा उनकी लोकप्रियता में काफी कमी आई। इस अवसर का लाभ उठाते हुए सरकार ने 10 मार्च 1922 ई0 की गाँधी जी को गिरफ्तार कर लिया तथा उन पर राजद्रोह के आरोप में मुकदमा चलाया गया। न्यायाधीश ब्रूमफील्ड ने असंतोष भड़काने के अपराध में गाँधी जी को 6 वर्ष कारावास का दंड दिया। उनकी बीमारी के कारण उनकी सजा अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही 5 फरवरी 1924 ई को सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। 1924 में तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा की राष्ट्रवादी सरकार ने खलीफा के पद को ही समाप्त कर दिया। इससे खिलाफत आंदोलन भी समाप्त हो गया।

3.10 असहयोग आंदोलन का मूल्यांकन

असहयोग आंदोलन अपने उद्देश्यों में आंशिक रूप से ही सफल रहा। विधानसभाओं के निर्वाचन को रोका नहीं जा सका। पंचायत प्रणाली का भी सरकारी न्यायिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सरकारी उपाधियाँ लौट दी गई किंतु सरकारी सेवकों में कोई कमी नहीं आई।

असहयोग आंदोलन के स्थगित होते ही खिलाफत के मुद्दे का भी अंत हो या, जिसके फल स्वरूप देश में हिन्दू–मुस्लिम एकता भंग हो गई तथा सांप्रदायिक तनाव की स्थिति पैदा हो गई। केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला किसानों ने भू–सामंतों एवं साहूकारों के विरूद्ध भयंकर विद्रोह और रक्तपात किया।

असहयोग आंदोलन अपने घोषित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका। गाँधी द्वारा एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का वायदा पूरा नहीं किया जा सका और न ही ब्रिटिश सरकार द्वारा पंजाब में किये गये अन्यायों का निवारण हुआ। इस आंदोलन में पहली बार महिलाओं ने जोरदार ढंग से राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाया।

इस आंदोलन ने कांग्रेस की शक्तियों को काफी बढ़ा दिया था तथा वह पहले से अधिक संगठित हो गयी थी। कांग्रेस ने संगठनात्मक विस्तार पर बल दिया। प्रत्येक राज्य, जिला और स्थानीय, स्तर पर कांग्रेस की शाखाएँ खोली गई। देशी राजवाड़ों में प्रजामंडल स्थापित किया गया। जनता तक संदेश पहुँचाने के लए अंग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा का व्यवहार किया गया।

कांग्रेस ने जनता में राष्ट्रवाद को व्यापक आधार प्रदान किया। इसने देशवासियों के भीतर स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रबल इच्छाशक्ति जागृत की तथा औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार को चुनौती देने के लिए जनता को प्रोत्साहित किया। जनता में राष्ट्रवाद की प्रबल भावना उत्तेजित हुई।

(i) जनआंदोलन का उदय

असहयोग आंदोलन देश का पहला विशाल जनआंदोलन था जिसमें सभी

प्रांतों, वर्गों एवं जातियों ने भाग लिया था। इस आंदोलन के कारण ही राष्ट्रीय आंदोलन को एक जन आंदोलन का रूप प्राप्त हुआ। इसने जनसाधारण में त्याग, साहस और राष्ट्रीय भावना का संचार किया। अभी तक राष्ट्रीय आंदोलन गिने–चुने शिक्षित व्यक्तियों तक सीमित था। गाँधी जी और असहयोग आंदोलन के प्रभाव से यह सर्वसाधारण की संपत्ति बन गई।

(ii) ब्रिटिश साम्राज्य पर कुठाराघात

असहयोग आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला दी। भारतीय जनता के भीतर से ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की भावना समाप्त हो गई। यह स्पष्ट हो गया कि साम्राज्य से लड़कर ही स्वराज्य को प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) स्वराज्य का संदेश

इस आंदोलन ने कांग्रेस के स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य को देश के घर–घर तक पहुँचा दिया। लोगों को यह स्पष्ट हो गया कि उन्हें किसी भी दशा में स्वराज्य प्राप्त करना है तथा वे इसके लिए प्रयासरत हो गए।

(iv) राष्ट्रीयता का संचार

यह पहला जनआंदोलन था जिसमें विभिन्न संप्रदायों और प्रांतों के लोग कांग्रेस के साथ आ गए। भारतीयों में पहली बार इस प्रकार की एकता एवं राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात हुआ।

(v) राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति

असहयोग आंदोलन एक व्यापक जनआंदोलन के रूप में उभरा। इसमें सभी धर्मों, वर्गों के लोगों ने भाग लिया। सभी सम्मिलित रूप से स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयास करने लगे। इससे राष्ट्रीय आंदोलन को गति मिली।

(vi) कांग्रेस की नीति में परिवर्तन

कांग्रेस पहले अपनी माँगों के लिए वैधानिक साधनों का प्रयोग करती थीं। किंतु अब वह सभी साधनों का शांतिपूर्ण तरीके से प्रयोग करने लगी। उसने असहयोग और सविनय अवज्ञा की नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया।

(vii) कांग्रेस के स्वरूप में परिवर्तन

अभी तक कांग्रेस का प्रभाव शिक्षित एवं मध्य वर्ग के लोगों तक सीमित था। अब उसने जन आंदोलन का रूप धारण कर लिया। जनसाधारण वर्ग तक उसका विस्तार हो गया। सभी वर्ग संप्रदाय के लोग कांग्रेस में सम्मिलित होने लगे जिससे उसकी शक्ति में विस्तार हुआ।

(viii) निडरता की भावना का विकास

असहयोग आंदोलन ने जनता में अदम्य साहस और निर्भीकता की भावना का विकास किया। जनता के दिल से सरकार का भय दूर हो गया। अब वह निडर होकर राष्ट्रीय आंदोलन में अपना सक्रिय सहयोग देने लगी।

(ix) स्वदेशी पर बल

असहयोग आंदोलन के दौरान जनता ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहन दिया। खादी पवित्रता और राष्ट्रीयता की प्रतीक बन गई।

असहयोग आंदोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि भारतीय सम्मिलित रूप से प्रयास करेंगे तो जल्द ही उन्हें सफलता प्राप्त हो जायेगी। स्वराज्य की मंजिल थोड़ी निकट आ गई। कांग्रेस व जनता को अपनी शक्ति का आभास हो गया। आगे चलकर वे ऐसे आंदोलन को संचालित करने की दिशा में अग्रसर हो गए, जिनके द्वारा भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति हो सकी। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में असहयोग आंदोलन का अपना महत्वपूर्ण एवं विशेष स्थान है।

3.11 सारांश

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन से पराजित होने के बाद तुर्की के साथ हुए सेब्रे की संधि के द्वारा तुर्की के सुल्तान जो मुसलमानों का धर्मगुरू था, को शक्तिविहीन कर दिया गया तथा ऑटोमन साम्राज्य को छिन्न–भिन्न कर दिया। इससे दुनिया भर के मुस्लिम मित्र राष्ट्रों विशेषकर ब्रिटेन के विरूद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध खिलाफत आंदोलन शुरू किया जिसका उद्देश्य खलीफा की सत्ता को पुनर्स्थापित करना था। इस आंदोलन के दौरान ही गाँधी जी ने सरकार को असहयोग की चेतावनी दी थी। सरकार द्वारा उनकी माँगों को न मानने पर उन्होंने 1920 में असहयोग आंदोलन चलाने का निर्णय किया। जून 1920 ई0 में इलाहाबाद में केंद्रीय खिलाफत समिति ने चार चरणों में चलने वाले असहयोग आंदोलन को चलाने का निर्णय लिया। 1 अगस्त 1920 ई0 को महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया। असहयोग और खिलाफत आंदोलन साथ–साथ चले। असहयोग आंदोलन अपने घोषित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका। लेकिन इस आन्दोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि भारतीय सम्मिलित रूप से प्रयास करेंगे तो जल्द ही उन्हें सफलता प्राप्त हो जायेगी। स्वराज्य की मंजिल थोड़ी निकट आ गई। कांग्रेस व जनता को अपनी शक्ति का आभास हो गया। आगे चलकर वे ऐसे आंदोलन को संचालित करने की दिशा में अग्रसर हो गए, जिनके द्वारा भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति हो सकी।

3.12 आदर्श प्रश्न

1. खिलाफत आन्दोलन में गाँधीजी की भूमिका पर आलोचनात्मक टिप्पणी करें ।
2. दांडी यात्रा का क्या उद्देश्य था ?
3. असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि तथा कार्यक्रम का वर्णन करें ।
4. असहयोग आन्दोलन को असमय स्थगित करना क्या उचित था ? चर्चा करें।
5. असहयोग आन्दोलन का मूल्यांकन कीजिये ।

3.13 उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

विपिन चंद्रा भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

बी.एल. ग्रोवर और यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास

आर.सी. अग्रवाल – भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

पी.एल. गौतम – आधुनिक भारत

इकाई–4
क्रांतिकारी दल का उदय

इकाई की रूपरेखा :

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 क्रांतिकारी आंदोलन के उदय के कारण

4.4 क्रांतिकारियों के कार्यक्रम

4.5 क्रांतिकारियों की विचारधारा, कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य

4.6 क्रांतिकारियों के प्रमुख साधन

4.7 भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की प्रगति

4.7.1 1857 से 1885 के मध्य भारत में क्रांतिकारी आंदोलन

4.7.2 महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन

4.7.3 बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन

4.7.4 पंजाब में क्रांतिकारी आंदोलन

4.7.5 दिल्ली षडयंत्र कांड

4.7.6 मद्रास में क्रांतिकारी आंदोलन

4.7.7 विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन

4.8 क्रांतिकारी आंदोलन का दमन

4.9 क्रांतिकारी आंदोलन का दूसरा चरण

4.9.1 काकोरी कांड

4.9.2 केंद्रीय विधानमंडल बमकांड

4.9.3 चटगाँव विद्रोह

4.9.4 चंद्रशेखर आजाद की शहादत

4.10 आजाद हिंद फौज

4.10.1 सेना का विद्रोह

4.11 क्रांतिकारी आंदोलन की असफलता के कारण

4.12 क्रांतिकारी आंदोलन व उसका प्रभाव

4.13 सारांश

4.14 आदर्श प्रश्न

4.15 उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

20वीं सदी के शुरू में उग्रवादी आंदोलन के साथ–साथ एक अग्रसर आंदोलन का उदय हुआ। जिसे क्रांतिकारी आंदोलन कहते हैं। आरम्भ में ब्रिटिश शासन की दमनात्मक नीति के परिणामस्वरूप भारत में इसका आरंभ महाराष्ट्र में हुआ लेकिन इसका प्रधान केन्द्र बंगाल बन गया। भारत के अन्य प्रांतो तथा विदेशों में भी भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय रहे। 20वीं सदी के राष्ट्रीय जागृति की जो अपूर्व लहर आयी थी, वह दो धाराओं में बँट गई। एक धारा उग्र राष्ट्रवादी धारा थी जो लोक साधनों में विश्वास रखते हुए अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते थें। इस धारा का नेतृत्व बाल, लाल और पाल द्वारा किया गया। दूसरी धारा क्रांतिकारियों की थी। इस धारा के समर्थक हिंसात्मक साधनों जैसे–हिंसा, राजनीतिक डकैतियों, कत्ल और आतंक में विश्वास रखते थे और इन्हीं साधनों के माध्यम से भारत को स्वाधीनता प्राप्त कराना चाहते थें। इस धारा का नेतृत्व वी.डी. सावरकर, चापेकर बंधु, वारीन्द्र कुमार, घोष, भूपेंद्र नाथ दत्त, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद व सुभाष चंद्र बोस जैसे नवयुवक नेताओं के हाथों में था।

4.2 उद्देश्य

इकाई दो एवं तीन में हमनें राष्ट्रीय आन्दोलन के गांधीवादी पक्ष को समझने का प्रयास किया था। प्रस्तुत इकाई पांच राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रांतिकारी पक्ष को जानने का प्रयत्न करता है। इस इकाई के अध्ययन से हम राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा भारत से बाहर होने वाली क्रांतिकारी गतिविधियों को समझने में सक्षम होंगे। प्रस्तुत इकाई आजाद हिंद फौज की भूमिका को भी जानने में सहायक सिद्ध होगी।

4.3 क्रांतिकारी आंदोलन के उदय के कारण

(i) **मध्यवर्गीय आंदोलन** – क्रांतिकारी आंदोलन बंगाल के मध्यवर्ग में फैला। इसमें अधिकांश पश्चिमी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों ने भाग लिया गया।

(ii) **आर्थिक असंतोष** – 19वीं सदी के अंतिम चरण में चारों ओर असंतोष की लहर फैली हुई थी और भारतीय जनता सरकार की आर्थिक नीति से क्षुब्ध थी। अकाल महामारी व भूकंपों के कारण जनता की गरीबी बढ़ती जा रही थी। शिक्षित नवयुवक बेरोजगारी, नौकरियों में जातीय भेदभाव, भूख और गरीबी के साम्राज्य, कला–कौशल एवं उद्योग–धंधो के ह्रास, करारोपण की

अन्यायपूर्ण नीति से त्रस्त थे। इनका कारण वे अंग्रेज शासन को मानते थें। अतः हिंसात्मक उपायों द्वारा वे अपना रोष प्रकट करते थें।

(iii) लॉर्ड कर्जन की दमनकारी नीतियाँ – क्रांतिकारी आंदोलन के उदय के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारण लॉर्ड कर्जन का दमनात्मक शासन माना जाता है। कर्जन ने अपने शासन काल में कलकत्ता निगम अधिनियम, भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट, प्रशासकीय गोपनीयता अधिनियम आदि अनेक दमनकारी कानून बनाए।

उसने अनेक ऐसे कार्य किये जिनके कारण स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में कोई प्रयास करना तो दूर स्वतंत्रता का नाम लेना भी अपराध हो गया। उस समय ब्रिटिश सरकार का मात्र एक ही उद्देश्य भारतीय जनता को आतंकित करना तथा उसका यथासंभव तरीकों से दमन करना था। इस प्रकार की अन्याय और दमन की स्थिति से मुक्त होने के लिए क्रांतिकारी देशभक्त हिंसा का मार्ग अपनाने के लिए बाध्य हुए।

(iv) उदारवादियों की असफलता – उदारवादियों के संवैधानिक साधनों जैसे–प्रार्थना पत्र, मंत्रिमंडल, स्मृति–पत्र आदि साधनों की असफलता ने इन नवयुवकों को हिंसा द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

(v) दमन के विरूद्ध प्रतिक्रिया – उग्रवादियों ने शासन का विरोध करने के लिए बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा का मार्ग अपनाया। शासन ने इन अहिंसात्मक साधनों के विरूद्ध जो दमनचक्र चलाया उसने नवयुवकों को अंग्रेजी शासन के अन्याय का अंत करने के लिए शस्त्र उठाने को बाध्य किया।

(vi) राष्ट्रीय प्रतिशोध – अंग्रेजी शासन के अत्याचारों, लॉर्ड कर्जन की प्रतिगामी नीतियों, देशभक्तों और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले भद्रपुरूषों पर किये गये अमानवीय अत्याचार आदि ने युवकों को प्रतिशोध लेने के लिए बाध्य किया।

(vii) पश्चिमी क्रांति का प्रभाव – पश्चिम में फ्रांस, इटली, जर्मनी, अमेरिका व आयरलैण्ड की क्रांतियों ने नवयुवकों को सिखाया कि आजादी की कीमत खून से चुकानी पड़ती है।

4.4 क्रांतिकारियों के कार्यक्रम

श्री गुरूमुख निहाल के अनुसार –

(i) समाचार पत्रों के माध्यम से भारतीयों के मन में दासता के प्रति घृणा उत्पन्न करना।

(ii) भारतीयों को निडर बनाकर उनमें मातृभूमि और स्वतंत्रता के प्रति प्रेम की भावना जागृत करना।

(iii) सरकार को वंदे मातरम के प्रदर्शनों और अन्य प्रकार के आंदोलनों में उलझाकर व्यस्त रखना।

(iv) नवयुवकों को संगठित करके उन्हें हथियार चलाने आदि से संबंधित सैनिक प्रशिक्षण तथा कठोर आज्ञापालन की शिक्षा देना।

(v) बंदूक और बम जैसे आग्नेय अस्त्र चोरी–छिपे विदेशों से प्राप्त करना और उन्हें देश में बनाना।

(vi) अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु व्यय करने के लिए चंदे दान और क्रांतिकारी डकैतियों द्वारा धन एकत्रित करना।

(vii) शक्ति का प्रदर्शन करना।

4.5 क्रांतिकारियों की विचारधारा, कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य

क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की ही पृथक धारा है। भारत के नवयुवकों का एक वर्ग हिंसात्मक संघर्ष को राजनीति सत्ता की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते थें। वे स्वयं को मातृभूमि के लिए बलिदान करने को तैयार थे तथा हिंसक माध्यमों से अंग्रेजों को आतंकित कर देश से निकाल देना चाहते थें। यह आक्रामक राष्ट्रवाद की विचारधारा है। इस विचारधारा ने देश में क्रांतिकारी आंदोलन को जन्म दिया।

क्रांतिकारी आंदोलन की एक सुनिश्चित विचारधारा, कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य था। क्रांतिकारियों का दृढ़ विश्वास था कि विदेशी शासन भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों को समाप्त कर देगा तथा पश्चिम की अच्छी बातों को यहाँ स्वेच्छा से कभी लागू नहीं करेगा। उनका मानना था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को केवल हिंसक लड़ाई के द्वारा जल्द से जल्द भारत से समाप्त किया जा सकता है। वे भारत से ब्रिटिश शासन को समाप्त कर भारत को स्वतंत्र करना चाहते थें। उनका मूल उद्देश्य लूटमार तथा हत्या करना ही नहीं था बल्कि विदेशी शासन का अंत कर भारत में सच्चा लोकतंत्र स्थापित करना था। इसके लिए वे भारतीय जनता के मन में ब्रिटिश शासन के अत्याचारों के विरूद्ध घृणा उत्पन्न कर देना चाहते थें।

क्रांतिकारियों ने बम और पिस्तौल राजनीति को वरीयता दी। आयरलैंड के क्रांतिकारियों के नमूनों पर गुप्त सभाओं का आयोजन किया जाता था, जहाँ क्रांतिकारी सदस्यों को हथियार चलाने और बम बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। क्रांतिकारी गुप्त समीतियों के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देते थे। वे ब्रिटिश शासक वर्ग को आतंकित करने के लिए राजनैतिक हत्याओं को उचित मानते थे। बदनाम यूरोपीय अधिकारियों की हत्या करके स्वतंत्रता के विरोधियों में भय

उत्पन्न करना तथा उनका मनोबल तोड़ना इनका उद्देश्य था। इनका मानना था कि बड़े पैमाने पर राजनीतिक हत्याएँ करने से सशस्त्र क्रांति के लिए उपर्युक्त माहौल बनेगा।

क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन का अंत करना था। इसके लिए वे हिंसा, लूट एवं हत्या जैसे साधनों का उपयोग आवश्यक मानते थें। उनका मानना था कि अंग्रेजी शासन पाश्विक बल पर आधारित है। अतः यदि हम अपने आपको स्वतंत्र कराने के लिए पाश्विक बल का प्रयोग करते हैं तो वह उचित ही है। भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने न्यायालय में जज के समक्ष क्रांतिकारियों की विचारधारा को स्पष्ट करते हुए कहा था ''क्रांति से हमारा अभिप्राय आज की वस्तुस्थिति और समाज व्यवस्था जो अन्याय पर टिकी हुई है, को बदला जाए। क्रांति व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को समाप्त करने और राष्ट्र के लिए पूर्ण आत्म–निर्णय के अधिकार को प्राप्त करने के लिए है। क्रांति के हमारे विचार का यही अंतिम उद्देश्य है। स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है और इस उच्च आदेश की प्राप्ति के लिए हम सभी प्रकार कष्ट उठाने के लिए तैयार है।

चापेकर बन्धुओं ने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि ''केवल बैठे–बैठे शिवाजी की गाथा दुहराते रहने से स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हमें शिवाजी और बाजीराव की तरह ढाल और तलवार उठाना पड़ेगा, शत्रुओं के सिरों को काट डालना पड़ेगा। चुपचाप मत बैठे रहो, बेकार पृथ्वी पर बोझ मत बनो। हमारे देश का नाम हिंदुस्तान है फिर यहाँ पर अंग्रेज क्यों राज कर रहे हैं ? इसलिए क्रांतिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे तलवार हाथ में ले ले और सरकार को मिटा दें क्योंकि वह विदेशी और दुराचारिणी है।

कुछ ऐसे भी क्रांतिकारी दल हुए जिनका कार्यक्रम अधिक व्यापक था। वे सेना में विद्रोह और किसानों में बगावत करना चाहते थें। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हत्या करना, डाका डालना, बैंक, पोस्ट ऑफिस, रेलगाड़ी और शास्त्रागार आदि लूटना उनके लिए जायज था। यद्यपि इन क्रांतिकारियों ने मैजिनी, गैरीबाल्डी आदि विदेशी नायकों की क्रियाविधियों का अनुसरण किया किंतु राष्ट्रहित में अपना सर्वस्व न्योछावर करने की इनकी अंतः प्रेरणा भारतीय थी।

क्रांतिकारी मुख्यतया बंगाल के शक्तिपूजा से प्रेरणा ग्रहण करते थे। इन्होंने भारत राष्ट्र को भी शक्ति की प्रतीक सिंहवाहिनी माँ दुर्गा के रूप में कल्पित किया। इस प्रकार उन्होंने महाशक्ति भवानी माता का भारत माता से एकाकार कर दिया। उनकी इसी विचारधारा पर क्रांतिकारियों की कार्यप्रणाली आधारित थी। क्रांतिकारियों ने ही सर्वप्रथम देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का नारा दिया तथा इसकी प्राप्ति के लिए त्याग, तपस्या और फाँसी पर चढ़ने के लिए सदैव तैयार रहे।

4.6 क्रांतिकारियों के प्रमुख साधन

क्रांतिकारियों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बम, पिस्तौल, बंदूक, सशस्त्र डकैती, सरकारी खजाने की लूट और राजनीतिक हत्या आदि साधनों के प्रयोग पर बल दिया। उनका कहना था कि ''ब्रिटिश शासक गूँगे एवं बहरे हैं इसलिए बहरों को सुनाने के लिए ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है।'' अतः वे इन साधनों को आवश्यकतानुसार अपनाकर ब्रिटिश शासकों के मन में भय और आतंक उत्पन्न करके ब्रिटिश शासन को अंत करना चाहते थे।

इस प्रकार, क्रांतिकारी विचारधारा, क्रियाकलापों और आंदोलन का एक निश्चित लक्ष्य देश को स्वतंत्र कराना था। देश की पूर्ण स्वतंत्रता का नारा सबसे पहले क्रांतिकारियों ने ही दिया था। उन्होंने न केवल नारा ही दिया वरन् उसकी प्राप्ति के लिए त्याग, तपस्या और फाँसी पर चढ़ने के लिए सदैव तैयार रहे।

4.7 भारत में क्रांतिकारी आंदोलन की प्रगति

भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों का एक लम्बा और गौरवपूर्ण इतिहास है। यह इतिहास 19वीं शताब्दी के मध्य से प्रारम्भ होकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के साथ–साथ 1946 तक चलता रहा। भारत में होने वाले क्रांतिकारी आंदोलनों को मुख्यतः 5 चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

- 1857 से 1885 ई के मध्य क्रांतिकारी गतिविधियाँ।
- 1886 से 1905 ई के मध्य क्रांतिकारी गतिविधियाँ।
- 1906 से 1914 ई0 के मध्य क्रांतिकारी गतिविधियाँ।
- 1915 से 1932 ई के मध्य क्रांतिकारी गतिविधियाँ।
- 1933 से 1946 ई के मध्य क्रांतिकारी गतिविधियाँ।

लेकिन सुविधा की दृष्टि से उक्त काल खंडों के अंतर्गत क्रांतिकारी गतिविधियाँ को निम्न शीर्षकों के अतंर्गत विभाजित किया जा सकता है।

4.7.1. 1857 से 1885 के मध्य भारत में क्रांतिकारी गतिविधियाँ

(i) **1857 की क्रांति** – क्रांतिकारी गतिविधियों की पहली कड़ी 1857 की क्रांति थी जो भारतीय जनता द्वारा ब्रिटिश शासन के विरूद्ध किया गया था। हालाँकि यह विद्रोह क्रांति तो सरकार द्वारा दबा दिया गया किन्तु इस क्रांति ने सदैव स्वतंत्रता आंदोलन के समर्थकों को प्रेरणा देने का कार्य किया।

(ii) **नील विद्रोह (1859–61 ई तक)** – बंगाल और बिहार में नील की खेती वृहद स्तर पर की जाती थी। अंग्रेजों इन क्षत्रों के किसानों को नील की खेती करने के लिए बाध्य करते थें। वे कम दाम पर किसानों से फसल खरीदते थें

तथा उसे अधिकतम दाम पर यूरोपीय बाजार में बेचकर लाभ कमाते थें। खेती कराने के लिए वे संथाल मजदूरों का शोषण करते थें। शोषण के विरूद्ध संथालों ने विद्रोह कर दिया। अनेक अंग्रेजों को मार दिया गया तथा उनकी कई कोठियों को जला दिया गया। विद्रोह को तो दबा दिया गया किन्तु उनका शोषण भी बंद हो गया।

(iii) कूका विद्रोह (1872 ई0) – कूका लोग सिक्खों के नामधारी संप्रदाय के लोग थे। इन लोगों ने देश की स्वाधीनता के लिए आंदोलन चलाया। यह सिक्ख संप्रदाय पंजाब की अत्यधिक दयनीय आर्थिक स्थिति से चिंतित था। इस संप्रदाय के लोगों ने अपने धार्मिक गुरू रामसिंह के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए कूका आंदोलन चलाया। कूका लोगों ने पूरे पंजाब को 22 जिलों में बाँटकर सामानान्तर सरकार की स्थापना की। कूका आंदोलनकारियों की संख्या सात लाख से अधिक थी। अधूरी तैयारी में ही विद्रोह शुरू हो गया जिसके कारण आसानी से विद्रोह को दबा दिया गया।

(iv) वासुदेव बलवंत फड़के का प्रयास (1875–79) – वासुदेव बलवंत फड़के महाराष्ट्र के निवासी थी। उन्होंने रामोशी, नाइक, धनगर व भील जातियों को संगठित कर एक सेना का संगठन किया तथा अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए सरकारी खजानों को लूटकर धन एकत्रित किया तथा ब्रिटिश शासन के विरूद्ध प्रचार करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश शासन के लिए वह आतंक का पर्याय बन गया। किसी देशद्रोही ने उसे सोते में गिरफ्तार करा दिया। उसे आजीवन कारावास का दंड देकर अदन की जेल में बंद कर दिया गया जहाँ उनका प्राणांत हुआ। वासुदेव बलवंत फड़के के अंत के साथ ही छापामार युद्धों का युग समाप्त हो गया।

4.7.2. महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन

1918 की विद्रोह समिति की रिपोर्ट ‘ैमकपजपवद ब्वउउपजजमम त्मचवतज) से ज्ञात होता है कि क्रांतिकारी आंदोलन सर्वप्रथम महाराष्ट्र में प्रारम्भ हुआ, विशेषकर पूना जिले के चितपावन ब्राह्मणों में। ये ब्राह्मण महाराष्ट्र के शासकों शिवाजी एवं शाहू के पेशवाओं के वंशज थे। इन ब्राह्मणों में स्वराज्य प्राप्ति की उग्र भावना थी तथा वे उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। बाल गंगाधर तिलक जी स्वयं चितपावन ब्राह्मण थे, ने लोगों में स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में संगठित करने के उद्देश्य से 1893 में ‘‘गणपति त्यौहार’’ तथा 1895 में ‘‘शिवाजी महोत्सव’’ मनाना शुरू किया। महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन के नेता चापेकर बंधु, श्यामकृष्ण वर्मा तथा वी.डी. सावरकर थे।

(i) चापेकर बंधु (1897 ई) – महाराष्ट्र के पूना में दामोदर हरि चापेकर, बालकृष्ण हरि चापेकर और वासुदेव हरि चापेकर जिन्हें चापेकर बन्धु के नाम

से जाना जाता है। चापेकर बन्धुओं ने 22 जून 1897 को पूना के प्लेग समिति के प्रधान मि.रैण्ड और एक पुलिस अधिकारी लेफ्टिनेंट एमहर्स्ट (स्ज ।लमतेज) की हत्या कर दी। इस हत्या का कारण प्लेग समिति द्वारा प्लेग प्रभावित क्षेत्रों में सेना नियुक्त करना था, जो आम जनता पर अत्याचार करते थें। इस हत्याकांड में दोनों चापेकर बन्धुओं को फाँसी की सजा दी गई। सबसे छोटे भाई वासुदेव हरि चापेकर को भी मुखबिर की हत्या के अपराध में मृत्युदण्ड मिला। चापेकर बन्धु तिलक के विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने 15 जून 1897 को केसरी में लिखे गये तिलक के लेख कि ''यदि कोई व्यक्ति निष्काम भाव से कर्म करता है तो उसे कोई दोष नहीं लगता है'', से प्रेरित होकर हत्याकांड को अंजाम दिया था। सरकार ने चापेकर बन्धुओं को उत्तेजित करने के लिए तिलक को उत्तरदायी ठहराया तथा उन्हें 18 माह का कठोर कारावास की सजा दी गई। तिलक को बंदी बनाए जाने से महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन का उदय हुआ। तिलक की रचनाओं से क्रांतिकारियों ने प्रेरणा ग्रहण की।

(ii) **अभिनव भारत समिति** – रैण्ड एवं आर्यस्ट की हत्या के बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा इंग्लैण्ड चले गये क्योंकि इस घटना में उनका हाथ बताया जाता था। 1906 में उनके छोटे भाई विनायक दामोदर सावरकर भी इंग्लैंड चले गये तथा श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ बंटाने लगे। सावरकर बन्धुओं ने नासिक में 1899 ई0 में 'मित्र मेला' नामक संगठन बनाया। इस संगठन द्वारा एक क्रांतिकारी संगठन का रूप ले लेने के कारण इस संगठन का नाम 1904 ई0 में ''अभिनव भारत'' समाज कर दिया। इस संगठन की शाखाएँ संपूर्ण महाराष्ट्र में फैला था। वे दोनों लंदन से अपने क्रांतिकारी संदेश और साहित्य दामोदर सावरकर के भाई गणेश सावरकर को भेजा करते थें। 1909 में उन्होंने गणेश सरकार को पिस्तौलों का एक पार्सल भेजा किन्तु पार्सल मिलने से दो दिन पूर्व ही 2 मार्च 1909 को पुलिस ने उन्हें राजद्रोह के आरोप में गिरफ्मार कर लिया तथा उन्हें 9 जून 1909 ई को बम्बई उच्च न्यायालय ने उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया।

(iii) **श्यामजी कृष्ण वर्मा** – श्यामजी वर्मा पूना हत्याकांड के बाद इंग्लैण्ड चले गये थे। 1905 में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में इंडिया होमरूल सोसायटी का गठन किया। इसका कार्यालय इंडिया हाउस के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्यामजी ने इंडियन सोशियोलॉजिस्ट नामक मासिक पत्रिका शुरू हुआ। वी. डी.सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल धींगरा जैसे क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा के इंडिया हाउस से जुड़े।

मदन लाल धींगरा द्वारा कर्जन बाइली की हत्या करने के बाद श्यामजी कृष्णजी को इंडिया हाउस बंद करना पड़ा और वे पेरिस चले गये।

(iv) **वी.डी. सावरकर** – विनायक दामोदर सावस्कर ने मैजिनी के यंग इंडिया के तर्ज पर 1899 ई में नासिक में ''मित्र मेला'' नामक एक संस्था बनाई। इस संगठन द्वारा एक क्रांतिकारी संगठन का रूप ले लेने के कारण इस संगठन का नाम 1904 ई0 में अभिनव भारत समाज कर दिया गया। यह संगठन अभिनव भारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1906 में सावरकर इंडिया हाउस के फेलोशिप पर पढ़ाई के लिए लंदन गए तथा श्याम जी कृष्ण वर्मा के कार्यों में हाथ बँटाने लगे। 1908 में इंडिया हाउस में 1857 क्रान्ति की स्वर्ण जयंती मनाई गई। वी.डी. सावरकर ने 1857 के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम कहा। उन्होंने अपने विचारों को 'द इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेस' में व्यक्त किया। दामोदर सावरकर को बंदी बनाकर भारत भेजा गया किंतु वह जहाज से बच निकले। तैरकर वे फ्रांस के एक बंदरगाह पहुँचे जहाँ वे बंदी बना लिये गये। उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया गया।

(v) **गणेश सावरकर** – गणेश सावरकर वी.डी. सावरकर के छोटे भाई थे। श्याम जी कृष्ण वर्मा एवं वी.डी. सावरकर अपने क्रांतिकारी संदेश और साहित्य गणेश सावरकर को भेजा करते थें तथा वे भारत में क्रांतिकारियों के बीच उसका प्रचार–प्रसार करते थें। 1909 को उन्होंने गणेश सावरकर को पिस्तौलों का एक पार्सल भेजा किन्तु पार्सल मिलने से दो दिन पूर्व ही 2 मार्च 1909 को पुलिस ने गणेश सरकार को राजद्रोह एवं राजद्रोहात्मक साहित्य के प्रकाशन के आरोप में बंदी बना लिया। 9 जून 1909 ई0 को बंबई उच्च न्यायालय ने उन्हें नासिक षडयंत्र केस में आजीवन कारावास का दंड दिया गया। अभिनव समिति के 27 सदस्यों पर नासिक षडयंत्र केस के तहत अभियोग चलाया गया। उनमें से तीन को मृत्यु दंड दिया गया।

(vi) **मदन लाल धींगरा** – मदन लाल धींगरा इंडिया हाउस से जुड़े थें। 1909 में मदन लाल धींगरा ने ब्रिटिश सरकार के भारत कार्यालय इंडिया ऑफिस में नियुक्त कर्नल विलियम कर्जन वाइली जो राजनीतिक मामलों का सहायक था, की गोली मार हत्या कर दी गई। धींगरा को फांसी की सजा दी गई।

(vii) अनंत लक्ष्मण करकरे ने नासिक के अप्रिय जिला मजिस्ट्रेट जैक्सन की 21 दिसम्बर 1909 को हत्या कर दी।

(viii) नवम्बर 1909 में लॉर्ड मिन्टो की गाड़ी को बम से उड़ा देने का प्रयास किया गया किन्तु समय पर बम न फट सकने के कारण वह बच गया।

(ix) 1910 में अभिनव भारत सभा ने सतारा षडयंत्र कांड को अंजाम दिया।

4.7.3. बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन

(i) **बंग–भंग आंदोलन (1905 ई.) :–** लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन 1905

ई में कर दिया। इसके विरोध में बंगाल में स्वदेशी आंदोलन चलाया जा रहा था। इसके अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा था। कर्जन की बंगाल विभाजन घोषणा से सारा बंगाल जल उठा तथा गोपनीय क्रांतिकारी समितियाँ सक्रिय हो उठी। अंग्रेजी शासन के विरूद्ध बमों, पिस्तौलों का उपयोग होने लगा। यह आंदोलन बंगाल तक समिति न रहकर समस्त भारत में फैल गया। आंदोलन के फलस्वरूप बंगाल में राजनैतिक जागृत आ गई। शीघ्र ही आंदोलन का उद्देश्य विभाजन को रद्द करवाना ही नहीं बल्कि स्वराज्य की प्राप्ति बन गया।

(ii) अनुशीलन समिति – बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपात भद्रलोक समाज में हुआ। बंगाल के क्रांतिकारी नेता बारीन्द्र नाथ घोष (अरविन्द घोष के छोटे भाई) और भूपेन्द्र नाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई) थे। इन्हें क्रांति का अग्रदूत माना जाता है। इन दोनों ने युगांतर एवं संध्या नामक क्रांतिकारी पत्रों द्वारा क्रांतिकारी विचारधारा का प्रचार किया। 1902 में मिदनापुर में ज्ञानेन्द्रनाथ बसु ने अनुशीलन समिति नामक एक क्रांतिकारी संगठन का गठन किया। जिसमें सदस्यों को भारतीय इतिहास, संस्कृति और राष्ट्रवाद तथा राजद्रोहात्मक सिद्धान्तों की शिक्षा एवं शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। इस संगठन की लगभग 200 शाखाएँ पूरे बंगाल में फैली थी तथा कलकत्ता एवं ढाका इसके मुख्य केन्द्र थे। इसके सदस्यों को माता काली के समक्ष अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने के लिए व्रत लेना पड़ता था। जतींद्रनाथ बनर्जी एवं बारीन्द्र नाथ घोष कलकत्ता अनुशीलन समिति के सदस्य थे। 1905 में बारीन्द्र घोष ने ''भवानी मंदिर'' नामक पुस्तक लिखा जिसमें क्रांतिकारी गतिविधियों को संगठित करने पर प्रकाश डाला गया। बाद में उन्होंने rules of modern warfare (आधुनिक रणनीति के नियम) नामक पुस्तिका लिखी। बंगाल में क्रांतिकारियों की हिंसक गतिविधियाँ 1906 से आरम्भ हुई। जब क्रांतिकारी समूहों ने धन की व्यवस्था करने के लिए डकैतियों के षडयंत्र रचे गये। 1907 में पूर्वी बंगाल एवं बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नरों की हत्या के असफल प्रयास किये गये।

(ii) 6 दिसम्बर 1907 ई0 को मिदनापुर के समीप क्रांतिकारियों द्वारा उस रेलगाड़ी पर बम फेंका गया, जिसमें बंगाल का गवर्नर यात्रा कर रहा था। गवर्नर बाल–बाल बच गया।

(iii) 23 दिसम्बर 1907 ई0 को क्रांतिकारियों ने ढाका के भूतपूर्व जिला मजिस्ट्रेट की हत्या करने का असफल प्रयत्न किया।

(iv) खुदीराम बोस एवं प्रफुल्ल चाकी – 30 अप्रैल 1908 को मिदनापुर के

नवयुवक खुदीराम बोस एवं प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर (बिहार) के जज किंग्सफोर्ड को जान से मारने के इरादे से एक बग्धी पर बम फेंका। किंग्सफोर्ड बग्धी में नहीं था। दुर्भाग्यवश दो अंग्रेज महिलाएँ मारी गई। इस घटना ने पूरे भारत तथा ब्रिटेन में सनसनी फैला दी। प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या कर लिया तथा 18 वर्षीय खुदीराम बोस को मृत्युदंड दिया गया। खुदीराम बोस के बलिदान का भारतीय नवयुवकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह बंगाल का राष्ट्रीय वीर शहीद बन गया। उसकी शहादत हर बंगाली की जुबान पर छा गया।

(v) अलीपुर षडयंत्र – 1908 में सरकार को एक षडयंत्र की जानकारी मिली। बंगाल पुलिस ने अवैध हथियारों की तलाशी के उद्देश्य से मणिकतल्ला एवं कलकत्ता के विभिन्न स्थानों पर तलाशियाँ ली। अरविन्द घोष तथा उनके भाई बारीन्द्र नाथ घोष व हीरेन्द्र दास सहित 34 व्यक्तियों को बंदी बनाकर उन पर मुकदमा चलाया गया जो अलीपुर षडयंत्र कांड के नाम से प्रसिद्ध है। नरेन्द्र गोसाई नामक एक आरोपी सरकारी गवाह बन गया, जिसकी जेल में ही हत्या कर दी गई। फरवरी 1909 में कलकत्ता में अलीपुर षडयंत्र केस से संबंधित सरकारी वकील तथा 24 फरवरी 1910 को उप–पुलिस अधीक्षक की कलकत्ता उच्च न्यायालय से बाहर आते समय हत्या की दी गई। अलीपुर षडयंत्र मुकदमा के अधिकांश आरोपी साक्ष्य के अभाव में बरी हो गए। अन्य मामले में फंसाये जाने से पूर्व ही अरविन्द घोष फ्रांस प्रशासित क्षेत्र पांडिचेरी चले गए। कन्हाई लाल व सत्येन्द्र को मृत्युदंड तथा बारीन्द्र नाथ घोष घोष को आजीवन कारावास की सजा मिली।

रौलट कमेटी की रिपोर्ट में 1906 से 1917 के मध्य बंगाल में 110 डाके तथा हत्या के 60 प्रयत्नों का उल्लेख किया गया है।

4.7.4. पंजाब में क्रांतिकारी आंदोलन

कूका विद्रोह के बाद पंजाब में गुप्त क्रांतिकारी समितियों का अस्तित्व नहीं था किन्तु जनता में सरकार की भूमि नीति के विरूद्ध तीव्र असंतोष व्याप्त था। पंजाब में 1907 में क्रांतिकारी दलों का गठन हुआ। अधिकांश पंजाबी क्रांतिकारी आर्य समाजी तथा कुछ पंजाबी मुसलमान थे। 1907 में सरदार अजीत सिंह, भाई परमानंद तथा लाला हरदयाल ने क्रांतिकारियों को संगठित किया। सरदार अजीत सिंह एवं सूफी प्रसाद ने मिलकर भारत माता सोसायटी नामक संस्था की स्थापना की। 1907 में लाला लाजपत राय व सरदार अजीत की गिरफ्तारी के बाद सरकार को पंजाब में विद्रोह की आशंका होने लगी। सरकार ने भूमि संबंधी नीति में जनता की इच्छानुसार परिवर्तन कर दिया जिससे पंजाब में क्रांतिकारी गतिविधियों में कमी आई।

दिल्ली उस समय पंजाब का ही भाग था। यह पंजाबी क्रांतिकारियों का केन्द्रस्थल था। रास बिहारी बोस ने पंजाब के क्रांतिकारियों की मदद की। गदर आंदोलन के सदस्य करतार सिंह सराभा ने रास बिहारी बोस के साथ मिलकर पंजाब में क्रांतिकारी गतिविधियों को संगठित करने का प्रयास किया।

4.7.5. दिल्ली षडयंत्र कांड

22 दिसम्बर 1912 को दिल्ली के भारत की राजधानी बनने पर गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग के ऊपर बम फेंककर हत्या का असफल प्रयत्न किया गया। दिल्ली षडयंत्र कांड में 13 व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया। यह योजना रास बिहारी बोस ने बनाई थी। गिरफ्तारी से बचने के लिए बोस जापान चले गये। गिरफ्तार व्यक्तियों में अमीरचंद्र अवध बिहारी, लाला मुकुन्द्र बसंत कुमार प्रमुख थे। इसी केस में अमीर चंद्र को फाँसी की सजा दी गई।

4.7.6. मद्रास में क्रांतिकारी आंदोलन

मद्रास में भी क्रांतिकारी आंदोलन का सूत्रपात हुआ। विपिनचंद्र पाल ने 1907 में मद्रास का दौराकर अपने विचारों का प्रचार किया। अरविन्द्र घोष के विरूद्ध अलीपुर षडयंत्र कांड में गवाही न देने के कारण उन्हें 6 माह का दंड दिया गया था। कारावास से छूटने पर उनके सम्मान में स्थानीय क्रांतिकारी नेता सुब्रह्यमण्यम शिव एवं चिदम्बरम पिल्लै ने स्वागत समारोह का आयोजन किया जिसके कारण दोनों नेताओं को 12 मार्च 1909 को बंदी बना लिया गया। प्रतिक्रियास्वरूप तिरूनेवेली में जमकर उपद्रव हुआ। जनता ने सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया तथा थानों पर हमले किये गये। नवयुवकों पर क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव पड़ा। एम. पीतिहल आचार्य व बी.बी.एस. नय्यर उनके प्रेरणास्रोत थे। उपद्रव का दमन करने के लिये अनेक उपद्रवियों को गिरफ्तार किया। इन गिरफ्तारियों का विरोध करते हुए 10 जून 1911 ई को क्रांतिकारियों ने तिरूनेवेली के मजिस्ट्रेट की गोली मारकर हत्या कर दी गई।

4.7.7. विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन

भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ भारत ही नहीं विदेशों में भी सक्रिय थी।

(i) **फ्रांस** – फ्रांस में क्रांतिकारियों की सहायता मैडम भीखाजी कामा करती थीं। एक गुजराती व्यापारी एम.एस. राना पारसी महिला भीखाजी कामा से विवाह कर पेरिस में बस गये थें। इनके द्वारा भारतीय छात्रों को दो हजार रूपये की यात्रा छात्रवृत्तियाँ दी जाती थी। मैडम कामा वंदेमातरम नामक पत्रिका संपादन करती थी। यूरोप के भारतीय क्रांतिकारी भारत में क्रांतिकारियों की सहायता करते थें।

(ii) **गदर आंदोलन** – लाला हरदयाल पंजाब के बहुत बड़े क्रांतिकारी नेता थे।

उन्होंने 1 नवम्बर 1913 ई को सं.रा. अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को नगर में गदर दल की स्थापना की सोहन सिंह भाकना इसके सहसंस्थापक अध्यक्ष थें। रामचन्द्र तथा बरकतुल्ला ने इस कार्य में उनकी सहायता की। इस दल ने गदर नामक साप्ताहिक पत्रिका भी चलाया जो कि 1857 के गदर की स्मृति में स्थापित की थी। इस पत्रिका के माध्यम से गदर दल ने अपने क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया। ब्रिटिश शासन के विरूद्ध कार्य करने पर अमेरिकी सरकार ने उन पर मुकदमा चलाया तथा उन्हें वहां से भागने के लिए बाध्य किया। मार्च 1914 में उन्हें अमेरिकी सरकार द्वारा बंदी बना लिया गया तथा बाद में वे जमानत पर रिहा कर दिये गये। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर वे अपने साथियों के साथ जर्मनी चले गये जहाँ उन्होंने बर्लिन में भारतीय स्वतंत्रता समिति का गठन किया। इस समिति का उद्देश्य विदेशों में रहने वाले भारतीयों को स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में कार्य करने तथा भारत में क्रांतिकारियों की मदद करने के लिये प्रेरित करना, भारतीय क्रांतिकारियों के लिये विस्फोटक भेजना आदि। करतार सिंह सराभा हथियारों से लदे एक जहाज में भारत के लिए रवाना हुए परन्तु अंग्रेजों को इसकी जानकारी मिल गई। जहाज तो पकड़ लिया गया किन्तु करतार सिंह सराभा बच निकले। उन्होंने पंजाब आकर क्रांतिकारी गतिविधियों को संगठन करने व रंगून के ब्लूच रेजीमेंट में विद्रोह कराने का प्रयास किया।

(iii) लाहौर षडयंत्र कांड – प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लाहौर षडयंत्र कांड हुआ। इसमें क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध सशस्त्र सैनिक विद्रोह की तैयारियाँ प्रारम्भ की। जब गोपनीय समितियाँ भारत को आजादी दिलाने में असफल रहा तो कुछ क्रांतिकारियों का ध्यान इस ओर गया कि सेना के समर्थन के बिना स्वाधीनता प्राप्त करना असंभव है। अतः इस बात का प्रयत्न शुरू किया गया कि सेना को ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भड़काकर उन्हें विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया जाय। बर्लिन में कार्यरत भारतीय स्वाधीनता समिति के सदस्यों ने रास बिहारी बोस के नेतृत्व एवं निर्देशन में संपूर्ण देश में 21 फरवरी 1915 को सशस्त्र विद्रोह किया जाय किन्तु कृपाल सिंह नामक एक देशद्रोही ने इसकी जानकारी सरकार को देकर सम्पूर्ण योजना पर पानी फेर दिया। रास बिहारी बोस भागकर जापान चले गये जहाँ वे क्रांतिकारियों को संगठित करने लगे। सरकार ने लाहौर षडयंत्र कांड से जुड़े 61 क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया। राजद्रोह के आरोप में 24 क्रांतिकारियों को मृत्युदंड व शेष को आजीवन कारावास का दंड दिया गया।

(iv) कामा–गाटा–मारू कांड (1914 ई) – कामा–गाटा–मारू कांड ने पंजाब में विस्फोट की स्थिति उत्पन्न कर दी। बाबा गुरूदत्त सिंह ने कामा–गाटा मारू

नामक एक जापानी जहाज को किराये पर लिया। यह जहाज 372 पंजाबियों जिनमें 351 सिक्ख व 21 मुसलमान थे, को लेकर कनाडा रवाना हुआ। ये लोग स्वतंत्र जीवन का आनंद लेने के उद्देश्य से पराधीन भारत छोड़कर जा रहे थे। कनाडा की अंग्रेजी सरकार ने इन अप्रवासियों को बैकुंअर बंदरगाह पर उतरने नहीं दिया गया। दो माह तक जहाज समुद्र में खड़ा रहा। इसे सिंगापुर एवं हांगकांग के बंदरगाहों में भी प्रवेश की अनुमति नहीं दी गई। बाध्य होकर कामा–गाटा–मारू जहाज यात्रियों को लेकर 27 सितम्बर 1914 को वापस कलकत्ता (बजबज) बंदरगाह लौट गया। बाबा गुरूदत्त सिंह को गिरफ्तार करने का प्रयास किया गया किंतु वह बच निकले। यात्रियों को एक रेलगाड़ी में भेजने की योजना बनाई गई। यात्रियों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोह के दमन में 18 सिख मारे गये। इस घटना के विरोध में मेवासिंह ने कनाडा के विदेश विभाग के प्रधान होपकिंस की हत्या कर दी। इस कार्य को अंजाम देने में गदर दल ने प्रमुख भूमिका निभायी। बचे यात्री में से अधिकांश क्रांतिकारी बन गए तथा अनेक क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम दिया।

4.8 क्रांतिकारी आंदोलन का दमन

ब्रिटिश सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए 1907 का राजद्रोही सभाओं को रोकने का अधिनियम (Prevention of Seditions Meetings Act), 1908 का विस्फोटक पदार्थ अधिनियम (Explosive Substances Act), 1908 का ही भारतीय फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम तथा समाचार पत्रों के लिए (अपराधों के लिए प्रोत्साहन) अधिनियम, 1910 का समाचार पत्र अधिनियम तथा 1915 का भारतीय सुरक्षा नियम (Defence of India rules) बना दिया। इन अधिनियमों का खुला दुरूपयोग किया जिसके कारण कुछ काल के लिए क्रांतिकारी गतिविधियों में कमी आई।

4.9 क्रांतिकारी आंदोलन का दूसरा चरण

1919 में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया तो क्रांतिकारियों द्वारा भी इस आंदोलन के परिणामों की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा की जाने लगी लेकिन जब इस आंदोलन को अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिली तो क्रांतिकारियों ने पुनः संगठित होकर क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देना प्रारम्भ कर दिया। भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों में क्रांतिकारी संगठन बन गए। क्रांतिकारियों ने एक अखिल भारतीय संगठन के निर्माण पर बल दिया। फरवरी 1920 में रिहा होने के बाद सचीन्द्र ने सभी क्रांतिकारियों को संगठित करने का प्रयास शुरू किया। अक्टूबर 1924 में समस्त क्रांतिकारी दलों का कानपुर में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें सचिन्द्र सान्याल, जगदीशचन्द्र चटर्जी तथा रामप्रसाद बिस्मिल जैसे

प्रख्यात क्रांतिकारी नेता एवं भगत सिंह, शिव वर्मा, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा व चंद्रशेखर आजाद जैसे युवक क्रांतिकारियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के फलस्वरूप हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संघ (भ्पदकनेजंद त्मचनइसपबंद ेवबपंजपवद) का जन्म का उदय हुआ। इस दल के तीन मुख्य उद्देश्य थें –

- भारतीय जनता में गाँधी जी की अहिंसात्मक नीतियों की निरर्थकता के प्रति जागृति उत्पन्न करना।
- पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा क्रांति की आवश्यकता का प्रदर्शन करना। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के स्थान पर समाजवादी विचारधारा से प्रेरित, संयुक्त भारत में संघीय गणतंत्र की स्थापना करना जिसे संयुक्त राज्य भारत कहा जाय।
- क्रांतिकारियों ने अपने कार्य की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने के लिए निजी व्यक्तियों को न लूटकर, सरकारी कोषों को अपना निशाना बनाने का निश्चय किया।
- एच.आर.ए. की शाखाओं का विस्तार करना।

4.9.1. काकोरी कांड

फरवरी 1924 में हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संघ के द्वारा देश में सशस्त्र क्रांति करने के लिए बड़ी मात्रा में शस्त्र खरीदने के लिए रेलगाड़ी में जा रहे सरकारी खजाने को लखनऊ के निकट काकोरी में लूटने की योजना बनाई गई। 9 अगस्त 1925 ई0 को संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के क्रांतिकारियों ने उत्तर रेलवे के सहारनपुर – लखनऊ लाइन पर कोकारी नामक स्थान पर रात्रि आठ बजे रेलगाड़ी में बैठे 10 सशस्त्र क्रांतिकारियों ने जंजीर खींचकर रेलगाड़ी रोककर सफलतापूर्वक सरकारी राजकोष को लूट लिया तथा फरार हो गये। इस योजना रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में अंजाम दिया गया। यह घटना काकोरी लूटकांड के नाम से प्रसिद्ध है। इस कांड में पुलिस द्वारा 29 क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर उनपर मुकदमा चलाया गया।

इस लूटकांड के आरोपियों में से रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशन सिंह तथा अशफाक उल्लाह को मृत्युदंड तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा बख्शी को आजीवन कारावास एवं मन्मथ नाथ गुप्त को 14 वर्ष की कैद तथा शेष को 10 वर्ष कठोर कारावास का दंड दिया गया। रामप्रसाद बिस्मिल यह कहते हुए कि ''मैं अंग्रजी राज्य के पतन की इच्छा करता हूँ'' प्रसन्नतापूर्वक फाँसी पर लटक गए। रोशन सिंह ने वन्देमातरम गाते हुए अपनी शहादत दी।

4.9.2. केन्द्रीय विधानपरिषद बमकांड

काकारी कांड के बाद भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, राजगुरू एवं चन्द्रशेखर आजाद ने क्रांतिकारी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना शुरू किया। इन क्रांतिकारियों ने हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संघ का नाम परिवर्तित कर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी रख दिया। 10 अक्टूबर 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शन का नेतृत्व कर रहे शेर–ए–पंजाब लाला लाजपत राय की पुलिस कप्तान साण्डर्स ने भीषण पिटाई की। लाला लाजपत राय को गंभीर चोटे आई जिसके कारण कुछ दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने के लिए 30 अक्टूबर 1928 को क्रांतिकारियों ने साण्डर्स की गोली मारकर हत्या कर दी। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद व राजगुरू द्वारा की गई सांडर्स की हत्या एच.एस.आर.एल. की पहली क्रांतिकारी गतिविधि थी।

8 अप्रैल 1929 को केंद्रीय विधानपरिषद में पब्लिक सेफ्टी विधेयक और ट्रेड डिसप्यूट विधेयक पर बहस चल रहा था। इस बात की पूरी संभावना थी कि गवर्नर जनरल इस विधेयक के संबंध में अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर उसे कानूनी रूप दे देगा। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना (एच.एस.आर.एल.) ने जनसामान्य की इच्छा को ध्यान में रखते हुए इस विधेयक को पारित होने से रोकने के लिए सभा में बम फेंका गया। इस कार्य को भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त ने सफलतापूर्वक अंजाम दिया। जिस समय विधेयक पर मत डाला जाने वाला था, उसी समय सभा की खाली कुर्सी की ओर बम फेंका गया तथा दोनों ने इन्कलाब जिन्दाबाद तथा साम्राज्यवाद का नाश हो का नारा दिया। दोनों ने भागने के स्थान पर सदन में पर्चे फेंके जिस पर लिखा गया था कि ''बहरों को सुनाने के लिए ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है।'' पूर्व निश्चय के तहत उन्होंने अपने गिरफ्तार करवाया। पुलिस ने इन पर मुकदमा चलाया। बम फेंकने का उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं बल्कि देश में जागृति पैदा करना था। न्यायालय में बयान देकर इन क्रांतिकारियों ने हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक सेना के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों पर प्रकाश डालकर उन्हें जनता के बीच लाकप्रिय बनाया। चूँकि विधानसभा में बम फेंकने के लिए फांसी नहीं दी जा सकती थी अतएव सरकार ने इस कांड को सांडर्स हत्याकांड व लाहौर षडयंत्र केस से जोड़कर उन्हें मृत्युदंड दिलवा दिया। इन क्रांतिकारियों ने जेल की अमानवीय स्थिति के विरूद्ध आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन के 64वें दिन 13 सितम्बर 1930 को जतिनदास की मृत्यु हो गई। 23 मार्च 1931 को सरदार भगत सिंह, राजगुरू व सुखदेव को फाँसी की सजा दे दी गई। उनके शवों को रात्रि में ही फिरोजपुर में जला दिया गया। उनके साथियों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। इन अमर शहीदों के बलिदान पर संपूर्ण देश में शोक मनाया गया।

4.9.3. चट्टगाँव विद्रोह

1930 के आसपास बंगाल में क्रांतिकारी संगठित होने लगे। चट्टगाँव क्रांतिकारियों के केन्द्र स्थल के रूप में उभरा। इस समय मास्टर सूर्यसेन बंगाल के सबसे बड़े क्रांतिकारी नेता थे। उन्होंने प्दकपंद त्मचनइसपब ।तउल नामक संगठन की स्थापना की। अनंत सिंह, गणेश घोष, लोकीनाथ बाठल व अंबिका चक्रवर्ती उनके प्रमुख सहयोगी थे। इन सभी क्रांतिकारियों ने चटगाँव विद्रोह की योजना बनाई जिसमें चटगाँव के दो शस्त्रागारों, पर कब्जा कर हथियारों को लूटना, संचार व्यवस्था को समाप्त करना तथा रेल संपर्क को भंग करना शामिल था। 19 अप्रैल 1930 को इन लोगों ने पुलिस शस्त्रागार पर अधिकार तो कर लिया किन्तु वे गोला–बारूद को पाने में असमर्थ रहे। इन्होंने वन्दे मातरम और इंकलाब जिन्दाबाद का नारा लगाते हुये शस्त्रागार के बाहर तिरंगा झंडा फहराया तथा अस्थायी क्रांतिकारी सरकार के गठन की घोषणा की। चूँकि ये ब्रिटिश सेना से प्रत्यक्ष रूप से टक्कर नहीं ले सकते थें, अतः उन्होंने जालालबाद के पहाड़ियों में शरण लिया। 16 फरवरी 1933 में सूर्यसेन को गिरफ्तार कर लिया गया तथा 12 जनवरी 1934 को उन्हें मृत्युदंड दिया गया।

4.9.4. चन्द्रशेखर आजाद की शहादत

काकोरी कांड व लाहौर षडयंत्र केस में चंद्रशेखर आजाद भी सम्मिलित थें किन्तु पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने में असफल रही। भगत सिंह एवं उनके साथियों की फांसी के बाद क्रांतिकारी दल के नेतृत्व का संपूर्ण भार आजाद पर आ गया। यशपाल, सुखदेव राज, राधामोहन गोकुल, भगवती चरण बोहरा व उनकी पत्नी दुर्गा देवी उनके प्रमुख सहयोगी थे। लॉर्ड इरविन ने भगत सिंह व उनके साथियों की मृत्यु को आजीवन कारावास में बदलने से इंकार कर दिया था। भगत सिंह व अन्य क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियों का बदला लेने के लिए चंद्रशेखर आजाद एवं यशपाल ने 23 दिसम्बर 1929 ई को निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन के पास वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ा देने की योजना बनाई। सफल कार्यवाही के बावजूद वायसराय बच गया। इसी दिन हरिकिशन नामक क्रांतिकारी ने पंजाब के गवर्नर की हत्या करने के उद्देश्य से उस पर गोली चलाया। गवर्नर गंभीर रूप से घायल हो गया किन्तु उसकी मृत्यु नहीं हुई।

चंद्रशेखर आजाद यशपाल को स्वाधीनता संघर्ष में सहायता प्राप्त करने के लिए रूस भेजना चाहते थें। 27 फरवरी 1931 ई को वे इस विषय में अपने साथी सुखदेव से इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में विचार–विमर्श कर रहे थे। इसी समय पुलिस ने उन्हें घेर लिया। सुखदेव वहाँ से बच निकले। दोनों तरफ से गोलाबारी हुई। अंतिम गोली चंद्रशेखर आजाद ने खुद को मार कर अपनी शहादत दे दी। संपूर्ण भारत उनके शहादत के समक्ष नतमस्तक हुआ। आजाद की शहादत से क्रांतिकारी दल को अपूर्णीय क्षति हुई तथा वह कमजोर पड़ गई। इस तरह उत्तर

भारत में एच.एस.आर.ए. की क्रांतिकारी गतिविधियाँ समाप्त हो गई।

4.10 आजाद हिन्द फौज

1939 ई द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने के बाद सुभाष चंद्र बोस ब्रिटिश शासन के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उभरे। उन्होंने अपने गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार के नाक में दम कर दिया। उनके गतिविधियों से परेशान होकर सरकार ने 1940 में उन्हें भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार कर कलकत्ता के प्रेसीडेंसी जेल में रखा गया। स्वास्थ्य खराब होने के कारण उन्हें जेल से रिहाकर उन्हें उनके मकान में ही नजरबंद कर दिया गया।

17 जनवरी 1941 को सुभाषचंद्र बोस वेश बदलकर घर से निकलकर पेशावर, काबुल, मॉस्को होते हुए जर्मनी जा पहुँचे। जर्मनी में ही हिटलर ने उन्हें नेताजी की उपाधि दी। जर्मनी के सहयोग से वे रूस के रास्ते भारत पर आक्रमण करना चाहते थें किन्तु जर्मनी द्वारा उन्हें वांछित सहयोग नहीं मिल सका। इसी बीच रासबिहारी बोस ने जापान में आजाद हिन्द फौज के गठन की योजना बनाई। उन्होंने प्दकपंद प्दकमचमदकमदबम स्मंहनम की स्थापना की। रास बिहारी बोस के आमंत्रण पर बोस पनडुब्बी द्वारा 13 जून 1943 को टोकियो पहुँचे। 7 जुलाई 1943 रासबिहारी बोस ने आजाद हिन्द फौज का मुख्य सेनापति सुभाष चंद्र बोस को घोषित कर आजाद हिन्द फौज की कमान सौंप दी। उन्होंने ''दिल्ली चलो'' का नारा दिया तथा कहा कि ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा।''

21 अक्टूबर 1943 को सुभाष चंद्र बोस ने स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार स्थापित की जिसे जापान, जर्मनी, इटली सहित 8 अन्य देशों की सरकारों ने मान्यता दिया। इस अस्थायी सरकार ने हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा, जय हिन्द को अभिवादन, कांग्रेस के तिरंगे झंडे को हिन्दुस्तानी झंडा, रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता जन–गण–मन अधिनायक जय हो, को राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किया। इस सरकार ने ब्रिटेन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा जापानी सरकार के सहयोग से भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई। आजाद हिन्द फौज को भारत–वर्मा सीमा पर मित्र राष्ट्रों से युद्ध करने के लिए भेजा गया। इस सेना ने कोहिमा पर अधिकार कर लिया। युद्ध में पराजित होने से जापान द्वारा उन्हें सहायता प्राप्त नहीं हो सका। वे 18 अगस्त 1945 ई को रंगून से टोकियो की ओर चले किंतु मार्ग में हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। यद्यपि सुभाष चंद्र बोस व आजाद हिन्द फौज अपने उद्देश्यों में सफल तो नहीं हो सके किन्तु उन्होंने हताश व निराश राष्ट्रवादियों में नई प्रेरणा एवं राजनीतिक जागृति का संचार किया। सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के द्वारा लड़े गये युद्ध ने भारत को स्वतंत्रता के निकट पहुँचा दिया।

4.10.1. सेना का विद्रोह

भारतीय राष्ट्रीय ओदालन और आजाद हिन्द फौज के शौर्यपूर्ण कार्य का भारतीय सैनिकों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। विभिन्न कारणों से नौसेना, एवं वायुसेना के भारतीय सैनिकों में व्यापक असंतोष व्याप्त था। 1946 में यह असंतोष स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ गया।

(क) नौसेना विद्रोह – 19 फरवरी, 1946 को मुम्बई के सिगनल्स प्रशिक्षण प्रतिष्ठान एस.एम.आई.एस. तलवार के शाही नौ सेना के 1100 सैनिक कर्मचारियों ने खराब भोजन व जातीय भेदभाव को लेकर हड़ताल कर दिया। सैनिकों ने आजाद हिन्द फौज के बिल्ले लगाए तथा अंग्रेज सैनिकों से बराबरी की माँग की। सरदार वल्लभ भाई पटेल व मोहम्मद अली जिन्ना के दबाव के कारण विद्रोहियों ने 25 फरवरी, 1946 ई को हड़ताल समाप्त कर दिया।

(ख) वायुसेना विद्रोह – 20 फरवरी, 1946 ई को करांची में वायुसेना के सैनिकों ने हड़ताल कर दिया जो शीघ्र ही बम्बई, लाहौर व दिल्ली में फैल गया। इसमें लगभग 5200 सैनिकों ने भाग लिया तथा भारतीय व अंग्रेज सैनिकों में बराबरी की माँग की। सरदार वल्लभ भाई पटेल के आश्वासन पर 25 फरवरी 1946 ई को हड़ताल समाप्त हुआ।

4.11 क्रांतिकारी आंदोलन की असफलता के कारण

(i) **केन्द्रीय संगठन का अभाव** – क्रांतिकारियों का कोई केन्द्रीय संगठन नहीं था जो विभिन्न प्रांतों में आतंकवादी कार्यों का संगठन तथा समन्वय कर सके। संगठन के अभाव में विभिन्न प्रांतों के क्रांतिकारी नेताओं में परस्पर सहयोग तथा समन्वय नहीं था।

(ii) **लोकप्रिय आंदोलन नहीं** – क्रांतिकारी आंदोलन लोकप्रिय नहीं बन सका। यह केवल मध्य वर्ग के शिक्षित नवयुवकों तक सीमित रहा। चूँकि इन युवकों पर जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं था। अतः जनसाधारण का सहयोग तथा समर्थन इसे प्राप्त न हो सका।

(iii) **उच्च मध्यमवर्ग की सहानुभूति का अभाव** – भारतीय राजनीति के अधिकांश नेता मध्यम वर्ग के थें। ये नेता हिंसक कार्यों को घृणा की दृष्टि से देखते थें। आमतौर पर ये संवैधानिक साधनों में विश्वास करते थे। धनिक वर्ग लूट–मार तथा हिंसात्मक तरीकों से घबराते थे। बहुसंख्यक हिन्दू स्वभावतः हिंसक तरीको के विरोधी रहे जिनमें क्रांतिकारियों के लिए सहानुभूति नहीं थी।

(iv) **अंग्रेजी सरकार का दमनात्मक** – क्रांतिकारी आंदोलन की विफलता का मुख्य कारण अंग्रेजी सरकार की दमन नीति था। सरकार ने राजद्रोहात्मक सभाओं

पर प्रतिबंध लगा दिया। फौजदारी कानून में संशोधन लाकर नवयुवकों के अत्यधिक कठोर दंड देने की व्यवस्था की गई। समाचारपत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। राजनीतिक बंदियों के साथ निर्ममतापूर्ण व्यवहार करना आरम्भ किया। प्राणदंड, कालापानी, देश–निर्वासन व कठोर शारीरिक यातना आम बात हो गई। सरकार की कठोर नीति ने जनता को आतंकित तथा भयभीत कर दिया।

(v) **अस्त्र–शस्त्र का अभाव –** क्रांतिकारी काफी साहसी व उत्साही थे। वे हँसते–हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ने के लिए तैयार रहते थे लेकिन ब्रिटिश सरकार से लड़ने के लिए उनके पास पर्याप्त हथियार नहीं थे। वे चोरी–छुपे रूप से हथियार प्राप्त करते थे। सरकार उनकी ओर से सदैव सचेत रहती तथा गुप्तचर विभाग सदा उनके पीछे लगा रहता था। थोड़े से हथियार से तथा जनता के सहयोग के अभाव में ब्रिटिश सरकार की जड़ों को कमजोर करना संभव न था।

(vi) **महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश –** महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश क्रांतिकारी आंदोलन के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ। गाँधी जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शांति व सहयोग का मार्ग अपनाया जो सत्य व अहिंसा जैसे उच्च सिद्धांतों पर आधारित था। वे सिद्धांत भारतीय संस्कृति तथा गौरव की देन थे, जो भारतीयों के लिए सरलता से ग्राह्य सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त भारतीय दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी की सफलता देख चुके थें। अतः गाँधी जी के आंदोलन के समक्ष क्रांतिकारी आंदोलन टिक नहीं सका।

4.13 सारांश

क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की ही पृथक धारा है। भारत के नवयुवकों का एक वर्ग हिंसात्मक संघर्ष को राजनीति सत्ता की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते थें। वे स्वयं को मातृभूमि के लिए बलिदान करने को तैयार थे तथा हिंसक माध्यमों से अंग्रेजों को आतंकित कर देश से निकाल देना चाहते थें। यह आक्रामक राष्ट्रवाद की विचारधारा है। इस विचारधारा ने देश में क्रांतिकारी आंदोलन को जन्म दिया। इसका आरंभ महाराष्ट्र में हुआ लेकिन इसका प्रधान केन्द्र बंगाल बन गया। भारत के अन्य प्रांतो तथा विदेशों में भी भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय रहे।

4.14 आदर्श प्रश्न

1. भारत में क्रन्तिकारी आन्दोलनों के उदय के कारणों को समझाइये।
2. क्रांतिकारियों के कार्य प्रणाली पर चर्चा कीजिये ।
3. स्वराज्य संघर्ष काल में घटित होने वाली प्रमुख क्रन्तिकारी गतिविधियों पर

प्रकाश डालें ।

4. क्रन्तिकारी आंदोलनों ने स्वराज्य संघर्ष को कैसे प्रभावित किया ?

5. आजाद हिन्द फौज पर टिप्पणी करें ।

4.15 उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

विपिन चंद्रा भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

बी.एल. ग्रोवर और यशपाल – आधुनिक भारत का इतिहास

आर.सी. अग्रवाल – भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

पी.एल. गौतम – आधुनिक भारत

शेखर बन्दोपाध्याय – आधुनिक भारत का इतिहास (प्लासी से विभाजन तक)

इकाई–5
स्वराज्य दल, साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट

इकाई की रूपरेखा :

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 स्वराज्य दल

5.4 कांग्रेस द्वारा स्वराज्यवादियों को मान्यता एवं समर्थन

5.5 स्वराज्य दल की कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य

5.5.1 स्वराज्य दल के कार्यक्रम

5.5.2 स्वराज्य दल की उपलब्धियाँ

5.5.3 स्वराज्य दल की नीति में परिवर्तन

5.6 स्वराज्य दल का विभाजन

5.6.1 स्वराज्य दल का अंत

5.7 स्वराज्य दल के कार्यों की समीक्षा

5.8 साइमन कमीशन

5.8.1 साइमन कमीशन की नियुक्ति

5.8.2 साइमन कमीशन की नियुक्ति के उद्देश्य

5.8.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार

5.8.4 साइमन कमीशन की प्रमुख सिफारिशें

5.8.5 साइमन कमीशन की सीमाएँ/कमियाँ।

5.8.6 साइमन कमीशन रिपोर्ट की समीक्षा।

5.9 नेहरू रिपोर्ट

5.9.1 सर्वदलीय सम्मेलन

5.9.2 नेहरू रिपोर्ट की प्रमुख सिफारिशें

5.9.3 नेहरू रिपोर्ट पर विभिन्न दलों की प्रतिक्रियाएँ

5.9.4 नेहरू रिपोर्ट का मूल्यांकन

5.10 जिन्ना का 14 सूत्रीय माँगे

5.11 सारांश

5.12 आदर्श प्रश्न

5.13 उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

असहयोग आंदोलन के स्थगित होने से राष्ट्रीय आंदोलन के राजनीतिक परिदृश्य में बदलाव परिलक्षित होने लगे थे। स्वराज दल का गठन इस बदलाव की पहली प्रतिक्रिया थी। स्वराज दल के गठन का उद्देश्य निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेकर औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग करना तथा संस्थात्मक विरोध में शामिल होना था। यह अध्याय स्वराज दल, साइमन कमीशन एवं नेहरू रिपोर्ट को समझने में सहायक होगा।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम स्वराज दल के गठन एवं इसकी कार्यप्रणाली को समझने में सक्षम होंगे। यह इकाई साइमन कमीशन के आगमन, उसका विरोध एवं उनकी सिफारिशों से भी हमें परिचित कराएगी। प्रस्तुत अध्याय में नेहरू रिपोर्ट एवं जिन्ना के 14 सूत्री मांगों का वर्णन किया गया है।

5.3 स्वराज्य दल

5 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले के चौरी–चौरा नामक स्थान पर उत्तेजित भीड़ ने एक पुलिस चौकी में आग लगा दी जिसमें एक थानेदार समेत 21 पुलिस कर्मी जलकर मारे गये। इस अहिंसक घटना के कारण 12 फरवरी 1922 ई को महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। असहयोग आंदोलन के स्थगन का कांग्रेस के विभिन्न नेताओं ने व्यापक विरोध किया जिनमें बंगाल के चित्तरंजन दास, उत्तर भारत के मोती लाल नेहरू और दक्षिण भारत के एन.सी. केलकर प्रमुख थे। इन नेताओं ने सरकार का विरोध करने के लिये कौंसिल में प्रवेश करने की वकालत की। कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न हो गया। इस विषय पर कांग्रेस के भीतर व्यापक वाद–विवाद हुआ। कांग्रेस के अधिकांश नेताओं ने इस प्रस्ताव पर असहमति प्रकट की। इस प्रकार कांग्रेस में आपसी मतभेद व फूट स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी। चित्तरंजनदास ने जेल में ही स्वराज्य दल की स्थापना की घोषणा की। जेल से मुक्त होने पर उन्होंने स्वराज्य दल की स्थापना के लिए प्रयास शुरू कर दिया। उन्होंने इसके प्रचार के लिए संपूर्ण देश का दौरा किया। उन्होंने कांग्रेस की नीति में परिवर्तन संबंधी तीन महत्वपूर्ण सुझाव दिया।

देश की साधारण जनता असहयोग आंदोलन के लिए तैयार नहीं है।

सत्याग्रही पंजाब और खिलाफत के विरूद्ध की गई सरकार की भूलों को सुधारने और तुरन्त स्वराज्य की माँग को आधार बनाते हुए निर्वाचन में भाग लें। यदि उनकी कौंसिल में बहुमत प्राप्त होता है तो वे सरकार के प्रत्येक कार्य का विरोध करें तथा उपरोक्त त्रुटियों को दूर करने और स्वराज्य की माँग के संबंध में प्रस्ताव पेश करें किन्तु यदि उनको कौसिल में बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो कौंसिल की किसी भी कार्यवाही में भाग न लें। कांग्रेस के अधिकांश नेताओं ने चितरंजनदास के नीति परिवर्तन संबंधी विचार को अस्वीकार कर दिया। इससे चितरंजन दास असंतुष्ट हो गए तथा उन्होंने पृथक राजनीतिक दल बनाने का निश्चय कर लिया।

स्वराज्य दल की स्थापना

1922 ई के गया कांग्रेस अधिवेशन में चितरंजन दास कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने अधिवेशन में स्वराज्यवादी आंदोलन संबंधी अपनी योजना एवं कार्यक्रम को स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया किन्तु कांग्रेस के अधिकांश नेता उनके प्रस्ताव से असहमत थे तथा चितरंजन दास की योजना को अस्वीकार कर दिया गया। यह उनकी पराजय तथा अपरिवर्तनवादियों की जीत थी। गया कांग्रेस अधिवेशन में लिये गये निर्णय से असंतुष्ट होकर देशबंधु चितरंजन दास ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। उनके साथ ही पंडित मोतीलाल नेहरू ने भी कांग्रेस के महामंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस से त्यागपत्र देकर 1 जनवरी 1923 ई को देशबन्धु चितरंजन दास ने मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर स्वराज्य दल की स्थापना की। मार्च 1923 ई में इलाहाबाद में स्वराज्यवादियों का पहला सम्मेलन हुआ जिसमें स्वराज्य दल का संविधान, कार्यक्रम, अभियान की योजना को स्वीकार किया गया। इस सम्मेलन में स्वराज्य दल का मुख्य उद्देश्य कौंसिल में प्रवेश कर सरकार का असहयोग करना निश्चित किया गया।

5.4 कांग्रेस द्वारा स्वराज्यवादियों को मान्यता एवं समर्थन

कांग्रेस में बढ़ती हुई फूट को देखकर मौलाना अबुल कलाम आजाद ने मध्यस्थता की तथा सितम्बर 1923 को दिल्ली में मौलाना आजाद की अध्यक्षता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन स्वराज्यवादियों के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए बुलाया गया। इस विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने नवम्बर 1923 में होने वाले आगामी निर्वाचन में भाग लेने संबंधी प्रस्ताव को पारित किया गया। उसी वर्ष दिसम्बर 1923 में काकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश संबंधी प्रस्ताव को अनुमोदित किया गया तथा स्वराज्यवादियों के कार्यक्रम का समर्थन किया। इसी अधिवेशन में यह घोषित किया गया कि कौंसिल में भी असहयोग आंदोलन को अपनाया जायेगा। इस प्रस्ताव के पारित होने से स्वराज्यवादी काफी उत्साहित हुए। स्वराज्यवादियों ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को स्वीकार किया और असहयोग आंदोलन के समर्थकों ने स्वराज्यवादियों के कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम को। इस

प्रकार स्वराज्य दल कांग्रेस का ही एक राजनीतिक अंग बन गया जो संसदीय कार्यों में भाग लेता। इस प्रकार, अब्दुल कलाम आजाद के प्रयासों से कांग्रेस पुनः विभाजित होने से बच गया। कांग्रेस द्वारा स्वराज्यवादियों को समर्थन दिये जाने से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती मिली तथा उसका तेजी से प्रसार हुआ।

5.5 स्वराज्य दल की कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य

स्वराज्य दल का लक्ष्य स्वराज्य को प्राप्त करना था। स्वराज्य से उनका अभिप्राय साम्राज्य के अतंर्गत औपनिवेशिक स्थिति को प्राप्त करना था। स्वराज्य दल के सदस्य कौंसिल के निर्वाचन में भाग लेना चाहते थे ताकि कौंसिल की अधिक से अधिक सीटों पर विजय प्राप्त कर सरकार के साथ असहयोग किया जा सके। स्वराज्य दल की मुख्य राजनीतिक माँगों में राजनीतिक बंदियों की मुक्ति, दमनकारी कानूनों की समाप्ति, तथा शासन सुधारों पर एक गोलमेज परिषद का अयोजन करवाना सम्मिलित था। उनकी यह स्पष्ट नीति थी कि सरकारी पद तथा समितियों की सदस्यता स्वीकार न की जाय और यदि उनकी माँगे न मानी जाये ते समान, सतत एवं उचित विरोध की नीति का अनुसरण किया जाय।

स्वराज्यवादियों का लक्ष्य कौंसिलों में प्रवेश कर सरकार के कार्य में अड़ंगा लगाना तथा अंदर से उसे कमजोर करना था। उनके अनुसार अड़ंगा शब्द का उपयोग ब्रिटिश संसदीय इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं किया गया है। चूँकि कौंसिल की शक्तियाँ एवं अधिकार अत्यधिक सीमित थी अतः उनका उद्देश्य स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा उत्पन्न अवरोधों से मुकाबला करने के लिये सरकारी कार्यों में अड़ंगा डालना था। अड़ंगा स्वराज्य दल के कार्यक्रम का विध्वंसात्मक पक्ष था। स्वराज्य दल का प्रमुख उद्देश्य कांग्रेस में रहकर निर्वाचन में भाग लेना तथा विधानमंडल में स्वदेशी सरकार के गठन की माँग को जोरदार एवं प्रभावी तरीके से उठाना तथा माँगे नहीं मानी जाने पर विधानमंडल की कार्यवाही में बाधा पहुँचाना था।

1925 में बंगाल विधानसभा में स्वराज्य दल के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए चितरंजन दास ने कहा था ''हम ऐसी राजनीतिक व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहते हैं, जिसने न तो कोई अच्छाई की है और जिससे न किसी अच्छाई की आशा है। हम इसे समाप्त कर देना चाहते हैं क्योंकि हम एक ऐसी व्यवस्था को लागू करना चाहते हैं जो सफलतापूर्वक चल सके और जिससे जनता की भलाई हो सके।'' इस प्रकार वे कौंसिल कार्य को प्रमुखता देते हुए रचनात्मक कार्य में विश्वास करते थें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वराज्य दल के निम्न उद्देश्य थे –

- भारत को स्वराज्य दिलवाना।
- उस परिपाटी का अंत करना जो ब्रिटिश सरकार के अधीन भारत के लिए

अहितकर थी।

- कौंसिल में प्रवेश कर असहयोग कार्यक्रम को अपनाना।
- कौंसिल में प्रवेश कर सरकार की नीतियों का विरोध करना।
- सरकार को उसके नीतियों में परिवर्तन करने के लिए विवश करना।

5.5.1 स्वराज्य दल के कार्यक्रम

स्वराज्य दल ने कांग्रेस से पृथक अपना कार्यक्रम निर्धारित किया। स्वराज्यवादियों के रचनात्मक पक्ष में उनका कार्यक्रम उन प्रस्तावों, योजनाओं व विधेयकों को प्रस्तुत करना था, जो राष्ट्रीय जीवन को अधिक प्राणवान बनाने वाले हो और इस प्रकार अंत में ब्रिटिश नौकरशाही को उखाड़कर फेंकने में सहायक बन सकें। स्वराज्यवादियों के कौंसिल प्रवेश का कार्यक्रम असहयोग सिद्धांत पर आधारित था। कौंसिल में प्रवेश करके वे बजट को रद्द करने के पक्ष में थे और उन सभी कानूनी प्रस्तावों को अस्वीकार करना चाहते थें जो नौकरशाही की स्थिति को मजबूत करने वाले हो। स्वराज्य दल ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों में अपनाया।

- सरकारी बजट को रद्द करना।
- दमनकारी कानूनों का विरोध कराना।
- रचनात्मक कार्यों में सहयोग देना।
- राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि करना।

देश को सत्याग्रह के लिये तैयार करने में अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करना। कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से उन सभी स्थानों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया जिन पर कौंसिल के सदस्य होने के नाते अधिकार करने में सफल हो सकते थे।

5.5.2 स्वराज्य दल की उपलब्धियाँ

1919 ई के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों को विफल करने के उद्देश्य से पंडित मोतीलाल नेहरू एवं चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वराज्य दल ने 1923 के निर्वाचन में भाग लिया। चुनाव में स्वराज्य दल के उम्मीदवार सर्वत्र विजयी हुए। बंगाल एवं मध्यप्रांत के विधानमण्डलों में उन्हें बहुमत प्राप्त हुआ। अन्य प्रान्तों में भी स्वराज्य दल सबसे बड़े दल के रूप में उभरा। मध्यप्रांत एवं बंगाल में स्वराज्यवादियों ने सरकार के प्रति जिस असहयोग का प्रदर्शन किया, उसके कारण विधायी कार्य संपादित करना असंभव हो गया जिसके परिणामस्वरूप सरकार को 1919 का संविधान स्थगित करके हस्तांतरित भाग का प्रबन्ध भी अपने हाथ में लेना पड़ा। स्वराज्यावादियों ने

मध्यप्रांत व बंगाल में द्वैध शासन को निष्क्रिय बना दिया।

केंद्रीय विधानपरिषद में भी स्वराज्य दल को 101 निर्वाचित स्थानों में से 42 स्थान प्राप्त हुए। वहाँ उन्होंने कुछ निर्दलीय सदस्यों की सहायता से सरकार का व्यापक विरोध किया तथा अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर सरकार को निर्णायक मात दिया। हालाँकि स्वराज्यवादी गवर्नर जनरल को प्राप्त असीमित विशेषाधिकार के कारण केंद्रीय विधानपरिषद एवं सरकार के कार्यों में ज्यादा अवरोध उत्पन्न करने में सफल नहीं हुए। उन्होंने कई बार असेंबली से वाकआउट कर सरकार की प्रतिष्ठा को धूमिल किया। उन्होंने गवर्नर जनरल द्वारा आयोजित भोजों और समारोहों के निमंत्रण को अस्वीकार कर अपना विरोध जताया।

केंद्रीय विधानपरिषद में मोतीलाल नेहरू के प्रयत्न से भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थपित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। स्वराज्यवादियों ने 1919 के भारत सरकार अधिनियम में संशोधन करने की माँग की तथा उसके दोषों को जोरदार तरीके से उजागर किया। उन्होंने सरकार से एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने की माँग की, जो भारत के लिये संविधान का निर्माण करें तथा ब्रिटिश संसद उसे कानूनी रूप प्रदान करें। भारत सरकार द्वारा स्वराज्यवादियों के प्रस्ताव का कोई उत्तर न देने से उन्होंने सभा में शेष प्रकट किया तथा परिणामस्वरूप सरकारी व्यय की माँगों को अस्वीकार कर दिया गया और वित्त विधेयक के व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करने पर रोक लगा दी गई। बंगाल में प्रचलित पुराने दमनकारी कानूनों को समाप्त करने संबंधी प्रस्ताव पारित किया गया। यह प्रस्ताव सी.डी. अयंगर द्वारा पेश किया गया था जो 45 के विरूद्ध 58 मतों से पारित हो गया। साथ ही श्री राजा द्वारा पेश किया एक प्रस्ताव भी पारित किया गया जिसमें भारत में सैन्य विद्यालय खोलने की माँग की गई थी।

स्वराज्यवादियों ने अपने कार्यों से पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया गया। 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा किये गये सुधार भारतीय जनता की आकांक्षाओं से अत्यधिक दूर थे। स्वराज्यवादियों द्वारा किये गये विरोध–प्रदर्शन की आवाज इंग्लैण्ड तक भी पहुँच गई। ब्रिटिश सरकार ने इसके तेजी से बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने के लिए समय से पूर्व 1927 में ही साइमन कमीशन की नियुक्ति कर दी।

5.5.3 स्वराज्य दल की नीति में परिवर्तन

अपने स्थापना काल में स्वराज्य दल ने सरकार के साथ असहयोग की नीति का अनुसरण किया और उसके कार्यों में व्यवधान उत्पन्न किया लेकिन इससे उसे कोई खास सफलता नहीं मिला। अतः स्वराज्यवादी धीरे–धीरे स्वयं ही इस नीति से विमुख होने लगे। आगे चलकर स्वराज्यवादियों ने असहयोग के स्थान पर उत्तरदायित्वपूर्ण सहयोग (त्मेचवदेपअम ब्व.वचमतंजपवद) की नीति को अपनाना शुरू कर दिया। स्वयं चितरंजन दास भी अपने जीवन काल में ही यह अनुभव करने लगे

थे कि असहयोग की नीति लाभप्रद नहीं है। 1924 के फरीदपुर सम्मेलन में उन्होंने सरकार से समझौता करने के लिए कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो निम्न है –

- सरकार जनता के प्रतिनिधियों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे।
- सरकार निकट भविष्य में स्वाभाविक रूप से स्वराज्य की स्थापना करें।
- सरकार समझौते का वातावरण उत्पन्न करने का व्यवहारिक प्रदर्शन करें।
- सरकार सभी राजनीतिक बंदियों को मुक्त कर दें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वराज्य दल की नीति में पूर्णतया परिवर्तन हो गया। असहयोग का स्थान उत्तरदायी सहयोग ने ले लिया। फलतः स्वराज्य दल कमजोर होने लगा तथा जनता से इसका प्रभाव तेजी से समाप्त होने लगा।

5.6 स्वराज्य दल का विभाजन

16 जून 1925 में स्वराज्य दल के अध्यक्ष देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु हो गई तथा स्वराज्य दल का संपूर्ण कार्यभार मोतीलाल नेहरू के कंधे पर आ गया। चितरंजन दास की मृत्यु के बाद स्वराज्यवादियों ने खुलकर सहयोग की नीति का समर्थन कर दिया। लेकिन अभी भी कुछ स्वराज्यवादी अडंगा लगाने की नीति में विश्वास करते थे। अतः स्वराज्य दल में भी फूट दिखायी देने लगी। सरकार ने इस मौके का फायदा उठाया और स्वराज्य दल के सरकार समर्थक/सहयोगी पक्ष के विभिन्न प्रभावशाली नेताओं को विभिन्न समितियों में स्थान देकर खुश करना शुरू कर दिया। 1924 के अंत में कुछ प्रमुख स्वराज्यवादी नेताओं को इस्पात सुरक्षा समिति में स्थान दिया गया। 1925 में स्वयं मोतीलाल नेहरू ने स्क्रीन समिति की सदस्यता स्वीकार कर ली, वी.जे. पाटिल केंद्रीय विधानसभा के अध्यक्ष चुन लिये गये तथा एस.बी. ताम्बले जो मध्य प्रांत विधानसभा के अध्यक्ष थे, को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया।

कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में यह निश्चय हुआ कि यदि सरकार राष्ट्रीय माँगों को शीघ्र स्वीकार न करे तो स्वराज्य दल के लोगों को कौंसिल का बहिष्कार करना होगा। जिससे सरकार के व्यवस्थापन कार्य में अडंगा पड़ सके, यद्यपि अपने स्थानों को रिक्त घोषित किये जाने से रोकने के लिए, प्रांतीय बजट को अस्वीकार करने तथा नवीन कर लगाने वाले विधेयकों का विरोध करने के लिए उन्हें कौंसिल में जाने की अनुमति दे दी गयी। मध्यप्रांत एवं महाराष्ट्र के स्वराज्यवादियों को यह नीति पसंद नहीं थी, वे मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों को अपर्याप्त मानते हुए भी उसे कार्यरूप देने के पक्ष में थें। इसी आधार पर उन्होंने अपना पृथक दल बना लिया। 1926 में महात्मा गाँधी ने साबरमती पैक्ट द्वारा उनमें एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया किन्तु वे असफल हो गए। इस प्रकार, स्वराज्य दल दो भागों में विभाजित हो गया।

5.6.1 स्वराज्य दल का अंत

1925 ई में स्वराज्य दल को सबसे बड़ा आघात तब लगा जब चितरंजन दास की मृत्यु हो गई। कांग्रेस ने स्वराज्य दल के सदस्यों को परिषद से बाहर आने का निर्देश दिया क्योंकि सरकार उनके साथ किसी भी प्रकार का कोई सहयोग नहीं कर रही थी। यद्यपि 1926 ई के निर्वाचनों में केंद्रीय विधानपरिषद की 40 सीटों तथा मद्रास की 50 प्रतिशत सीटों पर स्वराज्य दल ने विजय प्राप्त की लेकिन अन्य प्रांतों में इसे पराजय का सामना करना पड़ा। स्वराज्यवादी इस बार विधानमंडलों में राष्ट्रीय मोर्चा बनाने में असफल रहे किन्तु उन्हें अवसरों पर वे स्थगन प्रस्ताव लाने में सफल रहे। 1928 में ब्रिटिश सरकार द्वारा लाये गये सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक को स्वराज्यवादियों ने भारतीय गुलामी विधेयक नं0 1 की संज्ञा दी। स्वराज्यावादियों के व्यापक विरोध के कारण सरकार को विवश होकर इस विधेयक को वापस लेना पड़ा।

कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में पारित प्रस्तावों तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन की घोषणा के बाद स्वराज्य दल द्वारा विधानमंडलों के बहिष्कार की घोषणा कर दी गई। इस प्रकार स्वराज्य दल का अंत हो गया।

5.7 स्वराज्य दल के कार्यों की समीक्षा

स्वराज्य दल ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीय स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गाँधी जी द्वारा अचानक ही असहयोग आंदोलन को स्थगित करने के बाद भारतीय राजनीति में शून्यता आ गयी, देश में निराशा का बादल छा गया, जनता हतोत्साहित हो गई, राष्ट्रीय भावना को गहरा धक्का पहुँचा। इस राजनीतिक शून्यता की स्थिति में भारत के राजनीतिक पटल पर स्वराज्य दल आशा की एक नयी किरण के रूप में उभरा। उसने राष्ट्रीयता की बुझती हुई। ज्योति को फिर से जगाया तथा जनता में नवीन उत्साह एवं नवजीवन का संचार किया। उन्होंने सरकार के दमनचक्र से पीड़ित जनता में सरकार का विरोध करने का साहस उत्पन्न किया तथा ब्रिटिश सरकार से स्वशासन प्राप्त करने के लिए जोरदार तरीके से अपने माँगो को उठाने की प्रेरणा दी। उन्होंने सरकार की कमजोरियों को न केवल जनता के समक्ष उजागर किया बल्कि उसके कार्यों में बाधा उत्पन्न करने के साथ ही उसे अनुत्तरदायी और गलत कार्यों को करने से रोका। उन्होंने उत्तरदायी शासन की माँग को इतने प्रभावशाली ढंग से उठाया कि बाध्य होकर ब्रिटिश सरकार को समय से पूर्व ही संवैधानिक समीक्षा आयोग को नियुक्त करना पड़ा। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वराज्य दल ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंधकारपूर्ण समय में जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिये प्रेरित किया तथा उनमें आशा की एक नई किरण प्रज्जवलित की।

5.8 साइमन कमीशन

5.8.1 समय से पूर्व साइमन कमीशन की नियुक्ति के कारण

1919 ई के भारत सरकार अधिनियम की धारा 84 में यह प्रावधान किया गया था कि सुधारों के कार्यान्वित रूप पर विचार करने तथा नए सुधारों का सुझाव देने के लिए 10 वर्षों के उपरांत एक राजकीय आयोग को नियुक्त किया जाएगा। इस धारा के तहत 1929 ई में राजकीय आयोग को नियुक्त करना था लेकिन विभिन्न कारणों से 1929 से दो वर्ष पूर्व 1927 में ही राजकीय आयोग की नियुक्ति की घोषणा कर दी गई। निम्न कारणों से ब्रिटिश सरकार ने समय से पूर्व ही राजकीय आयोग की घोषणा कर दी।

इस समय भारत का सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन विषाक्त हो चुका था तथा ब्रिटेन की अनुदार सरकार भारत में संवैधानिक सुधार करने के लिए इच्छुक नहीं थी। अतः वह चाहती थी कि आयोग भारत से संबंधित बुरा विचार लेकर लौटे।

1929 में इंग्लैण्ड में आम चुनाव होना था जिसमें मजदूर दल के विजयी होने की पूरी संभावना थी तथा मजदूर दल भारत के संबंध में उदार दृष्टिकोण रखती थी। अनुदार दल का मानना था कि मजदूर दल के हाथ में साम्राज्य के हित सुरक्षित नहीं है अतः वह भारतीय समस्या को सुलझाने का मौका उसे देने के पक्ष में नहीं थी।

इस समय भारत में स्वराज्य दल का प्रभाव काफी बढ़ चुका था। वह सरकार के कार्यों में अवरोध उत्पन्न कर रही थी तथा सुधार आयोग को नियुक्त करने की मांग कर रही थी। ब्रिटिश सरकार सुधार आयोग को नियुक्त कर स्वराज्य दल को महत्वहीन कर देना चाहती थी। इस समय भारत में क्रांतिकारी आंदोलन चरमोत्कर्ष पर था। भारतीय युवकों में क्रांतिकारी गतिविधियों का तेजी से प्रसार हो चुका था। ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर आने वाले संकट को भांप लिया तथा इस स्थिति से निपटने के लिए समय से पूर्व ही आयोग को नियुक्त कर स्थिति से अवगत होकर उस पर नियंत्रण स्थापित करना अत्यधिक आवश्यक था।

साइमन कमीशन की नियुक्ति –

1919 के भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार सरकार को 1929 में संवैधानिक सुधार योजना के क्रियान्वयन की जाँच करने तथा उसमें सुधार करने के लिए सुझाव देने के लिए एक राजकीय आयोग को नियुक्त करना था किन्तु मार्च 1927 में ही सरकार ने संवैधानिक सुधार जाँच आयोग करे नियुक्त करने की घोषणा कर दी। 8 नवम्बर 1927 ई को वायसराय ने इस आयोग की नियुक्ति की घोषणा की।

ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक सात–सदस्यीय आयोग को नियुक्त किया। सर जॉन साइमन के नाम पर ही इस आयोग को साइमन

आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग के सभी सात सदस्य अंग्रेज थें। इसमें भारतीयों को सम्मिलित नहीं किया गया था। सभी सदस्यों के अंग्रेज होने के कारण ही इस आयोग को गोरा कमीशन भी कहा जाता है। विशुद्ध गोरापन सदस्यता के पक्ष में सरकार का कहना था कि निम्न कारणों से इस आयोग में एक भी भारतीय सदस्य को सम्मिलित नहीं किया गया –

(i) कमीशन की रिपोर्ट ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

(ii) भारत के सभी राजनीतिक दलों में अत्यधिक मतभेद है।

(iii) भारत में अनेक वर्गों, सम्प्रदाय तथा धर्मों के अस्तित्व के कारण किसी न किसी वर्ग को असंतुष्ट कर ही किसी भारतीय को आयोग का सदस्य बनाया जाता।

उपरोक्त तीनों कारण भरतीयों को आयोग में सम्मिलित न करने का बहाना मात्र था। साइमन कमीशन का मुख्य उद्देश्य 1919 के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा भारत में उत्तरदायी सरकार या शासन की स्थापना के लिए किये गये प्रयासों की समीक्षा करना तथा उसमें सुधार करने, उसके त्रुटियों की जाँच करने तथा उसे सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक सुझाव देना था।

5.8.2 साइमन कमीशन की नियुक्ति के उद्देश्य

(i) भारतीय लोगों को शक्ति हस्तांतरण की प्रक्रिया में देरी करने के लिए।

(ii) सांप्रदायिक भावनाओं का व्यापक रूप से विस्तार करने के लिए जो कि हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों समुदायों के हितों का विरोध पूरी तरह से कर सकते थें।

(iii) लोगों को यह दिखाने के लिए कि उन्हें आत्म–नियम देने में प्रयासों में ब्रिटिश ईमानदार थे किंतु भारतीय सत्ता साझाकरण पर सहमति के बारे में फैसला नहीं कर सके।

(iv) संघीय संविधान की छाप देने के लिए ताकि केंद्र और एक शक्तिशाली प्रांत बनाया जा सके। यह क्षेत्रीयवाद की भावना पैदा करेगा, जो राष्ट्रवाद के प्रतिद्वन्द्वी थे।

(v) आर्थिक स्वायत्तता के बिना राजनीतिक स्वायत्तता देने के लिए।

5.8.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार

साइमन कमीशन के उद्देश्य तथा उसक सदस्यता से भारतीयों को बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। अतः एकमत होकर सभी ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा एवं नरम दल ने एक स्वर से कमीशन का विरोध किया। केवल सर मोहम्मद शफी

के नेतृत्व में मुस्लिम लीग के एक वर्ग ने कमीशन का स्वागत करने का निश्चय किया। जस्टिस पार्टी व यूनियनिस्ट पार्टी ने भी आयोग का समर्थन किया। कांग्रेस ने 27 दिसंबर 1927 ई के मद्रास अधिवेशन में साइमन कमीशन का विरोध करने संबंधी प्रस्ताव पारित किया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता एम.ए. अंसारी ने किया था। कांग्रेस ने विभिन्न वर्गों के लोगों से कमीशन का बहिष्कार करने की अपील की। कांग्रेस ने आम जनता से यह अनुरोध किया कि कमीशन के आगमन के दिन जनता सामूहिक प्रदर्शनों का आयोजन करें, जहाँ भी कमीशन जाय, प्रदर्शन द्वारा उसका विरोध किया जाय, कौंसिल के गैर सरकारी सदस्य तथा अन्य नेतागण आयोग के सामने अपनी गवाही न दे और उसके साथ किसी भी प्रकार का सहयोग न करें। कांग्रेस ने इसी अधिवेशन में पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लक्ष्य की घोषणा की।

लाला लाजपत राय ने साइमन कमीशन का विरोध करते हुए केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें कहा गया था कि कमीशन की योजना सर्वथा अमान्य है। मिल विल्किनसन ने कमीशन के विरोध के संबंध में कहा था कि ''जलियावाला बाग हत्याकांड के बाद सरकार के किसी भी कार्य की इतनी निंदा नहीं हुई जितनी की साइमन कमीशन की।''

5.8.4 साइमन कमीशन का आगमन एवं विरोध

3 फरवरी 1928 ई को साइमन कमीशन बम्बई पहुँचा। इस दिन संपूर्ण देश में हड़ताल का आयोजन किया गया। काले झंडो से तथा 'साइमन वापस जाओ' के नारों से कमीशन का स्वागत किया गया। कमीशन जहाँ भी गया वहाँ उसका व्यापक विरोध किया गया। लाहौर में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ने आयोग के विरूद्ध आयोजित एक विशाल प्रदर्शन का नेतृत्व किया। विशाल भीड़ को तीतर–बितर करने के लिए पुलिस ने लाठी–चार्ज किया। लाठीचार्ज के दौरान पुलिस अधिकारी सांडर्स की पिटाई से लाला लाजपत राय गंभीर रूप से घायल हो गए। लाला लाजपत राय ने कहा था कि ''मेरे ऊपर किये गये एक–एक लाठी का प्रहार, एक दिन ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत की कीलें साबित होंगी।'' गंभीर रूप से घायल होने के कारण कुछ दिन बाद ही लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गई।

उत्तर प्रदेश में पंडित जवाहर लाल नेहरू एवं पंडित गोविन्द बल्लभ पंत के साथ भी ऐसी ही घटना घटी। कमीशन के आगमन के दिन संपूर्ण लखनऊ सैनिक शिविर में बदल गया। सरकार के अन्यायपूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार से जनता में प्रतिरोध की भावना जागृत हो गयी। क्रांतिकारी पुनः सक्रिय हो गए। क्रांतिकारियों ने 30 अक्टूबर 1928 को लाला लाजपत राय की पिटाई करने वाले पुलिस अधिकारी सांडर्स की हत्या कर दी। सरदार भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने 8 अप्रैल 1929 को दिल्ली में केंद्रीय विधानसभा के केंद्रीय कक्ष की खाली बेंचों की ओर बम विस्फोट किया तथा गिरफ्तार हो गए। इस अव्यवस्थित वातावरण में साइमन कमीशन ने

अपनी जाँच पड़ताल की।

जाँच–पड़ताल करने के लिए साइमन कमीशन 1928–29 के बीच दो बार भारत आया। आयोग ने रिपोर्ट तैयार करने में 2 वर्ष का लंबा समय लिया। मई 1930 ई में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई। साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर लंदन में आयोजित होने वाले गोलमेज सम्मेलनों में विचार होना था।

5.8.5 साइमन कमीशन की प्रमुख सिफारिशें

- भारत में संवैधानिक पुनर्निमाण किया जाना चाहिए।
- एक संघीय संविधान का निर्माण किया जाना चाहिए।
- द्वैध शासन को समाप्त किया जाय।
- प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की जाय।
- प्रांतीय विधानपरिषदों का विस्तार किया जाय।
- केंद्रीय शासन में कोई परिवर्तन न किया जाय।
- भारत में संघीय शासन की स्थापना की जाय।
- संघ में ब्रिटिश भारत के सभी राज्य तथा देशी रियासतें भी सम्मिलित होंगे। संघ की स्थापना से पूर्व ब्रिटिश भारत के राज्य व देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की एक परिषद स्थापित की जाय, जिसके माध्यम वे अपनी सभी समस्याओं का निराकरण करें।
- इंडियन काउंसिल को बरकरार रखते हुए उसकी शक्ति में कमी की जाय। संघ की व्यवस्थापिका सभा का निर्माण संघीय व्यवस्था के आधार पर किया जाना चाहिए।
- रक्षा के प्रश्न का संतोषजनक हल हो जाने के उपरांत केंद्र में भी उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाय।
- सेना का भारतीयकरण किया जाना चाहिए।
- केंद्रीय विधानसभा के दोनों सदनों का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से होना चाहिए।
- अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियाँ दी जाय।
- प्रांतीय सरकारों पर केन्द्र का नियंत्रण कम से कम होना चाहिए। इसके लिए सुरक्षित विभागों को समाप्त किया जाना चाहिए।
- प्रांतीय विधानपरिषदों के संबंध में सरकारी सदस्यों की व्यवस्था समाप्त कर

दी जाय।

- प्रांतों में शांतिपूर्ण व्यवस्था के लिए गवर्नर को विशेष अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।
- सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व को पूर्ववत जारी रखा जाय।
- मताधिकार का विस्तार 10–15 प्रतिशत जनता तक किया जाना चाहिए।
- सिंध को बम्बई से अलग किया जाय।
- वर्मा को भारत से अलग किया जाय।
- कैबिनेट सदस्यों को नियुक्त करने के लिए गवर्नर जनरल को पूर्ण अधिकार दिया जाय।
- उच्च न्यायालय पर भारत सरकार का पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जाय।

5.8.6 साइमन कमीशन की सीमाएँ/कमियाँ

- इसने भारतीयों की केंन्द्र उत्तरदायी शासन की माँग को स्वीकार नहीं किया।
- इसने भारतीयों की औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की पूर्णतया उपेक्षा की।
- आयोग में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था।
- कोई सार्वभौमिक मताधिकार का प्रस्ताव नहीं था।
- गवर्नर जनरल की स्थिति अप्रभावित थी।
- पृथक प्रतिनिधित्व प्रणाली को समाप्त के स्थान पर उसे अन्य समुदायों तक विस्तृत किया गया।
- कोई वित्तीय हस्तांतरण प्रस्तावित नहीं किया गया था।
- प्रांतीय गवर्नरों को ऐसे अभिरक्षणों एवं विशेषाधिकारों से सुसज्जित किया गया जिसमें लोकप्रिय तथा उत्तरदायी मंत्रिमंडल का कोई मतलब नहीं रह जाता।

5.8.7 साइमन कमीशन रिपोर्ट की समीक्षा

साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय राजनीति की समस्त कठिनाइयों और समस्याओं का पर व्यापक प्रकाश डाला। लेकिन उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति और जनता की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं की पूर्णतया उपेक्षा की। भारतीय साइमन कमीशन की रिपोर्ट से बहुत असंतुष्ट हुए।

सर शिवास्वामी अय्यर ने साइमन कमीशन की रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में फेंक देने योग्य बताया। निःसंदेह कमीशन की रिपोर्ट रद्दी कागज के समान थे लेकिन

भारतीय समस्याओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से यह एक महत्वपूर्ण प्रलेख है। इस रिपोर्ट का वास्तविक उद्देश्य स्वायत्त शासन को टालना था। इसने राजनीतिक असंतोष को दूर करने के बजाय स्थिति को और बिगाड़ दिया। इस रिपोर्ट से भारतीयों में उत्साह का संचार हुआ तथा भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

5.9 नेहरू रिपोर्ट 1928

5.9.1 सर्वदलीय सम्मेलन की पृष्ठभूमि

1919 के भारत सरकार अधिनियम के क्रियान्वयन की समीक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 में उसी अधिनियम की धारा 84 के अंतर्गत साइमन कमीशन को नियुक्त किया। जिस समय साइमन कमीशन भारत में जाँच कार्य में संलग्न था, उसी समय लंदन में तत्कालीन भारत सचिव लॉर्ड बर्केन हैड ने भारतीयों को इस आयोग में सम्मिलित न करने का कारण यह बताया कि भिन्न–भिन्न राजनैतिक दलों में अत्यधिक मतभेद है। उसने भारतीयों को चुनौती देते हुए कहा कि यदि सभी दल मिलकर एक संविधान का निर्माण कर उसे ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत करें तो ब्रिटिश संसद उस पर विचार कर सकती है। भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार के द्वारा दी गई संविधान निर्माण करने की चुनौती को स्वीकार कर लिया।

सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन

कांग्रेस ने भारत सचिव लार्ड बर्केनहेड द्वारा दी गई चुनौती को गंभीरतापूर्वक लिया तथा इसके लिए प्रयास आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने सभी राजनीतिक दलों को एक मंच पर आकर ब्रिटिश सरकार को जवाब देने के लिए सर्वदलीय सम्मेलन हेतु आमंत्रित किया। 28 फरवरी 1928 ई में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया । इस सर्वदलीय सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. एम.ए. अंसारी ने किया। इस सम्मेलन में कुल 29 राजनीतिक संगठनों ने भाग लिया। सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि भारत की वैधानिक समस्या पर विचार पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार को आधार मानकर ही होना चाहिए। सभी राजनीतिक दल संयुक्त रूप से संविधान निर्मित करने के प्रस्ताव पर एकमत थें।

दो महीने में सम्मेलन की कुल 25 बैठकें आयोजित की गई। इन बैठकों में प्रस्तुत किए गए लगभग सभी विषयों पर सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिध सहमत थें। 11 मई 1928 ई को सम्मेलन की अंतिम बैठक बम्बई में पुनः डॉ0 एम.ए. अंसारी के सभापतित्व में आयोजित किया गया। इस बैठक में भारत के भावी संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के अन्य सदस्यों में सर तेज बहादुर सप्रू, सर अली इमाम, एम.ए. अणे, सरदार मंगरू सिंह, श्वैब कुरैशी, जी.आर. प्रधान एवं सुभाष चंद्र

बोस सम्मिलित थे। इस समिति में दो मुसलमान तथा एक सिख सदस्य सम्मिलित थे। पंडित जवाहर लाल नेहरू को समिति का सचिव नियुक्त किया गया।

इस समिति ने तीन माह की अल्प अवधि में 19 बैठकों में भावी संविधान का प्रारूप तैयार किया। 28 अगस्त 1928 ई में समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की, जिसमें भारत के भावी संविधान का ढाँचा प्रस्तावित किया गया तथा भारत के लिए औपनिवेशिक स्वशासन की माँग की गई। पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में समिति द्वारा तैयार संविधान के प्रारूप को ही नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। यह एक अत्यंत ही बुद्धिमत्तापूर्ण दस्तावेज था, जिसमें पहली बार सभी राजनीतिक एवं अन्य समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया तथा उनका समाधान ढूँढने का प्रयास किया गया जिसमें सभी राजनीतिक दलों ने सक्रिय सहयोग दिया। डॉ. जकारिया ने नेहरू रिपोर्ट को एक परिपक्व तथा राजमर्मज्ञपूर्ण रिपोर्ट कहा है।

5.9.2 नेहरू रिपोर्ट की प्रमुख सिफारिशें

नेहरू रिपोर्ट के अंतर्गत भारत के भावी संविधान के आधारभूत विशेषताओं के संबंध में निम्न सिफारिशें की गई –

(i) **औपनिवेशिक स्वराज्य –** भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जाना चाहिए और उसका स्थान ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत अन्य उपनिवेशों के समान होना चाहिए।

(ii) **केंद्र में उत्तरदायी शासन –** केंद्र में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना होनी चाहिए तथा भारत के गवर्नर जनरल को मंत्रिमंडल के सदस्यों की सलाह से एवं संवैधानिक प्रधान के रूप में कार्य करना चाहिए।

(iii) **संघीय व्यवस्था –** भारत के लिए संघीय शासन को उपर्युक्त बताया गया तथा केंद्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान करने की वकालत की गई। देश में संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की बात कही गई।

(iv) **केंद्र को अधिक शक्ति –** केंद्र एवं प्रांतों के मध्य शक्ति वितरण की एक योजना प्रस्तुत की गई, जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र को प्रदान कर उसे अधिक शक्तिशाली बनाया गया ताकि संघ में स्थायित्व आ सके।

(v) **केंद्रीय विधानमंडल –** केंद्रीय व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक (इप.बंउमेंस) हो और मंत्रिमण्डल उसके प्रति उत्तरदायी हो। निम्न सदन की सदस्य संख्या 500 तथा उच्च सदन की सदस्य संख्या 200 होनी चाहिए।

(vi) **निर्वाचन –** सभी व्यस्क नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के मत देने का अधिकार दिया जायेगा। निम्न सदन का निर्वाचन व्यस्क मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष पद्धति से जबकि उच्च सदन का निर्वाचन अप्रत्यक्ष पद्धति से हो।

(vii) **सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का अंत** – देश की एकता को सुदृढ़ करने के लिए सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का अंत कर उसके स्थान पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को लागू कर दिया जाय।

(viii) **मौलिक अधिकार** – नागरिकों के लिए संविधान में मौलिक अधिकार को स्थान देने की बात कही गई। नागरिकों को 19 मौलिक अधिकार देने की सिफारिश की गई जिसमें कानून के समक्ष समानता, संपत्ति, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रमुख है।

(ix) **सर्वोच्च न्यायालय** – भारतीयों के लिए अंतिम अपीलीय न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना भारत में ही की जाय। संविधान की व्याख्या करने का अधिकार भी उसे दिया जाय।

(x) **देशी रियासतें** – देशी राज्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के रक्षा की व्यवस्था की जाय। उन पर केंद्रीय सरकार की सर्वोच्चता की स्थापना की बात कही गई। साथ ही उन्हें यह चेतावनी भी दी गयी की भारतीय संघ में उन्हें तभी शामिल किया जायेगा जब उनके राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो जाए।

(xi) **प्रांतीय शासन** – प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त कर उसके स्थान पर उत्तरदायी शासन की स्थापना की जानी चाहिए तथा प्रांतों के गवर्नर को संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्य करना चाहिए।

(xii) **नवीन प्रांतों का गठन** – रिपोर्ट में सिंध को बम्बई से अलग कर उसको एक अलग प्रांत बनाने तथा उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत को भी अन्य प्रांतों के समान ही वैधानिक स्तर प्रदान करने की बात कही गई।

(xiii) **अल्पसंख्यक** – रिपोर्ट में अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर उन्हें आरक्षण प्रदान करने की बात कही गई।

(xiv) सांप्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचक मंडल की माँग अस्वीकार कर दी गई।

(xv) नागरिकता को परिभाषित किया गया।

5.9.3 नेहरू रिपोर्ट पर विभिन्न दलों की प्रतिक्रिया

अगस्त 1928 में लखनऊ में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में सभी राजनीतिक दलों ने एक मत से नेहरू रिपोर्ट को स्वीकृति प्रदान कर दिया था। बाद में विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपने हितों के आधार पर नेहरू रिपोर्ट पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच गंभीर मतभेद उत्पन्न हो गया। इस प्रकार नेहरू रिपोर्ट के संबंध में राजनीतिक दलों

की भिन्न–भिन्न प्रतिक्रियाएँ हुई।

कांग्रेस का युवा दल जिसके नेता पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चंद्र बोस थे, रिपोर्ट को पूर्ण स्वतंत्रता के आधार पर ही स्वीकार करने को तैयार थे किंतु पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस का पुराना दल इस रिपोर्ट को पूर्णतया पूर्ववत स्वरूप में स्वीकार करने के पक्ष में थे।

महात्मा गाँधी के हस्तक्षेप से दोनों दलों में समझौता हुआ तथा उक्त प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से इस रिपोर्ट को स्वीकृति प्रदान कर दी। डॉ0 एम.ए अंसारी एवं अबूल कलाम आजाद जैसे राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं ने इस रिपोर्ट का समर्थन किया।

मुस्लिम लीग में भी नेहरू रिपोर्ट के संबंध में पर्याप्त मतभेद व्याप्त थे। 31 दिसम्बर 1928 ई को दिल्ली में आयोजित सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन में सर मुहमद शफी, मौलाना मोहम्मद अली जैसे मुस्लिम पृथकतावादी नेताओं ने एक स्वर में नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया तथा वे उसे पूर्णतया अस्वीकार करने के पक्ष में थे। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमानों का दूसरा गुट नेहरू रिपोर्ट में कुछ ऐसे संशोधन करवाने का पक्षधर था, जो इसके वास्तविक स्वरूप को ही नष्ट कर देता। जैसे–मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल और विधानमंडलों में उनके लिए अधिक स्थान की मांग। जिन्ना ने नेहरू रिपोर्ट के विकल्प के रूप में 14 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

ब्रिटिश सरकार ने भी नेहरू रिपोर्ट को अत्यधिक प्रगतिवादी कहते हुए इसे अस्वीकार कर दिया। रिपोर्ट से बौखलाकर सरकार ने मुसलमानों को हिन्दुओं तथा कांग्रेस से पृथक करने की नीति अपनायी। कांग्रेस के वामपंथी युवा वर्ग ने भी नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि नेहरू रिपोर्ट न तो पूर्णतः कांग्रेस को न ही मुस्लिम लीग को और न ही सिखों को स्वीकार्य था ; अतः उसे अस्वीकृत कर दिया गया।

5.9.4 नेहरू रिपोर्ट का मूल्यांकन

यद्यपि नेहरू रिपोर्ट सभी दलों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया किन्तु इससे उसका महत्व कम नहीं हो गया। नेहरू रिपोर्ट भारतीय संवैधानिक विकास के दृष्टिकोण से एक मूल्यवान प्रलेख था। यह एक व्यापक संवैधानिक प्रलेख था, जिसमें राष्ट्रवादी भारतीय जनता की आकांक्षाओं एवं भावनाओं को पूर्णतया समावेश किया गया था। स्वतंत्र भारत के संविधान का कुछ प्रमुख प्रावधान मूलतः नेहरू रिपोर्ट से ही लिया गया है। नेहरू रिपोर्ट भारतीयों की बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसने देश के सम्मुख एक महान आदर्श प्रस्तुत किया जिसके स्थान की कमी की पूर्ति कभी नहीं हो सकती और न ही कभी भी इसके महत्व को नकारा जा

सकता है।

सर शफात अहमद खाँ ने नेहरू रिपोर्ट के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा था कि नेहरू रिपोर्ट एक अत्यंत महत्वपूर्ण रचनात्मक प्रयास था। डॉ0 जकारिया ने नेहरू रिपोर्ट को एक परिपक्व तथा राजमर्मज्ञतापूर्ण रिपोर्ट कहा है।

5.10 जिन्ना का चौदह सूत्री कार्यक्रम

नेहरू रिपोर्ट को मुस्लिम लीग ने अस्वीकार कर दिया तथा उसे मुसलमानों के हितों के विपरीत बताया। मुहम्मद अली जिन्ना मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल और विधान मंडलों व मंत्रिमंडलों में अधिक स्थान चाहते थे। नेहरू रिपोर्ट के प्रतिउत्तर में 1928 ई में दिल्ली में हीज हाइनेस आगा खाँ के नेतृत्व में एक सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सर्वदलीय सम्मेलन में जिन्ना ने मुसलमानों के हितों पर आधारित 14 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस 14 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न प्रावधान थे –

(i) भावी संविधान संघात्मक स्वरूप का होगा, जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों में निहित होगा।

(ii) सभी प्रांतों को एक समान स्वायत्तता प्राप्त होगी।

(iii) सभी व्यवस्थापिका सभाओं व निर्वाचन संस्थाओं में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

(iv) केन्द्रीय व्यवस्थापिका में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम से कम एक तिहाई हो।

(v) सांप्रदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व पृथक निर्वाचन व्यवस्था के अनुसार होगा।

(vi) किसी भी प्रकार का क्षेत्रीय पुनर्गठन पंजाब, बंगाल व उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांतो में मुसलमानों के बहुमत को प्रभावित नहीं करेगा।

(vii) सभी संप्रदाओं को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होगी।

(viii) किसी भी विधानसभा में ऐसा कोई भी प्रस्ताव प्राप्त न हो जिसका विरोध किसी संप्रदाय के दो तिहाई सदस्य उसे अहितकर मानकर विरोध करे।

(ix) सिध को बम्बई प्रांत से अलग किया जाय।

(x) उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत व बलुचिस्तान में अन्य प्रांतों की भांति सुधार लाये जायें।

(xi) सरकारी नौकरियों व अन्य स्वयत्तशासित संस्थाओं में मुसलमानों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।

(xii) मुसलमानों की संस्कृति, शिक्षा, भाषा व धर्म की रक्षा के लिए संविधान में

व्यवस्था की जाएगी।

(xiii) केन्द्रीय या प्रांतीय मंत्रिमंडलों में कम से कम एक–तिहाई मुसलमान हो।

(xiv) संविधान में संशोधन लाने के लिए संघ के एकीकृत प्रांतों की स्वीकृति अनिवार्य हो।

5.11 सारांश

स्वराज्य दल ने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीय स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गाँधी जी द्वारा अचानक ही असहयोग आंदोलन को स्थगित करने के बाद भारतीय राजनीति में शून्यता आ गयी, देश में निराशा का बादल छा गया, जनता हतोत्साहित हो गई, राष्ट्रीय भावना को गहरा धक्का पहुँचा। इस राजनीतिक शून्यता की स्थिति में भारत के राजनीतिक पटल पर स्वराज्य दल आशा की एक नयी किरण के रूप में उभरा। 1919 ई के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों को विफल करने के उद्देश्य से पंडित मोतीलाल नेहरू एवं चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वराज्य दल ने 1923 के निर्वाचन में भाग लिया। चुनाव में स्वराज्य दल के उम्मीदवार सर्वत्र विजयी हुए। बंगाल एवं मध्यप्रांत के विधानमण्डलों में उन्हें बहुमत प्राप्त हुआ। 3 फरवरी 1928 ई को साइमन कमीशन बम्बई पहुँचा। इस दिन संपूर्ण देश में हड़ताल का आयोजन किया गया। काले झंडो से तथा 'साइमन वापस जाओ' के नारों से कमीशन का स्वागत किया गया। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय राजनीति की समस्त कठिनाइयों और समस्याओं का पर व्यापक प्रकाश डाला। लेकिन उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति और जनता की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं की पूर्णतया उपेक्षा की। भारतीय साइमन कमीशन की रिपोर्ट से बहुत असंतुष्ट हुए।

5.12 आदर्श प्रश्न

स्वराज्य दल पर संक्षिप्त नोट लिखें ।

1. स्वराज्य दल की कार्य प्रणाली पर टिप्पणी करते हुए इसकी मुख्य उपलब्धियों को बताइए।
2. साइमन कमीशन का गठन क्यों हुआ ? इसके बहिष्कार के कारणों को समझाइये।
3. साइमन कमीशन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये ।
4. नेहरु रिपोर्ट की समीक्षा कीजिये ।

5.13 उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव	–	भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
जी.एन. सिंह	–	भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास
विपिन चंद्रा		भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष
बी.एल. ग्रोवर और यशपाल	–	आधुनिक भारत का इतिहास
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
पी.एल. गाौतम	–	आधुनिक भारत

सन्दर्भ ग्रन्थ

शेखर बंधोपाध्याय	–	प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास
विपिन चंद्रा मृदुला मुखर्जी आदित्य मुखर्जी के.एन. पाणिक्कर सुचेता महाजन		भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष
ए.आर. देसाई	–	भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,
सुमित सरकार	–	आधुनिक भारत 1885–1947
ए. त्रिपाठी	–	उग्रवादी चुनौती
पी. स्पीयर्स	–	द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)
डी. डाल्टन	–	महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति
सी.एच. हेमसथ	–	भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार
सुमित सरकार	–	बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)
एस.एन. सेन	–	1857
विपिन चंद्रा		आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद
अनिता इंदु सिंह		भारत विभाजन की उत्पत्ति, 1936–1947
के.एस. सिंह		बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन 1874–1901, छोटानागपुर

रामकृष्ण मुखर्जी	–	ईस्ट इंडिया कम्पनी का उदय एवं पतन
आर.सी. मजूमदार		भारत का बृहद इतिहास
कालिविनदर दत्ता		
एच.सी. राय चौधरी		
एस.सी. सरकार	–	आधुनिक भारत का इतिहास
के.के. दत्ता		
रामलखन शुक्ला	–	आधुनिक भारत का इतिहास
सत्य राव	–	भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
जी.एन. सिंह	–	भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास
एस.सी. सरकार	–	बंगाल का नवजागरण
क्रिस्टोफर बेली	–	भारतीय समाज और ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण
बी.एल. ग्रोवर और यशपाल	–	आधुनिक भारत का इतिहास
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
पी.एल. गाौतम	–	आधुनिक भारत
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
डॉ0 महेश भटनागर		
डॉ0 वी.के. श्रीवास्तव	–	इतिहास (भारतीय इतिहास की विषयवस्तु)
इडवर्ड थाम्पसन एवं जी.टी. गैरट	–	भारत में ब्रिटिश शासन का उदय एवं पूर्तिकरण
जी.एस. सरदेसाई	–	मराठों का नवीन इतिहास
कामेश्वर प्रसाद	–	भारत का इतिहासकार
बी.एन. पूनिया	–	आधुनिक भारत का इतिहास
दीनानाथ वर्मा	–	आधुनिक भारत का इतिहास

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

MAHY-109
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

खण्ड – 2
स्वराज्य के लिए संघर्ष–2

इकाई – 1

भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास (1919 का भारत सरकार अधिनियम) 93

इकाई – 2

लोकसेवाओं एवं न्यायिक प्रशासन का विकास 110

इकाई – 3

सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं घटनाक्रम 139

इकाई – 4

1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम और कांग्रेसी मंत्रिमंडल 162

इकाई – 5

भारत छोड़ो आन्दोलन 201

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार आचार्य — इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सत्यपाल यादव — सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(इकाई 1–5)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2022 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2021

ISBN : 978-93-94487-87-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई–1

भारत में स्थानीय स्वशासन का विकास (1919 का भारत सरकार अधिनियम)

इकाई की रूपरेखा :

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 स्थानीय स्वशासन का अर्थ एवं इतिहास

1.4 ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन का विकास

1.4.1 स्थानीय स्वशासन की पुर्नस्थापना के प्रयास

1.4.2 प्रेजिडेन्सी नगरों के बाहर स्थानीय स्वशासन का विकास

1.4.3 ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन का विकास।

1.4.4 1870 में मेयो का प्रस्ताव।

1.4.5 1882 में लॉर्ड रिपन का प्रस्ताव।

1.5 मांटेग्यू की घोषणा

1.5.1 मई 1918 का प्रस्ताव

1.6 भारत सरकार अधिनियम 1919 का परिचय

1.6.1 भारत सरकार अधिनियम 1919 की प्रस्तावना

1.6.2 भारत सरकार अधिनियम 1919 के प्रमुख प्रावधान

1.6.3 1919 के अधिनियम के दोष

1.6.4 1919 के अधिनियम के संबंध में कांग्रेस की प्रतिक्रिया

1.6.5 भारत सरकार अधिनियम 1919 का महत्व

1.7 सारांश

1.1 प्रस्तावना

स्वराज के लिए संघर्ष – 1 में हमने राष्ट्रीय आंदोलन के गांधीवादी चरण के आरंभिक पहलुओं को समझा, साथ ही साथ राष्ट्रीय आंदोलन के क्रांतिकारी आयामों स्वराज दल, साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट का भी हमने अध्ययन किया। प्रस्तुत पुस्तक श्स्वराज के लिए संघर्ष भाग 2 में अध्ययन की कड़ी को आगे बढ़ाते हुए हम स्वराज संघर्ष के काल की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं को जानेंगे। यह इकाई भारत में

स्थानीय स्वशासन के विकास को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम भारत में स्थानीय स्वशासन के आरंभिक विकास को समझ सकेंगे। यह अध्ययन हमें 1919 के भारत सरकार अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों से भी परिचित कराएगी।

1.3 स्थानीय स्वशासन का अर्थ एवं इतिहास

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है – स्थानीय, कार्यों का ऐसी स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्रबंध, जो उसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों द्वारा चुनी जाय। प्राचीन काल से ही भारत में स्थानीय स्वशासन का अस्तित्व रहा है। भारत के ग्रामों के विकास के बिना देश की उन्नति असंभव है और ग्रामों का विकास स्थानीय स्वशासन द्वारा ही संभव है। भारत में वैदिक काल में स्थानीय स्वशासन का उत्तरदायित्व ग्राम पर ही था जो ग्राम के प्रमुख व्यक्तियों की सहायता से कार्य करता था। मौर्य काल में भी स्थानीय स्वशासन का उल्लेख मिलता है। मौर्यकाल में स्थानीय उत्तरदायित्व का सिद्धांत लागू था। गुप्त में स्थानीय स्वशासन के लिए 5 सदस्यीय समितियों की स्थापना की गई थी और इनको पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। चोल काल में तो पूर्ण स्वायत्त स्थानीय स्वशासन की प्रथा प्रचलित थी। सल्तनत तथा मुगल काल में भी स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था पूर्ववत बनी रही। मुस्लिम शासकों ने स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। यह व्यवस्था अंग्रेजों के आने तक चलती रही।

1.4 ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन का विकास

अंग्रेजी शासनकाल में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों का भारत में शासन शुरू होते ही उन्होंने पूर्व से प्रचलित स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इससे स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएँ समाप्त हो गई।

1.4.1 स्थानीय स्वशासन की पुर्नस्थापना के प्रयास

पहली बार स्थानीय संस्थाएँ प्रेजिडेन्सी नगरों कलकत्ता, मद्रास तथा बंबई में अस्तित्व में आई। 1687 में बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स ने मद्रास में नगर निगम स्थापित करने की अनुमति दी। इस संस्था में अंग्रेज तथा भारतीय दोनों संयुक्त रूप से सम्मिलित थे। इस संस्था का वेतन व्यय तथा निर्माण कार्यों को करने के लिए कर लगाने की अनुमति दी गई। 1726 में महापौर के न्यायालय की स्थापना की गई तथा महापौर का कार्य अधिकतर न्यायिक ही था। इसी प्रकार के महापौर के न्यायालय बंबई तथा कलकत्ता में भी स्थापित किया गया। 1793 के चार्टर अधिनियम से नागरिक संस्थाओं को वैधानिक आधार मिल गया। गवर्नर जनरल को प्रेजिडेन्सी

नगरों में शांति अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। इस अधिकारी को मकानों पर कर लगाने का अधिकार दिया गया। प्रेजिडेन्सी नगरों में किराये का 5 प्रतिशत गृह कर के रूप में लगाया गया। इस कर से प्राप्त आय को नागरिक सुविधाओं पर खर्च किया जाता था। 1840 से 1853 के मध्य करदाताओं को इन नगर निगमों का सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। 1853 में इस व्यवस्था में परिवर्तन आया। बंबई नगर निगम की कमान मनोनीत आयुक्त को सौंप दी गई। बाद में कलकत्ता तथा मद्रास में भी इसी व्यवस्था को अपनाया गया। 1872, 1876 में इन नगर निगमों में निर्वाचित सदस्यों को महत्वपूर्ण दायित्व देने का प्रयत्न किया गया।

1.4.2 प्रेजिडेन्सी नगरों के बाहर स्थानीय स्वशासन का विकास

प्रेजिडेन्सी नगरों के बाहर, नागरिक संस्थाओं का विकास 1842 के बंगाल अधिनियम द्वारा प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के तहत यदि 2/3 नागरिक सरकार से प्रार्थना करते तो ही नगर में नगरपालिका स्थापित हो सकती थी। एक अधिनियम के तहत एक मात्र नगर में नगरपालिका स्थापित हुई। 1850 में यह अधिनियम समस्त ब्रिटिश प्रांत में लागू कर दिया गया तथा नगरपालिकाओं को अप्रत्यक्ष कर लगाने की अनुमति दी गई। इस प्रकार, अनेक नगरों में नगरपालिकाएँ स्थापित हो गई।

1.4.3 ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन का विकास

नगरों की तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थानीय संस्थाओं का विकास हुआ। सिंध प्रांत ने स्थानीय संस्थाओं को भूमिकर व मुद्रांक शुल्क पर $6\frac{1}{2}\%$ प्रतिशत अतिरिक्त उपकर लगाने का अधिकार दिया गया। मद्रास तथा बंबई में भी यही व्यवस्था लागू की गई। 1866 में मद्रास में तथा 1869 में बंबई में अतिरिक्त उपकर लगाकर उनको नागरिक सुविधाओं पर व्यय करने की अनुमति दी गई।

1.4.4 1870 में मेयो का प्रस्ताव

भारत परिषद अधिनियम 1861 द्वारा वैधानिक विकेंद्रीकरण प्रारम्भ किया गया तथा 1870 में मेयो का वित्तीय विकेंद्रीकरण का प्रस्ताव इसी के अंतर्गत किया गया प्रारम्भिक प्रयास था। इस प्रस्ताव के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण नागरिक सुविधाओं से संबंधित विभागों का नियंत्रण प्रांतीय सरकारों को दिया गया तथा उन्हें नागरिक सुविधाओं पर खर्च करने के लिए केंद्रीय बजट से कुछ अंश तथा स्थानीय कर लगाने की अनुमति दी गई इस प्रस्ताव के अंतर्गत विभिन्न प्रांतों ने अपने यहाँ नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए नगरपालिका अधिनियम बनाया। इस तरह विभिन्न प्रांतों में तेजी से नगरपालिकाओं का विकास हुआ। 1872 में मेयो द्वारा पारित बम्बई नगरपालिका अधिनियम नगरीय प्रशासन के मामले में लम्बे समय तक एक उदाहरण बना रहा। इसके 64 सदस्य निश्चित किये गये जिनमें से 16 रेजीडेन्ट

न्यायाधीशों द्वारा 16 सरकार द्वारा मनोनीत होते थे तथा शेष 32 नागरिकों द्वारा चुने जाते थें। कार्यपालिका की शक्ति कमिश्नर मे निहित थी।

1.4.5 1882 में लार्ड रिपन का प्रस्ताव

1882 ई में गवर्नर जनरल लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को स्थापित करने की दिशा में गंभीर प्रयास प्रारम्भ किया। 18 मार्च 1882 में स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटना घटी। स्थानीय नागरिक संस्थाओं को अधिक से अधिक वित्तीय अधिकार देने का प्रयास किया गया। वित्तीय क्षेत्रों में व्याप्त असमानताओं को दूर करने के लिए 1882 में रिपन सरकार ने अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को निश्चित कार्य एवं पर्याप्त निश्चित आय के साधन दिये गये। इन संस्थओं में गैर सरकारी सदस्यों के बहुमत की स्थापना की गई तथा इनके कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप से कम से कम किया गया। साथ ही यह भी निश्चित किया गया कि किसी भी दशा में स्थानीय संस्थाओं में अधिकारियों की संख्या 1/3 से अधिक न हो। मात्र ऋण लेने, नागरिक संपत्ति को हस्तांतरित करने, नये कर लगाने व निर्धारित राशि से अधिक व्यय करने की योजनाओं के संबंध में अनुमति लेने तथा नियम व उपनियम बनाने के लिए सरकार की अनुमति आवश्यक थी। इस प्रस्ताव का अनुकरण करते हुए 1883 से 1885 के बीच अनेक अधिनियम पारित किया गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लॉर्ड रिपन ने लॉर्ड मेयो द्वारा गुरू किये गये कार्य को आगे बढ़ाया।

1.5 मांटेग्यू की घोषणा

प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों में सशर्त अंग्रेजों को सहायता दी थी तथा विश्वयुद्ध के दौरान विभिन्न नेताओं ने भारतीय को स्वशासन का अधिकार देने के लिए काफी दबाव डाला। बाध्य होकर सरकार ने भारतीयों को कुछ अधिकार देने की योजना बनायी। 20 अगस्त 1917 को मांटेग्यू ने एक घोषणा की जिसमें कहा गया कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना है और इसके प्रथम प्रयत्न के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में सुधार करना है ताकि भारतीयों को शासन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिक से अधिक भागीदारी दी जा सके। इसी आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1919 का अधिनियम पारित किया गया। मांटेग्यू घोषणा में मुख्यतः चार बातों का उल्लेख था।

(i) ब्रिटिश शासन का लक्ष्य भारत में स्वशासन का विकास करना है।

(ii) स्वशासन एकदम न देकर विभिन्न चरणों में क्रमिक रूप से दिया जायेगा।

(iii) विभिन्न चरणों का निर्धारण भारतीयों द्वारा स्वशासन की दिशा में की गई प्रगति पर निर्भर था।

(iv) प्रगति के विषय में निर्धारण ब्रिटिश संसद तथा ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा

किया जाना था।

1.5.1 मई 1918 का प्रस्ताव

20 अगस्त 1917 की मांटेग्यू घोषणा के प्रकाश में भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास की संभावना का 16 मई 1918 को समीक्षा की गई। समीक्षा प्रतिवेदन में कहा गया कि जहाँ तक हो सके इन संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बना दिया जाय तथा उन्हें नाममात्र के स्थान पर अधिक से अधिक वास्तविक अधिकार दिया जाय। उन पर कम से कम सरकारी नियंत्रण रखा जाय तथा उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने दिया जाय। विकेंद्रीकरण आयोग ने प्रतिवेदन पर विचार कर नगरपालिकाओं को वित्तीय क्षेत्र में अधिक अधिकार देने की सिफारिश की। आयोग ने अपने रिपोर्ट में ग्राम पंचायतों के संबंध में कहा कि इन संस्थाओं का उद्देश्य ग्राम्य जीवन का समष्टि रूप तथा सहयोग से विकास करना होना चाहिए। इसके लिए उन्हें न्यायिक शक्तियाँ भी दी जाय किन्तु सरकार ने पंचायतों को न्यायिक अधिकार नहीं दिया।

1.6 भारत सरकार अधिनियम (GOVERNMENT OF INDIA ACT) 1919 ई

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटेन और उसके सहयोगी देशों द्वारा यह प्रचार किया गया कि वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए युद्ध लड़ रहे हैं। अतः भारतीयों ने इस आशा के साथ कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वशासन का अधिकार दिया जायेगा, अंग्रेजों को हर प्रकार की सहायता दी गई। किन्तु ब्रिटिश सरकार की ऐसी कोई मंशा नहीं थी। युद्ध के बाद भारतीयों को स्वराज्य न देकर भारत की प्रशासनिक व्यवस्था में थोड़ा–बहुत सुधार किया गया जिसे मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार के नाम से जाना जाता है। 20 अगस्त 1917 को तत्कालीन भारत मंत्री मांटेग्यू ने कॉमन सभा में यह घोषणा की थी कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना तथा शासन के सभी क्षेत्रों में भारतीयों को अधिक भागीदारी देना है। इसी घोषणा के आलोक में ब्रिटिश सरकार में आगामी संवैधानिक सुधारों की योजना तैयार की। अगस्त घोषणा के बाद नवम्बर 1917 में मांटेग्यू के साथ एक उच्चस्तरीय दल स्थिति का अध्ययन करने भारत आया। इस दल ने भारती अधिकारियों एवं नेताओं से वार्ता कर एक समिति का गठन किया, जिसमें विलियम डयूक, भूपेन्द्र नाथ बसु व ब्रिटिश संसद के सचिव चार्ल्स राबर्ट सम्मिलित थे। इस समिति ने मांटेग्यू के सुधारों का मसौदा तैयार किया तथा उसे 8 जुलाई 1918 को प्रकाशित किया गया। इसी प्रस्तावित मसौदा को आधार मानकर ब्रिटिश संसद ने 28 मई 1919 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया। जिसे 23 दिसम्बर 1919 को ब्रिटिश सम्राट द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो गई तथा भारत सरकार अधिनियम 1919 लागू हो गया।

1.6.1 भारत सरकार अधिनियम 1919 का प्रस्तावना

1919 के भारत सरकार अधिनियम में एक प्रस्तावना भी दी गई जिसमें अधिनियम के लक्ष्य एवं उद्देश्य वर्णित थे। प्रस्तावना में कहा गया कि जहाँ तक भी हो सकेगा, स्थानीय संस्थाओं पर जनता का नियंत्रण होगा और उन पर सरकारी अधिकारियों का कम से कम नियंत्रण होगा। प्रांतों में आंशिक उत्तरदायी सरकार स्थापित की जायेगी और प्रांतों को पहले की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी जायेगी। ब्रिटिश संसद के प्रति भारत सरकार की जिम्मेदारी पूर्ववत बनी रहेगी किन्तु केंद्रीय विधान मंडल का विस्तार किया जायेगा ताकि वह भारत सरकार को पहले से अधिक प्रभावित कर सके। भारत सचिव का भारत सरकार पर नियंत्रण कम कर दिया जायेगा। सिख, ईसाई, आंग्ल–भारतीयों को सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया जायेगा।

1.6.2 भारत सरकार अधिनियम ; 1919 के प्रमुख प्रावधान

A. गृह सरकार से संबंधित प्रावधान –

1. **भारत सचिव से संबंधित प्रश्न** – भारत सचिव के कार्यों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। भारत सचिव को भारत सरकार तथा भारतीय राजस्व से संबंधित सभी मामलों की देखभाल का अधिकार था। इस हेतु वह भारत सरकार को कोई भी आदेश दे सकता था। 1919 के अधिनियम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि भारत का गवर्नर जनरल भारत के शासन संबंधी सभी विषयों के संबंध में भारत सचिव को सूचित करेंगे तथा उसके आदेशों एवं निर्देशों का पालन करेंगे। गवर्नर जनरल भारत सचिव की स्वीकृति के बिना कोई नियुक्ति नहीं कर सकता था। भारत सचिव को किसी भी अधिकारी को उसके पद से हटाने का अधिकार था। भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी भी महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद को समाप्त नही किया जा सकता था।

B. केंद्रीय कार्यपालिका से संबंधित प्रावधान –

1. **गवर्नर जनरल** – गवर्नर जनरल मुख्य कार्यपालिका अधिकारी था। उसके पास भारत के सैनिक एवं गैर सरकारी मामलों की देखभाल, नियंत्रण एवं निर्देश देने की शक्तियाँ थी।

   - गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद की सहायता से कार्य करता था।
   - गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों के बीच विभागों का बँटवारा करता था तथा उन विभागों के कार्यों को संपादित करने संबंधी नियम बनाता था।

- गवर्नर जनरल को कार्यकारिणी परिषद के परामर्श की अवहेलना करने का अधिकार दिया गया।
- विदेश विभाग तथा राजनीतिक विभाग पर गवर्नर जनरल का पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया गया।
- गवर्नर जनरल को ` 2,56,000 वार्षिक वेतन तथा ` 1,72,700 वार्षिक भत्ता तथा निवास हेतु निःशुल्क आवास मिलता था।
- प्रांतों के आरक्षित विषयों के में गवर्नर जनरल को पूर्ण अधिकार प्राप्त था।
- गवर्नर जनरल को माँगों पर कटौती का अधिकार था।
- वह केंद्रीय विधानमंडल द्वारा अस्वीकृत प्रस्तावों को क्राउन की अनुमति से उसे पारित कर सकता था।
- संकट काल में वह अध्यादेश जारी कर सकता था जो 6 माह तक वैध रहता।

2. **कार्यकारिणी परिषद –** स्वविवेकीय शक्तियों के अलावे अन्य विषयों के संबंध में गवर्नर जनरल कार्यकारिणी परिषद की सहायता से कार्य करता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में 8 सदस्यों का प्रावधान किया गया, जिसमें से तीन भारतीय होते थे और उन्हें विधि, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य तथा उद्योग विभाग दिया गया। कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों की नियुक्ति भारत सचिव करता था। गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद का प्रधान था, वही कार्यकारिणी परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता था।

C. **केंद्रीय विधानमंडल से संबंधी प्रावधान –** केंद्रीय स्तर पर पहली बार दो सदन की स्थापना की गई। पहले सदन को केंद्रीय विधानसभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली) तथा दूसरे सदन को राज्य परिषद (कौंसिल ऑफ स्टेट) कहा जाता था।

1. **केंद्रीय विधानसभा –** यह निम्न सदन थी। इसके सदस्यों की कुल संख्या 145 थी जिसमें 41 मनोनीत, 104 निर्वाचित सदस्य थे। निर्वाचित सदस्यों में 52 सामान्य, 30 मुस्लिम, 2 सिख, 9 यूरोपियन, 7 जमींदार, 4 भारतीय वाणिज्य के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। 41 मनोनीत सदस्यों में से 26 सरकारी व 15 गैर सरकारी सदस्य थे। विधानसभा के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से होता था। विधानसभा का कार्यकाल 3 वर्ष था वायसराय इसके कार्यकाल को बढ़ा भी सकता था। मताधिकार का अधिकार संपत्ति था। निर्वाचन में

उन्हीं लोगों को मताधिकार दिया गया जो सरकार को कर देते थें। मताधिकार की योग्यताएँ विभिन्न प्रांतों में अलग–अलग थी। इसके सदस्य एक सभापति व उपसभापित का निर्वाचन करते थे।

2. **राज्य परिषद** – यह उच्च सदन थी। इसके सदस्यों की कुल संख्या 60 थी, जिसमें 26 मनोनीत व 34 निर्वाचित थे। 34 निर्वाचित सदस्यों मे 20 साधारण निर्वाचन मंडल द्वारा जबकि 14 सांप्रदायिक निर्वाचन मंडल द्वारा निर्वाचित होने थे जिनमें 10 मुस्लिम, 3 यूरोपीय व 1 सिख होता। राज्य परिषद का कार्यकाल 5 वर्ष का था। मात्र पुरूष ही इस सदन के सदस्य बन सकते थे। 26 मनोनीत सदस्यों में 19 सरकारी व 7 गैर सरकारी सदस्य होने थे। इसका परिषद का प्रधान गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होता । इसके सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता। इस परिषद का प्रतिवर्ष आंशिक रूप से नवीकरण होना था।

केंद्रीय विधानमंडल के कार्य एवं शक्तियाँ –

1. **विधायी शक्तियाँ –**

- केंद्रीय विधानमंडल केंद्रीय सूची के विषयों पर ब्रिटिश भारत की जनता के लिए कानून बना सकती थी।
- गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति से यह प्रांतों के लिए भी कानून बना सकती थी।
- विधानमंडल ब्रिटिश संसद के किसी कानून के विरूद्ध कोई कानून नहीं बना सकती थी।
- यह भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी।

2. **वित्तीय शक्तियाँ –**

- बजट केंद्रीय विधानसभा में पेश किया जाता था तथा वहाँ से पारित कर राज्य परिषद में भेजा जाता था।
- सदस्य बजट को अस्वीकार कर सकते थें।
- विधानमंडल बजट के पहले भाग पर मात्र बहस कर सकती थी न कि मतदान। इस भाग में ऋणों का ब्याज, अधिकारियों के वेतन एवं भत्तें तथा सैन्य व्यय सम्मिलित था।
- बजट के दूसरे भाग पर विधानमंडल न तो बहस कर सकती थी न मतदान। इसे सदस्यों की सहमति के बिना

भी पारित किया जा सकता थ। यह बजट का 75 प्रतिशत भाग था। सदस्य अनुपूरक माँगे प्रस्तुत कर सकते थे, कटौती प्रस्ताव पेश कर सकते थें। स्थगन प्रस्ताव पेश कर सकते थे।

3. **कार्यपालिका शक्तियाँ –**

- कार्यकारिणी परिषद विधानसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं थी।
- कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों को विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा हटा नहीं सकती थी।
- सदस्य कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते थें, सरकार के पास कोई भी प्रस्ताव भेज सकते थें, स्थगन प्रस्ताव ला सकते थें, निंदा या आलोचना कर सकते थें।
- कुछ सदस्यों को स्थायी समितियाँ, वित्त समिति व सार्वजनिक लोक समिति में नियुक्त किया गया।

D. प्रांतीय प्रशासन से संबंधित प्रावधान –

द्वैध शासन की स्थापना – 1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन की स्थपना की गई। इस अधिनियम द्वारा पहली बार केंद्र एवं प्रांतों के मध्य विषयों की विभाजन किया गया। प्रांतीय विषयों का कानून बनाने का अधिकार प्रांतीय विधानमंडलों को दिया गया। प्रांतीय विषय को भी दो भागों में विभाजित किया गया। आरक्षित हस्तांतरित आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर कार्यकारिणी परिषद की सहायता से चलाता था, जबकि हस्तांरित विषयों का प्रशासन गवर्नर मंत्रिपरिषद की सहायता से चलाता था। मंत्रिपरिषद प्रांतीय विधानपरिषद के प्रति उत्तरदायी थी। प्रांत में द्वैध शासन प्रणाली के जन्मदाता सर लियोनिल कॉटिश थे। प्रांतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए इस व्यवस्था को अपनाया गया।

केन्द्र एवं प्रांतों में विषयों का विभाजन – राष्ट्रीय महत्व के विषयों को केंद्रीय सूची तथा स्थानीय महत्व के विषयों को प्रांतीय सूची में रखा गया।

केंद्रीय सूची के विषय	प्रांतीय सूची के विषय
47 विषय	50 विषय
विदेश विभाग	स्थानीय स्वशासन

प्रतिरक्षा	सार्वजनिक स्वास्थ्य
बैंक बीमा	सफाई, भूमिकर
नागरिकता	चिकित्सा
यातायात के साधन	शिक्षा
देशी रियासतों से संबंध	पुलिस
सीमा शुल्क	जेल
आयकर	न्याय
डाक, सिक्का व नोट	सहकारिता
सार्वजनिक ऋण	जंगल, सिंचाई, कृषि

अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि यदि सपरिषद गवर्नर जनरल किसी केंद्रीय विषय को स्थानीय हित को घोषित कर दे तो उस विषय पर प्रांत कानून बना सकती थी। अधिनियम में यह भी व्यवस्था दी गई कि जो विषय किसी भी सूची में सम्मिलित नहीं है, उस पर कानून बनाने का अधिकार केंद्रीय विधामंडल को होगा। साथ ही यह भी उल्लेख किया गया कि विषय बँटवारा से संबंधित प्रावधान पर विवाद उत्पन्न होने पर अंतिम निर्णय गवर्नर जनरल का होगा। गवर्नर जनरल की अनुमति से केंद्रीय विधानमंडल को सभी प्रांतीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया।

प्रांतीय विषयों का विभाजन – प्रांतीय विषयों में 50 विषय शामिल थे। प्रांतीय विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया ।

आरक्षित हस्तांतरित आरक्षित विषयों के शासन का संचालन प्रांतीय गवर्नर कार्यकारिणी परिषद की सहायता से करता था। इन विषयों के प्रशासन के लिए प्रांतीय गवर्नर भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी था न कि गवर्नर जनरल के। आरक्षित विषयों में भूकर, अकाल सहायता, न्याय प्रशासन, खनिज संसाधन, उत्पादन पूर्ति, माप–तौल, पुलिस, छापखाना, ऋण, वित्त आदि शामिल था। हस्तांतरित विषयों का प्रशासन मंत्रिपरिषद चलाता था। इन विषयों के प्रशासन के लिए मंत्रिपरिषद प्रांतीय विधानपरिषद के प्रति उत्तरदायी थी। 50 विषयों में से 27 विषय हस्तांतरित विषय सूची में शामिल थे। हस्तांतरित विषय के अंतर्गत – स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य,

सफाई, कृषि, सहकारिता, उद्योग–धंधे आदि रखे गये थे।

प्रांतों पर से केंद्रीय नियंत्रण में कमी – प्रांतो पर से केंद्र सरकार के नियंत्रण में कमी कर दी गई। प्रांतो को प्रांतीय विषयों पर कानून बनाने की स्वतंत्रता दी गई। हस्तांतरित विषयों पर विधि निर्माण के समय तों केंद्रीय सरकार हस्तक्षेप नहीं करती थी किन्तु आरक्षित विषयों के संबंध में केन्द्र सरकार विधि निर्माण में पर्याप्त हस्तक्षेप करती थी।

वित्तीय क्षेत्र में प्रांतो को अलग से कर लगाने तथा उसे वसूल करने की अनुमति दी गई। प्रांतों को केंद्र सरकार के साधनों से भी कर वसूलने की अनुमति दी गई। केंद्र व प्रांतों के मध्य आय के साधनों का बँटवारा कर दिये जाने से प्रांत वित्तीय क्षेत्र में पर्याप्त आत्मनिर्भर बन गए। प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था 1 अप्रैल 1921 को लागू की गई थी। अप्रैल 1937 तक चलती रही किन्तु बंगाल में 1924 से 1927 तक तथा मध्य प्रांत में 1924 से 1926 तक यह व्यवस्था कार्य नहीं कर सकी। 1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा द्वैध शासन व्यवस्था का अंत कर दिया गया।

E. प्रांतीय कार्यपालिका से संबंधित प्रावधान –

1. गवर्नर –

- गवर्नर प्रांतीय कार्यपालिका का प्रधान था।
- गवर्नर आरक्षित विषयों के संबंध में कार्यकारिणी परिषद तथा हस्तांतरित विषयों के संबंध में मंत्रिपरिषद की सहायता से प्रशासन चलाता था।
- गवर्नर मंत्रिपरिषद के सदस्यों को नियुक्त करता था जो उसकी इच्छा तक पदों पर बने रहते थे।
- यदि गवर्नर किसी गैर सदस्य को मंत्री बना देता तो उसे 6 माह के भीतर विधान परिषद की सदस्यता लेनी पड़ती थी, अन्यथा उसे पद से हटना पड़ता था।
- मंत्रिपरिषद के सदस्यों की नियुक्ति विधानपरिषद के सदस्यों में से होती थी तथा वे अपने कार्यों के लिए विधानपरिषद के प्रति उत्तरदायी होती थी।
- विधानपरिषद मंत्रिपरिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती थी।
- गवर्नर को भी बिना कारण बताए मंत्रियों को हटाने का अधिकार था।

➢ गवर्नर मंत्रियों के परामर्श की अवहेलना तभी कर सकता था जब प्रांत की सुरक्षा, पिछड़ी जातियों के कल्याण तथा धार्मिक एंव जातीय झगड़ों से लोगों के बचाने के लिए वह ऐसा करने के लिए आवश्यक समझे।

गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व –

(i) भारत सचिव के आदेशों एवं निर्देशों का पालन करना।

(ii) प्रांतों में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करना।

(iii) धार्मिक एवं जातीय झगड़ों का निराकरण करना।

(iv) सरकारी कर्मचारियों के विशेषाधिकारियों की रक्षा करना।

(v) जन कल्याणकारी कार्य करना।

(vi) वंचितों तक सरकारी सुविधाएँ पहुँचाना।

प्रांतों में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर गवर्नर राज्य के प्रशासन एवं हस्तांतरित विषयों का दायित्व अपने ऊपर ले सकता था। आर्थिक क्षेत्र में गवर्नर के पास अंतिम शक्ति थी। संकट के समय होने वाले व्यय को वह अपने विशेषाधिकार के तहत मंजूरी दे सकता था तथा उसे माँगों पर कटौती का पूर्ण अधिकार था।

F. प्रांतीय विधानमंडल संबंधी प्रावधान – प्रांतीय परिषद को विधान परिषद की संज्ञा दी गई। 1919 के अधिनियम द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि विधानपरिषद के 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होंगे तथा किसी भी दशा में मनोनीत सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रांतों में निर्वाचित सदस्यों के बहुमत की स्थापना की गई। दलितों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए उनके कुछ सदस्यों को मनोनित करने की व्यवस्था की गई। गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य विधानपरिषद के पदेन सदस्य थे। महिलाओं को भी मताधिकार प्रदान किया गया तथा सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का और विस्तार किया गया।

विभिन्न प्रांतों में सदस्यों की संख्या एवं उनका विभाजन निम्न था –

प्रांत	निर्वाचित सदस्य	सरकारी सदस्य	मनोनीत सदस्य	कुल
मद्रास	98	11	23	132
बंबई	86	19	9	114

बंगाल	114	16	10	140
संयुक्त प्रांत	100	17	6	123
पंजाब	71	15	8	94
बिहार–उड़ीसा	76	19	12	103
मध्य प्रांत	55	10	8	73
असम	39	7	7	53
उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत	39	7	7	53

प्रांतीय विधानपरिषदों का निर्वाचन – 1909 के अधिनियम की तुलना में इस अधिनियम द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया। मताधिकार 3 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत कर दिया गया। मतदाताओं के लिए संपत्ति की योग्यता, सांप्रदायिक तथा वर्गीय निवाचन मंडल आदि इन निर्वाचनों की विशेषता थी। ग्रामीण क्षेत्र में 10 से 50 रूपये तक तथा नगरों मे कम से कम 2000 रूपये तक वार्षिक आय पर कर देने वाले को या 3 रूपये वार्षिक नगरपालिका को कर देने वाले को मताधिकार दिया गया।

विधानपरिषद की शक्तियाँ एवं कार्य –

1. **विधायी शक्तियाँ –**

   प्रांतीय विधानपरिषदों को प्रांतीय विषय सूची के हस्तांतरित व आरक्षित विषयों पर विधि बनाने का अधिकार दिया गया।

   प्रांतीय विधानपरिषद को निम्न मामलों के संबंध में विधि बनाते समय गवर्नर जनरल की अनुमति लेना पड़ता था।

   (i) वह कर जिन्हें लगाने का अधिकार प्रांतीय विधानपरिषद को नहीं है।

   (ii) सार्वजनिक ऋण

   (iii) सरकार का देशी रियासतों व विदेशी राज्यों से संबंध

   (iv) सैन्य संगठन से संबंधित

   (v) किसी केंद्रीय विषय से संबंधित

(vi) प्रांतीय विधानपरिषद ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए कानून के विरूद्ध विधि का निर्माण नहीं कर सकता था।

(vii) गवर्नर विधानपरिषद द्वारा पारित विधेयक को स्वीकृत या अस्वीकृत, पुर्नविचार हेतु लौटा सकता था या ब्रिटिश सम्राट के विचार हेतु आरक्षित कर सकता था।

2. विधानपरिषद की वित्तीय शक्तियाँ –

- विधानपरिषद बजट के 70 प्रतिशत भाग पर मतदान करने के अधिकार से वंचित थी। मात्र 30 प्रतिशत भाग पर ही वह मत दे सकती थी।
- वह किसी भी व्यय में कमी कर सकती थी।
- वह मंत्रियों के वेतन में कमी कर सकती थी किन्तु कार्यकारिणी के सदस्यों के वेतन में कमी करने का अधिकार उसे नहीं था।
- सदस्य बजट को अस्वीकार कर सकते थें किन्तु यदि गवर्नर चाहे तो उसे उनकी अनुमति के बिना पारित कर सकता था।

3. कार्यपालिका शक्तियाँ –

- सदस्यों को बोलने का अधिकार एवं स्वतंत्रता थी।
- सदस्य विधानपरिषद में कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थें।
- सदस्य प्रश्न, पूरक प्रश्न पूछ सकते थे।
- विधानपरिषद मंत्रिपरिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती थी।
- विधानपरिषद को कार्यकारिणी के सदस्यों को पदच्युत करने का अधिकार नहीं था।
- सदस्य निंदा प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव सदन में रख सकते थें।

1.6.3 1919 के अधिनियम के दोष

1919 के भारत सरकार अधिनियम में अनेक दोष विद्यमान थे जो निम्न हैं –

- मताधिकार अत्यंत ही सीमित था।
- केंद्रीय स्तर पर सदस्यों का गवर्नर जनरल व उसकी कार्यकारिणी परिषद पर कोई नियंत्रण नहीं था।
- केंद्रीय स्तर पर विषयों का विभाजन संतोषजनक नहीं था।

- केंद्रीय विधानमंडल में प्रांतों के मध्य स्थानों का बँटवारा समानता या उनकी आबादी के आधार पर न कर, प्रांतों के सैनिक एवं वाणिज्यिक महत्व के आधार पर किया गया था।
- प्रांतों में शासन के लिए द्वैध व्यवस्था की स्थापना राजनीतिक सिद्धांत तथा व्यवहार के विरूद्ध था।
- प्रांतीय विषयों का आरक्षित एवं हस्तांतरित विषयों में विभाजन भी अव्यावहारिक था।
- प्रांतों में संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव था जिसके कारण प्रांतों में शासन कुशलतापूर्वक संचालित नहीं हो पाता था। गवर्नर सदैव मंत्रिपरिषद के कार्यों में हस्तक्षेप करता था।
- मंत्रिपरिषद पर गवर्नर का पूर्ण नियंत्रण था। गवर्नर मंत्रियों को कभी भी पदच्युत कर सकता था। मंत्रियों का कार्यकाल गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था।
- प्रांतीय मंत्रिपरिषद का प्रांतों के वित्त पर नियंत्रण का अभाव था। उनके न चाहते हुए भी गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर बजट को पारित कर सकता था।
- प्रांतीय मंत्रिपरिषद का नौकरशाही पर कोई नियंत्रण नहीं था। नौकरशाही मंत्रियों की अवहेलना करता था तथा महत्वपूर्ण विषयों पर मंत्रियों से विचार विमर्श नहीं करता था। इससे दोनों के मध्य टकराव बढ़ा।
- केंद्रीय सरकार अभी भी उत्तरदायित्वहीन बनी रही।
- केंद्रीय सरकार का प्रांतीय सरकारों पर अबाध नियंत्रण था।
- पृथक मताधिकार का विस्तार किया गया।
- प्रशासन को दो स्वतंत्र भागों में बाँटना राजनीति के सिद्धांतों एवं व्यवहार के विरूद्ध था।

1.6.4 अधिनियम के संबंध में कांग्रेस की प्रतिक्रिया

हसन इमाम की अध्यक्षता में अगस्त 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रस्तावों पर विचार करने के लिए बंबई में एक विशेष सत्र बुलाया। इस सत्र में इन प्रस्तावों को निराशाजनक और असंतोषजनक बताकर इसके स्थान पर प्रभावी स्वशासन का प्रस्ताव पारित किया गया। महात्मा गाँधी ने इन सुधारों को भविष्य में भी भारत के आर्थिक शोषण तथा उसे परतंत्र बनाये रखने की प्रक्रिया का अंग बतलाया।

1.6.5 भारत सरकार अधिनियम 1919 का महत्व

भारत सरकार अधिनियम 1919 का भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा प्रांतीय विधानसभाओं में निर्वाचित सदस्यों की संख्या का विस्तार किया गया तथा उनका बहुमत स्थापित किया गया।

- इस अधिनियम ने भारत में प्रांतीय स्वशासन तथा आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन व्यवस्था की शुरूआत की।
- इस अधिनियम द्वारा केंद्र में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गई।
- गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों को पहले से तिगुना प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई।
- ब्रिटेन स्थित भारतीय उच्चायुक्त नामक एक नये पदाधिकारी को नियुक्त करने का प्रावधान किया गया। इसे भारतीय राजकोष से वेतन देने की व्यवस्था की गई।
- भारत सचिव को भारत में महालेखाकार परीक्षक को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया।
- इस अधिनियम द्वारा भारत में एक लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया।

1.7 सारांश

प्राचीन काल से ही भारत में स्थानीय स्वशासन का अस्तित्व रहा है। भारत के ग्रामों के विकास के बिना देश की उन्नति असंभव है और ग्रामों का विकास स्थानीय स्वशासन द्वारा ही संभव है। अंग्रेजी शासनकाल में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों का भारत में शासन शुरू होते ही उन्होंने पूर्व से प्रचलित स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इससे स्थानीय प्रशासनिक संस्थाएँ समाप्त हो गई। अंग्रेजी शासनकाल में पहली बार स्थानीय संस्थाएँ प्रेजिडेन्सी नगरों कलकत्ता, मद्रास तथा बंबई में अस्तित्व में आई। भारत परिषद अधिनियम 1861 द्वारा वैधानिक विकेंद्रीकरण प्रारम्भ किया गया तथा 1870 में मेयो का वित्तीय विकेंद्रीकरण का प्रस्ताव इसी के अंतर्गत किया गया प्रारम्भिक प्रयास था। 1882 ई में गवर्नर जनरल लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को स्थापित करने की दिशा में गंभीर प्रयास प्रारम्भ किया। 18 मार्च 1882 में स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण घटना घटी। स्थानीय नागरिक संस्थाओं को अधिक से अधिक वित्तीय अधिकार देने का प्रयास किया गया। 20 अगस्त 1917 की मांटेग्यू घोषणा के प्रकाश में भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास की संभावना का 16 मई 1918 को समीक्षा की गई। समीक्षा प्रतिवेदन में कहा गया कि जहाँ तक हो

सके इन संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बना दिया जाय तथा उन्हें नाममात्र के स्थान पर अधिक से अधिक वास्तविक अधिकार दिया जाय। उन पर कम से कम सरकारी नियंत्रण रखा जाय तथा उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने दिया जाय। भारत सरकार अधिनियम 1919 का भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा प्रांतीय विधानसभाओं में निर्वाचित सदस्यों की संख्या का विस्तार किया गया तथा उनका बहुमत स्थापित किया गया। इस अधिनियम ने भारत में प्रांतीय स्वशासन तथा आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन व्यवस्था की शुरूआत की।

1.8 आदर्श प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन के विकास पर टिप्पणी करें।
2. स्थानीय स्वशासन के विकास में मेयो के योगदान पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
3. भारत सरकार अधिनियम 1919 के मुख्य प्रावधानों की चर्चा करें।
4. भारत सरकार अधिनियम 1919 का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
5. भारत सरकार अधिनियम 1919 के महत्व की चर्चा करें ।

1.9 उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार – आधुनिक भारत 1885–1947

ए. त्रिपाठी – उग्रवादी चुनौती

पी. स्पीयर्स – द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)

डी. डाल्टन – महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति

सी.एच. हेमसथ – भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार

सुमित सरकार – बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)

इकाई–2

लोकसेवाओं एवं न्यायिक प्रशासन का विकास

इकाई की रूपरेखा :

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कंपनी काल में भारत में लोकसेवा का विकासक्रम

2.3.1 वारेन हेस्टिंग्स के प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

2.3.2 बंगाल न्यायालय अधिनियम 1781

2.3.3 लॉर्ड कॉर्नवालिस के प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

2.3.4 लॉर्ड हेंस्टिग्स के न्यायिक सुधार

2.3.5 लॉर्ड विलियम बैंटिक के न्यायिक सुधार

2.3.6 लॉर्ड विलियम बैंटिक के बाद न्यायिक सुधार (1935 ई तक)

2.4 1857 के बाद प्रशासनिक परिवर्तन

2.4.1 लोकसेवा के संबंध लॉर्ड लिटन का कार्य

2.5 लोकसेवा के संबंध में नियुक्त विभिन्न आयोग एवं उनकी सिफारिशें

मैकाले समिति एचीशन आयोग, इसलिंगन आयोग

मांटेस्क्यू–चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन, ली आयोग

2.6 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत लोकसेवा से संबंधित प्रावधान

2.7 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लोक सेवा की स्थिति

2.8 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोकसेवा के संबंध में परिवर्तन

2.8.1 भारतीय संविधान में लोक सेवा से संबंधित प्रावधान

2.8.2 संघ लोक सेवा आयोग

2.9 अन्य प्रशासनिक संस्थाओं का विकास

2.10 सारांश

2.11 आदर्श प्रश्न

2.12 उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मुख्यतया ब्रिटिश शासन की अद्वितीय विरासत है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के विभिन्न ढांचागत और कार्यप्रणाली जैसे– सचिवालय प्रणाली, अखिल भारतीय सेवाएँ, भर्ती, प्रशिक्षण, कार्यालय पद्धति, जिला प्रशासन, पुलिस प्रशासन, राजस्व प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन आदि विभिन्न पक्ष ब्रिटिश शासन के अंतर्गत प्रशासनिक विकास की ही देन है। इस अध्याय में हम लोकसेवाओं एवं न्यायिक प्रशासन के विकास को समझने के लिए प्रस्तुत विषय वस्तु का अध्ययन तीन भागों में करेंगे–

1. 1858 तक कंपनी का शासन
2. 1947 तक ब्रिटिश ताज का शासन
3. 1947 के बाद भारतीय संविधान में लोक सेवा से संबंधित प्रावधान

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय से हमें भारत में लोक सेवाओं एवं न्यायिक प्रशासन की स्थापना एवं विकास को समझने में सहायता होगी। लॉर्ड कार्नवालिस, हेस्टिंग्स एवं विलियम बैंटिक के प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधारों को इस अध्ययन द्वारा समझा जा सकेगा। यह अध्याय स्वतंत्रता के समय भारत में लोक सेवाओं की स्थिति तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान द्वारा लोक सेवाओं के लिए किए गए उपबंधों को जानने में भी सहायक होगी

2.3 कंपनी काल में भारत में लोकसेवा का विकासक्रम

दिसम्बर 1600 ई में ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ टेलर प्रथम ने ईस्ट इंडिया कंपनी को पूर्व के साथ व्यापार के लिए अधिकार पत्र प्रदान किया। कंपनी ने भारत में विभिन्न स्थानों पर अपनी व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करने के लिए अनेक व्यापारिक कोठियाँ स्थापित की। कंपनी ने अपने कार्यों को करने के लिए भारतीयों को कंपनी की सेवा के निम्न पदों पर नियुक्त करना शुरू किया क्योंकि एक ओर तो अंग्रेज अधिकारियों की संख्या अत्यधिक कम थी तथा दूसरी ओर उन्हें भारत की भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाजों आदि की जानकारी नहीं थी। इस प्रकार 17वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में पहली बार में लोकसेवा और लोकसेवा प्रणाली की शुरूआत हुई।

प्रारम्भ में वाणिज्यिक कार्यों में लगे ईस्ट इंडिया कंपनी के सेवकों को कंपनी की स्थल सेना और नौसेना के कर्मचारियों से पृथक रखने के उद्देश्य से लोकसेवक कहा जाता था। 1675 ई0 में कंपनी ने पदों को नियमित रूप से निम्नक्रम में (नीचे से ऊपर के क्रम में) श्रेणीबद्ध करने की परम्परा डाली।

- अपरेंटिस –
- राइटर
- फैक्टर
- जूनियर मर्चेंट
- सीनियर मर्चेंट

गेराल्ड औंगियार 1669 से 1677 तक बंबई का गवर्नर रहा। उसे बंबई नगर की किलेबंदी करने के साथ ही वहाँ एक न्यायालय तथा पुलिस दल की स्थापना की। 1687 ई तक बंबई पश्चिमी तट का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बना रहा। 23 जून 1757 को प्लासी के युद्ध तथा 22 अक्टूबर 1764 ई को बक्सर के युद्ध में विजयी होने के बाद भारत का एक बड़ा भाग कंपनी के अधीन आ गया। जब कंपनी के अधीन क्षेत्रों का विस्तार हुआ तो लोकसेवकों को वाणिज्यिक कार्यों के साथ ही प्रशासनिक कार्यों को भी करना पड़ा। 1765 तक लोकसेवक शब्द का प्रयोग कंपनी के अधिकारिक अभिलेखों में होने लगा था। 1765 ई में इलाहाबाद की संधि के तहत मुगल बादशाह शाहआलम ्प् ने 26 लाख रूपये वार्षिक पेंशन के बदले में कंपनी को बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में दीवानी का अधिकार प्रदान किया। इसी वर्ष बंगाल के नवाब नज्मुद्दौला से संधि के फलस्वरूप 53 लाख रूपये वार्षिक के बदले में कंपनी को बंगाल के निजामत का भी अधिकार मिल गया। दीवानी एवं निजामत दोनों अधिकार प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप कंपनी बंगाल का वास्तविक शासक बन गई। तत्कालीन गर्वनर लॉर्ड क्लाइव ने बंगाल का प्रशासन संचालित करने के लिए द्वैध शासन व्यवस्था की स्थापना की जो अत्यंत ही दोषपूर्ण व्यवस्था थी।

1772 में वारेन हेंस्टिंग्स बंगाल का गवर्नर बना। उसने बंगाल में द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया तथा उसके प्रयासों के फलस्वरूप भारत में लोकसेवा का उदय हुआ। हालाँकि उसके द्वारा स्थापित व्यवस्था पूर्णतया व्यवस्थित न होकर आंशिक थी।

2.3.1 वारेन हेंस्टिंग्स का प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

1773 में ब्रिटिश संसद ने कंपनी के प्रशासनिक दोषों को दूर करने के लिए रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया। वॉरेन हेस्टिंग्स ने बंगाल के प्रथम गवर्नर जनरल के रूप में कार्यभार संभाला तथा भारत में प्रशासनिक सुधार की ओर ध्यान देकर ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने की हरसंभव कोशिश की। भारत में लोक सेवा का प्रारम्भ 1773 ई के रेग्यूलेटिंग एक्ट से माना जाता है। वारेन हेस्टिंग्स के समय से कंपनी में लोक सेवाओं का स्वरूप नौकरशाहीनुमा होने लगा। व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करने के अतिरिक्त लोकसेवकों का कार्य राजस्व एकत्रित करना, शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करना तथा भारतीयों पर शासन करना हो गया। 1772 ई में

जिला क्लेक्टर का पद सृजित किया गया जो 1773 ई में ही समाप्त हो गया। राल्फ शेल्डन की प्रथम जिला कलेक्टर के रूप में नियुक्ति हुई। 1786 ई में जिला को राजस्व इकाई बनाया गया तथा राजस्व संग्रह एवं दीवानी न्यायिक कार्यों को संयुक्त कर जिला कलेक्टर नियुक्त किया जाने लगा। कलेक्टर को उसके कार्यों में सहायता देने के लिए प्रत्येक जिले में एक नायब दीवान नियुक्त किया गया।

न्यायिक सुधार – वारेन हेस्टिंग्स ने न्यायिक क्षेत्र में व्यापक सुधार किया। उसने मुगल रूपरेखा पर आधारित न्यायिक प्रणाली को स्थापित कर उसे नवीन स्वरूप देने का प्रयत्न किया। 1772 में न्याय प्रशासन की दृष्टि से प्रत्येक जिले को एक इकाई माना गया तथा प्रत्येक जिले में एक दीवानी तथा एक फौजदारी न्यायालय की स्थापना की गई।

(A) दीवानी न्यायिक व्यवस्था

1. दीवानी न्यायालय (जिला स्तर पर) –

दीवानी न्यायालय कलेक्टर के अधीन थी। दीवानी न्याय के क्षेत्र में हिन्दुओं पर हिन्दू विधि तथा मुसलमानों पर मुस्लिम विधि लागू होती थी। इस न्यायालय में 500 रूपये तक के मुकदमों की सुनवाई होती थी। कलेक्टर भारतीय परामर्शदाताओं के सहयोग से न्यायिक गतिविधियों को संचालित करता था। ऐसे न्यायालयों में शादी–विवाह, जाति प्रथा, ऋण, लगान, साझेदारी एवं उत्तराधिकार से संबंधि तमामले निष्पादित किये जाते थें।

3. सदर दीवानी न्यायालय (अखिल भारतीय स्तर पर) –

सदर दीवानी न्यायालय कलकत्ता में स्थापित की गई थी। यह न्यायालय जिला दीवानी न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील की सुनवाई करता था। सदर दीवानी न्यायालय में गवर्नर और उसके परिषद के दो सदस्य भारतीय अधिकारियों–खालसा का दीवान तथा प्रमुख कानूनगो की सहायता से न्याय करता था। इसके निर्णयो के विरूद्ध प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में अपील की जा सकती थी। प्रिवी कौंसिल का निर्णय अंतिम होता था। वह सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय थी। 1774 तक गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद के सदस्य अदालत के न्यायाधीश के रूप में नियमित रूप से कार्य करते रहें किन्तु बाद में उन्होंने इस न्यायालय की कार्यवाही में भाग लेना बंद कर दिया। 24 अक्टूबर 1780 में गवर्नर जनरल एवं परिषद द्वारा नियुक्त न्यायाधीश ही इन न्यायालयों में कार्य करने के लिए अधिकृत किये गये।

(B) फौजदारी न्यायिक व्यवस्था

1. फौजदारी न्यायालय (जिला स्तर पर)

जिला स्तरीय फौजदारी न्यायालय में कंपनी का एक भारतीय अधिकारी मौलवी, काजी व मुफ्तियों की सहायता से न्याय करता था। इस न्यायालय के कार्यों का निरीक्षण जिला कलेक्टर द्वारा किया जाता था। न्याय खुली अदालत में होता था। फौजदारी न्याय के क्षेत्र में हिन्दू व मुस्लिम दोनों पर मुस्लिम विधि लागू होता था। मृत्युदंड तथा संपत्ति को जब्त करने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं था। इसके लिए उसे सदर निजामत न्यायालय से मंजूरी लेना पड़ता था। रजा खाँ ने वारेन हेस्टिंगस की अनुमति से कुल 23 जिला फौजदारी न्यायालयों की स्थापना की। चूँकि फौजदारी के क्षेत्र में उत्तरदायित्व अधिक व आय का अभाव था। इसलिए फौजदारी न्याय व्यवस्था भारतीय अधिकारी– मुहम्मद रजा खाँ व सिताब राय पर ही छोड़ दी गई।

2. सदर फौजदारी न्यायालय (अखिल भारतीय स्तर पर)

सदर फौजदारी न्यायालय कलकत्ता में स्थापित की गई थी। यह न्यायालय जिला फौजदारी न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनता था। सदर निजामत न्यायालय में नाजिम द्वारा नियुक्त उपनाजिम या दरोगा–ए–दआलत न्याय करता था। उसके कार्यों में सहायता देने के लिए एक मुख्य काजी, एक मुख्य मुफ्ती व तीन मौलवी होते थे। सदर निजामत न्यायालय के कार्यों का निरीक्षण सपरिषद गवर्नर जनरल करता था। इसके निर्णयों के विरूद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी। प्रिवी कौंसिल का निर्णय अंतिम होता था।

(C) सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना

1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा 1774 में कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश एवं तीन अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई। इसके अधिकार क्षेत्र में कलकत्ता में रहने वाले सभी भारतीय तथा अंग्रेज थे। कलकत्ता के बाहर रहने वाले भारतीयों के झगड़ों को यह तभी सुनता था, जब दोनों पक्ष इसके लिए स्वीकृति दे दें। रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के कार्य क्षेत्र का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया था जिसके कारण सर्वोच्च न्यायालय एवं सपरिषद गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय न्यायालयों के मध्य निरंतर विवाद की स्थिति बनी रही। एक्ट द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि सपरिषद गवर्नर जनरल एवं सर्वोच्च न्यायालय में से कौन सर्वोच्च होगा, साथ ही एक्ट में यह भी

उल्लेख नहीं था कि सर्वोच्च न्यायालय हिन्दू, विधि, मुस्लिम विधि व ब्रिटिश विधि में से किस विधि द्वारा न्याय करेगी।

(D) प्रिवी कौंसिल

सदर निजामत व दीवानी न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध सपरिषद ब्रिटिश सम्राट की न्यायालय में अपील की जा सकती थी। सपिरिषद सम्राट (प्रिवी कौंसिल) की न्यायिक समिति मुकदमों की सुनवाई करती थी। न्यायिक क्षेत्र में यह सर्वोच्च न्यायालय थी। इसका निर्णय अंतिम होता था। मात्र ब्रिटिश संसद ही उसके निर्णयों को परिवर्तित कर सकती थी। यह न्यायालय लंदन में स्थित थी।

अन्य न्यायिक सुधार

(i) न्याय की कार्यप्रणाली को निर्धारित किया गया।

(ii) न्यायाधीशों को मासिक वेतन देने की व्यवस्था की गई ताकि वह ईमानदारी एवं निष्पक्ष रूप से न्याय कर सके।

(iii) न्यायाधीशों के मार्गदर्शन के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों को संकलित कराया गया तथा उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कराया गया।

(iv) जमींदारों के न्यायिक अधिकार को समाप्त कर दिया गया।

(v) 10 रूपये से ऊपर के सभी झगड़ों को न्यायालय में लाने के लिए व्यवस्था की गई।

(vi) 1780 में 6 प्रांतीय कौंसिलों के न्याय संबंधी अधिकार 6 दीवानी अदालतों को दे दी गई। ऐसे न्यायालयों की संख्या 1781 में बढ़ाकर 18 कर दी गई तथा सभी दीवानी मामले उन्हीं के द्वारा देखे जाने लगे।

(vii) प्रत्येक जिले में एक फौजदार की नियुक्ति की गई जो अपराधियों को पकड़कर न्यायालयों में लाने का कार्य करता था तथा जिला में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व उसकी का था। बड़े जिलों के प्रमुख नगरों में फौजदारी थाने स्थापित किये गए। फौजदारी अदालतों व थानों के साथ जेलें भी बनाई गई।

(viii) 1774 में जिला अदालतें आमिल नामक भारतीय अधिकारी के अधीन कर दी गई। उनके निर्णय के विरूद्ध प्रांतीय कौंसिल तथा वहाँ से सदर दीवानी न्यायालय में अपील हो सकती थी।

(ix) 1775 में सदर निजामत न्यायालय मुर्शिदाबाद स्थानांतरित कर दी

गई।

(x) 1775 में फौजदारी प्रथा समाप्त कर दी गई तथा फौजदारों की शक्तियाँ और कर्त्तव्य जिला अदालतों के जजों के मिल गये किन्तु अभियुक्तों की जाँच भारतीय जजों के अधीन फौजदारी न्यायालयों में ही होती रही जिनपर मुर्शिदाबाद के नायब नाजिम का अंतिम नियंत्रण था।

निष्कर्ष – वारेन हेस्टिंग्स द्वारा किया गया सुधार असफल रहा क्योंकि उसने अदालतों को अपना निर्णय लागू कराने के लिए न तो पर्याप्त अधिकार दिया और न ही पर्याप्त साधन।

2.3.2 बंगाल न्यायालय अधिनियम 1781 ई0

रेग्यूलेटिंग एक्ट 1773 में कलकत्ता स्थित सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लेख न होने कारण सर्वोच्च न्यायालय एवं सपरिषद गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय न्यायालय के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया था। इस दोष को दूर करने के लिए ब्रिटिश संसद ने 1781 में एक अधिनियम पारित किया जिसे बंगाल न्यायालय अधिनियम 1781 के नाम से जाना जाता है।

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना तथा सर्वोच्च न्यायालय का अन्य प्रांतीय न्यायालयों एवं सपरिषद गवर्नर जनरल के साथ संबंध निर्धारित करना था।

इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्न थीं –

(i) 1773 के अधिनियम के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय कंपनी के कर्मचारियों के सरकारी कार्यों के संबंध में मुकदमा सुनना अपना अधिकार समझती थी। 1781 के अधिनियम द्वारा यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय से वापस ले लिया गया।

(ii) निम्न न्यायालयों के न्यायिक अधिकारियों के न्याय संबंधी कार्यों पर से सर्वोच्च न्यायालय का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया।

(iii) भू–राजस्व संग्रह करने वाले राजस्व अधिकारियों पर से सर्वोच्च न्यायालय के नियंत्रण को समाप्त कर दिया गया।

(iv) सपरिषद् गवर्नर जनरल पर से सर्वोच्च न्यायालय के नियंत्रण को समाप्त कर दिया गया तथा यह स्पष्ट कर दिया गया कि सर्वोच्च न्यायालय सपरिषद गवर्नर जनरल के किसी आदेश या शासन संबंधी कार्य पर उस तक कोई रोक नहीं सकता जब तक कि ब्रिटिश जनता के हितों को उनसे कोई हानि न पहुँचे।

(v) कंपनी के न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार सपरिषद गवर्नर जनरल को दिया गया।

(vi) अधिनियम में कहा गया कि सर्वोच्च न्यायालय न्याय करते समय भारत की परम्पराओं, रीति–रिवाजों एवं धर्म को ध्यान में रखें तथा उसे मान दे, चाहे वे ब्रिटिश कानून की दृष्टि से उचित न हो।

(vii) अधिनियम में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया कि केवल कलकत्ता में रहने वाले सभी भारतीय एवं यूरोपियन ही सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होंगे तथा शेष स्थानों पर रहने वाले भरतीयों के मुकदमें सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को नहीं होगा।

(viii) इस अधिनियम द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि सर्वोच्च न्यायालय हिन्दुओं के मुकदमों की सुनवाई हिन्दू विधियों के अनुसार तथा मुसलमानों के मुकदमों की सुनवाई मुस्लिम विधि के अनुसार करें।

इस अधिनियम का परिणाम

इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि सर्वोच्च न्यायालय का प्रांतीय न्यायालय एवं सपरिषद गवर्नर जनरल के साथ चलने वाले विवादों का अंत हो गया तथा भारतीयों को ब्रिटिश विधि के विरूद्ध जो शिकायत थी उसका भी निवारण हो गया। 1781 के अधिनियम द्वारा न्याय व्यवस्था का केंद्रीयकरण किया गया। इससे पुरानी न्याय प्रणाली की सरलता समाप्त हो गई तथा पश्चिमी सिद्धांतो के प्रभाव से जटिलताएँ बढ़ गई। अब न्याय एवं कानून एक ऐसी विशेष व्यवस्था बन गया जिसका संचालन केवल वकील ही कर सकते थें।

2.3.3 लार्ड कॉर्नवालिस का प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

1784 ई0 में ब्रिटिश संसद ने पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया जिसका उद्देश्य म्ब की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना था। पिट्स इंडिया एक्ट 1784 के अंतर्गत रेखांकित कार्यों को संपन्न करने के लिए सितम्बर 1786 में लॉर्ड कार्नवालिस को गवर्नर जनरल तथा ब्रिटिश सेना का मुख्य सेनापति बनाकर भारत भेजा गया। उसका शासनकाल (1786–93 ई) उसके द्वारा किये गये प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार आधुनिक भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आते ही उसने सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था की स्थापना के लिए गंभीर प्रयास आरम्भ कर दिया।

लोकसेवाओं का गठन – कार्नवालिस ने यूरोपीय पद्धति पर भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का संगठन किया तथा प्रशासनिक व्यवस्था में यूरोपीयों को प्रधानता दिया। उसने वारेन हेस्टिंग्स द्वारा स्थापित लोक सेवा को तर्कसंगत एवं नवीन स्वरूप प्रदान किया। उसे भारत में लोक सेवा का जनक कहा जाता है। उसने लोक सेवा की

शुरूआत की जो निचले लोकसेवा से पृथक थी। उच्च लोक सेवा का गठन कंपनी कानून द्वारा जबकि निचले स्तर की लोकसेवा का गठन अलग से किया गया।

कॉर्नवालिस का मानना था कि भारत में ब्रिटिश पद्धति पर आधारित प्रशासन केवल अंग्रेजों द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है न कि भारतीयों द्वारा। साथ ही उसका यह भी मानना था भारतीय सार्वजनिक सेवाओं के लिए अयोग्य है। उसे भारतीयों की निष्ठा एवं योग्यता पर विश्वास नहीं था। वह लोक सेवा के उच्च पदों को ब्रिटिश लोगों के लिए आरक्षित करने का समर्थक था। उसने यह नियम बना दिया कि जिस पद का वेतन 500 पौंड वार्षिक से अधिक हो, उस पर केवल अंग्रेजों की ही नियुक्ति हो। इस प्रकार उसने उच्च पदों पर भारतीयों के लिए नियुक्ति का द्वार बंद कर दिया। उसने सभी उच्च पदों पर अंग्रेजों को नियुक्ति किया। भारतीयों को केवल वही पद पर दिये जाते थे, जिनके लिए अंग्रेज उपलब्ध न हो। सेना में जमादार, सूबेदार तथा प्रशासनिक सेवा में मुंसिफ, सदर–अमीन या डिप्टी कलेक्टर से ऊँचा पद भारतीयों के लिए उपलब्ध नहीं था।

उसने कम्पनी शासन में व्याप्त रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कम्पनी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की। उसने अंग्रेजों के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए उन्हें अधिक वेतन दिया किन्तु यह मानदंड भारतीयों के लिए प्रयोग नहीं किया गया। उसने कलेक्टरों का वेतन ` 1200 से बढ़ाकर ` 1500 कर दिया।

कॉर्नवालिस का प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधार

1787 ई में कॉर्नवालिस ने जिले की समस्त प्रशासनिक एवं राजस्व संबंधी शक्तियों को कलेक्टर के हाथों में केंद्रित करने के साथ ही उसे दीवानी न्यायाधीश का अधिकार प्रदान कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने उसे सीमित मामलों में फौजदारी न्याय करने का अधिकार दिया। 1793 में कॉनवालिस संहिता तैयार हो गया। यह संहिता शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत पर आधारित था। उसने न्यायपालिका एवं कार्यपालिका को अलग करने का कार्य किया। उसका मानना था कि इससे नागरिकों को निष्पक्ष न्याय मिलेगा। इसके लिए उसने कलेक्टरों के न्यायिक अधिकारों को समाप्त कर दिया। अब कलेक्टरों के पास केवल प्रशासनिक शक्तियाँ ही रह गई। लगान संबंधी न्याय करने का अधिकार लगान बोर्ड को दे दिया गया। कॉर्नवालिस ने भारत में सर्वप्रथम कानून की विशिष्टता को लागू किया। दीवानी न्यायालयों के संबंध में सुधार

(1) राजस्व न्यायालयों की समाप्ति

1793 ई में कॉर्नवालिस ने स्थायी बंदोबस्त लागू किया। इसके साथ ही भू–राजस्व वसूलने के कार्य को न्याय से अलग कर दिया गया। कॉर्नवालिस की 1793 की योजना द्वारा सभी राजस्व न्यायालय को समाप्त कर दिया

गया। कलेक्टरों से न्यायिक अधिकार वापस ले लिये तथा संपूर्ण दीवानी न्यायालयों का श्रेणीकरण कर दिया गया।

(2) **लगान एवं धन संबंधी मुकदमों के अंतर की समाप्ति**

कॉर्नवालिस ने लगान और धन संबंधी मुकदमों के अंतर को समाप्त कर दिया। उसने दीवानी न्यायालयों को यह अधिकार दिया कि वे दोनों प्रकार के मुकदमों की सुनवाई कर सकते हैं।

दीवानी न्यायालयों की श्रेणियाँ

(1) **मुंसिक न्यायालय** – यह दीवानी न्याय के क्षेत्र में सबसे निम्न न्यायालय था। मुंसिफ न्यायालयों में मुंसिफ के पद पर भारतीय को ही नियुक्त किया जाता था। वह 50 रूपये तक के मामलों की सुनवाई करता था। इसके निर्णयों के विरूद्ध रजिस्ट्रार न्यायालय में अपील की जाती थी।

(2) **रजिस्ट्रार न्यायालय** – मुन्सिफ न्यायालयों के ऊपर रजिस्ट्रार का न्यायालय स्थापित किया गया। रजिस्ट्रार न्यायालय में यूरोपीय न्यायाधीश नियुक्त होता था। यह न्यायालय 200 रूपये तक के मुकदमों की सुनवाई करता था। इसके निर्णयों के विरूद्ध जिला न्यायालय में अपील की जाती थी। ऐसे न्यायालयों को कमिश्नर क अधीन रखा गया।

(3) **जिला दीवानी न्यायालय** – रजिस्ट्रार न्यायालय के ऊपर जिला न्यायालय स्थापित किया गया। जिला न्यायालय का अध्यक्ष जिला जज होता था, जो यूरोपीय होता था। जिला न्यायाधीश सभी दीवानी मामलों की सुनवाई कर सकते थें। उनकी सहायता के लिए भारतीय विधिवेत्ता नियुक्त होते थें। यह न्यायालय 500 रूपये तक के मुकदमों की सुनवाई करता था। इस न्यायालय में रजिस्ट्रार न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील की जाती थी। इसे फौजदारी व लगान संबंधी मामलों की सुनवाई का अधिकार था किन्तु यूरोपियनों के दीवानी मामलों की सुनवाई का अधिकार नहीं था।

(4) **प्रांतीय दीवानी न्यायालय** – जिला अदालतों के ऊपर कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका एवं पटना में चार प्रांतीय अदालतें स्थापित की गई। इस न्यायालय में जिला न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील की जाती थी। इसमें तीन अंग्रेज न्यायाधीश कार्य करते थें तथा उनकी सहायता के भारतीय विधिवेत्ता नियुक्त होते थे। इन्हें जिला न्यायालयों के कार्य का निरीक्षण भी करना होता था तथा उनकी सिफारिशों पर सदर दीवानी न्यायालय किसी जिला न्यायाधीश को निलंबित कर सकती थी। कुछ मामलों में यह प्रथम अधिकार क्षेत्र के रूप में भी कार्य करते थें। इसे 1000 रूपये तक के मामलों की सुनवाई करने का अधिकार था।

(5) **सदर दीवानी न्यायालय** – प्रांतीय न्यायालय के ऊपर कलकत्ता में सदर दीवानी न्यायालय स्थापित थी। यह प्रांतीय न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील की सुनवाई करता था। इस न्यायालय में सपरिषद गवर्नर जनरल न्यायिक कार्यों को संपादित करता था। इस न्यायालय में 1000 रूपये से अधिक तथा 5000 रूपये से कम के मामलों की सुनवाई करने का अधिकार था। इसे भारत स्थित अपील की सर्वोच्च अदालत कहा जा सकता है।

(6) **सपरिषद सम्राट का न्यायालय (प्रिवी कौंसिल)** – लंदन स्थिति इस न्यायालय में सपरिषद ब्रिटिश सम्राट न्याय करते थे। इस न्यायालय में सदर दीवानी न्यायालयों के विरूद्ध अपील की जाती थी। यह न्यायालय 5000 रूपये से अधिक के मामलों की सुनवाई करती थी। वह सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय थी। इसके निर्णयों के विरूद्ध अपील नहीं की जा सकती थी।

फौजदारी न्यायालयों के संबंध में सुधार –

(1) **जिला न्यायालयों की समाप्ति** – फौजदारी न्यायालय नकल के अधीन ही चल रहा था एवं मुर्शिदाबाद स्थित सदर निजामत यायालय का अध्यक्ष रजा खाँ था। निचली फौजदारी अदालत (जिला) में भारतीय न्यायाधीश ही निर्णय करते थें। कॉर्नवालिस ने भारतीय न्यायाधीशों के नेतृत्व वाली जिला फौजदारी न्यायालयों को समाप्त कर दिया तथा उसके स्थान पर 4 भ्रमणशील न्यायालयों (ब्पतबनपज ब्वनतज) की स्थापना की।

(2) **मुस्लिम न्यायाधीशों के मागदर्शन के लिए नीति निर्माण** – 1790 में उसने मुस्लिम न्यायिक अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिए एक नियम बनाया, जिसके अनुसार हत्या के मामलों में हत्या के अस्त्र या तरीके के स्थान पर हत्यारें की भावना पर अधिक बल दिया गया। मृतक के अभिभावकों की इच्छा से अपराधी को क्षमा करना या रक्त का मूल्य निर्धारित करना बंद कर दिया गया। यह निश्चय किया गया कि साक्षी के धर्म विशेष का मामले पर कोई प्रभाव नहीं होगा। मुस्लिम कानून के अनुसार मुसलमानों की हत्या के मामले में अन्य धर्म वाले साक्षी नहीं हो सकते थें। मामले की गंभीरता के अनुसार अंग विच्छेदन के स्थान पर कैद की सजा की आज्ञा दी गयी।

फौजदारी न्यायालयों की श्रेणियाँ –

(1) **भ्रमणशील न्यायालय** – भारतीय न्यायाधीशों के नेतृत्व वाली जिला फौजदारी अदालतों को समाप्त कर कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका व पटना में भ्रमणशील न्यायालयों की स्थापना की गई। इनके लिए वर्ष में दो बार आंतरिक प्रदेशों का दौरा करना अनिवार्य था। ये न्यायालयें घूम–घूमकर नगर दंडनायकों द्वारा निर्देशित मामलों की सुनवाई करते थे। इस न्यायालय के न्यायाधीश अंग्रेज होते थे जो काजी एवं मुफ्तियों की सहायता से मामलों का निर्णय

करते थे। यह न्यायालय दीवानी एवं फौजदारी दोनों मुकदमों की सुनवाई करती थी। सदर निजामत न्यायालय की स्वीकृति से यह न्यायालय मृत्युदंड भी दे सकती थी एवं अभियुक्त की संपत्ति भी जब्त कर सकती थी।

(2) **सदर निजामत न्यायालय** – मुहम्मद रजा खाँ के पद को समाप्त कर कलकत्ता में पुनः सदर निजामत न्यायालय की स्थापना की गई। भारत में यह फौजदारी मामलों में उच्चतम न्यायालय का कार्य करती थी। इस न्यायालय में सपरिषद गवर्नर जनरल न्याय करता था। गवर्नर जनरल को सजा में परिवर्तन करने व माफ करने का अधिकार था।

(3) **सपरिषद सम्राट की न्यायालय (प्रिवी कौंसिल)** – यह संपूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय थी। इस न्यायालय में सदर निजामत न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध अपील की जा सकती थी। इस न्यायालय में सपरिषद ब्रिटिश सम्राट न्याय करते थे। सजा माफी के संबंध में अंतिम प्रार्थना इस न्यायालय में की जा सकती थी।

कॉर्नवालिस संहिता –

कॉर्नवालिस ने अपने न्यायिक सुधारों को 1793 तक अंतिम रूप देकर उन्हें कार्यान्वित करने के लिए एक संहिता का निर्माण किया गया जिसे कार्नवालिस संहिता कहा गया। यह सुधार शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत पर आधारित था। इसके अंतर्गत न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक कर दिया गया। कॉर्नवालिस से पूर्व कलेक्टर को ही प्रशासनिक एवं न्यायिक दोनों कार्य करना पड़ता था। कॉर्नवालिस का मानना था कि शासन तथा न्याय का कार्य एक ही व्यक्ति को नहीं करना चाहिए। अतः उसने कलेक्टरों से न्यायिक अधिकार लेकर प्रत्येक जिला में अंग्रेज न्यायाधीश नियुक्त किये गये। इस संहिता द्वारा निम्न न्यायिक सुधार किया गया –

(1) **वकालत का नियमतीकरण** – कॉर्नवालिस ने वकालत के व्यवसाय को भी नियमित करने का प्रयत्न किया। वकीलों को लाइसेंस देने की व्यवस्था की गई। लाइसेंस प्राप्त वकील ही वकालत कर सकता था। वकीलों की फीस भी निश्चित कर दी गई। यदि कोई वकील निर्धारित शुल्क से अधिक फीस लेता था तो उन्हें अयोग्य घोषित किया जा सकता था।

(2) **नियमों का प्रकाशन** – कॉर्नवालिस से पहले नियमों को प्रकाशित करने की व्यवस्था नहीं थी जिसके परिणामस्वरूप यह निश्चित करना कठिन हो जाता था कि देश के वास्तविक कानून क्या है। उसने नियम बनाया गया कि भविष्य में जो भी आज्ञाएँ और नियमादि किसी भी वर्ष निकले, वे सभी प्रकाशित किये जाए तथा उन्हें एक ही जिल्द में इकटठा कर दिया जाय, जिससे जानकारी प्राप्त करने तथा सूचना मिलने में सुविधा हो।

(3) **सरकारी कर्मचारियों पर मुकदमा** – इस संहिता में यह व्यवस्था किया गया कि यदि कम्पनी के अधिकारी गैर कानूनी कार्य करते हैं या अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाहन नहीं करते हैं तो उन पर मुकदमा चलाया जा सकता था। ऐसे मामलों की जाँच केवल वे अंग्रेज न्यायाधीश की कर सकते थें जो सरकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक लाभ न प्राप्त करते हो। इससे पूर्व सरकारी कर्मचारियों पर मुकदमा चलाने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

न्यायिक क्षेत्र में उसके द्वारा किये गये सुधारों के कारण ही उसे आधुनिक भारतीय न्यायिक व्यवस्था का जनक कहा जाता है।

मूल्यांकन – कॉर्नवालिस कोड का तात्कालिक परिणाम अलाभदायक सिद्ध हुआ।

(1) नये कानून इतने जटिल थे कि इन्हें साधारण लोग समझ नहीं पाते थें।

(2) न्याय प्राप्त करने में अधिक समय लगता था तथा यह अत्यधिक महँगा था।

(3) वकीलों की चालबाजियों के कारण मुकदमों की संख्या बढ़ गई।

(4) झूठे गवाह बनाये जाने लगे।

(5) न्यायालय का काम बढ़ने से निर्णय देने में अधिक वक्त लगने लगा।

(6) यूरोपीय न्यायाधीशों को भारतीय रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं का ज्ञान नहीं था।

(7) जेलों में अपराधियों की संख्या काफी बढ़ गई।

कॉर्नवालिस संहिता के दोषों के कारण उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए लोगों को उपलब्ध न्यायिक सुविधाओं में कमी कर दी गई। 1793 में मुकदमा दायर करते समय धन जमा करने की प्रणाली पुनः आरम्भ कर की गई। 1797 में स्टाम्प पेपर का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया। इतना सब करने के बाद भी मुकदमों की संख्या बढ़ती चली गई। कॉर्नवालिस के काल में ही करीब 60,000 मुकदमें विभिन्न न्यायालयों में लंबित थें। अतः 1807 ई में जमींदारों को पुनः न्यायिक अधिकार दे दिया गया।

लॉर्ड वेलेजली (1798–1805 ई) का कार्य –

1800 ई में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली ने कम्पनी के लोकसेवकों को प्रशिक्षण देने के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। वेलेजली के कार्य को कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स का समर्थन नहीं मिला। अतः उसे अपनी योजना का त्याग करना पड़ा। 1806 ई में इंग्लैण्ड के हेलसबरी कॉलेज में कम्पनी के लोकसेवकों को प्रशिक्षण देने के लिए ईस्ट इंडिया कॉलेज की स्थापना की गई। कम्पनी के अधिकारियों के लिए 3 वर्षीय प्रशिक्षण का प्रारम्भ किया गया,

जिसमें भारतीय भाषा के अध्ययन को प्राथमिकता दी गई। हेलसबरी में कम्पनी के जिन अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता था। ये सभी अधिकारी कम्पनी के निर्देशक मंडल द्वारा नामित किये जाते थें। गवर्नर जनरल वेलेजली एवं उसकी परिषद ने सर्वोच्च न्यायालय के रूप में कार्य करना उचित नहीं समझा तथा सदर दीवानी एवं फौजदारी न्यायालय में न्यायिक कार्यों को संपादित करने के लिए स्वतंत्र रूप से न्यायाधीशों को नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। सपरिषद गवर्नर जनरल के बदले 3 न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई जिसे बाद में बढ़ाकर पाँच कर दिया गया।

1833 के चार्टर अधिनियम के प्रावधान –

1833 के चार्टर अधिनियम में यह प्रावधान था कि भारतीयों को कम्पनी के अंतर्गत रोजगार, पद एवं अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। भारतीयों के विरूद्ध धर्म, जाति, वंश, जाति और रंग आदि के आधार पर भेदभाव समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के लोकसेवकों के चयन के आधार के रूप में खुली प्रतियोगिता की शुरूआत करने का प्रयास किया गया।

कम्पनी के निर्देशक मंडल के विरोध करने के कारण चार्टर अधिनियम के इस प्रावधान को लम्बे समय तक लागू नहीं किया जा सका।

2.3.4 लॉर्ड हेस्टिंग्स के न्यायिक सुधार

(1) 1813 ई0 में लॉर्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनाकर भारत आया। उसने भारत में प्रचलित प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था में संशोधन किया।

(2) 1814 में प्रत्येक थाने में एक मुंसिफ की नियुक्ति की गई जो 64 रूपये तक के मामले में निपटा सकता था।

(3) प्रत्येक जिले में एक सदर अमीन की नियुक्ति की गई जो 150 रूपये तक के मामलों की सुनवाई कर सकता था। सदर अमीन के निर्णय के विरूद्ध अपील दीवानी अदालत में तथा यहाँ से अपील प्रांतीय न्यायालय में करने का प्रावधान किया गया।

(4) जो मुकदमे सीधे जिला दीवानी अदालत में दायर होते थें, उनकी अपील सदर दीवानी अदालत में की जा सकती थी।

(5) न्यायालयों पर से कार्य का दबाव कम करने के लिए कुछ मामलों में अपील करने पर प्रतिबंध लगा दिया तथा कुछ मामलों में केवल एक बार अपील करने की अनुमति/सुविधा दी गई।

(6) 1821 ई में मुंसिफ को 150 रूपये तक के मामले तथा सदर अमीन को 500 रूपये तक के मामले सुनने का अधिकार दिया गया। यहाँ से अपील सीधे प्रांतीय न्यायालय में की जा सकती थी।

(7) 500 रूपये से अधिक मामले जिला दीवानी न्यायालय में तथा 5000 रूपये से ऊपर के मामले सीधे प्रांतीय न्यायालय में दायर किये जा सकते थे।

(8) सदर दीवानी अदालत कोई भी मुकदमा जिला दीवानी अदालत से प्रांतीय अपील न्यायालय में स्थानांतरित कर सकती थी।

(9) लॉर्ड हेस्टिंग्स ने कलेक्टर व मजिस्ट्रेट के पद को पुनः मिला दिया जिसे लॉर्ड कॉर्नवालिस ने पृथक कर दिया था।

यद्यपि बोर्ड ऑफ कंट्रोल ने भारत में पुनः प्राचीन संस्थाओं को स्थापित करने तथा पंचायतों को पुनर्जीवित करने की अनुशंसा की थी, किंतु इन अनुशंसाओं को कार्यान्वित नहीं किया गया।

2.3.5 लॉर्ड विलियम बैंटिक (1828–1836 ई) के न्यायिक सुधार

विलियम बैंटिक के समय तक न्यायिक व्यवस्था में अनेक दोष उत्पन्न हो गये थें। न्याय प्रशासन का मुख्यालय कलकत्ता में था। विभिन्न भागों से कलकत्ता की दूरी अधिक होने के कारण न्याय प्रशासन का संचालन कुशलतापूर्वक नहीं हो पा रहा था। अपील एवं भ्रमणकारी चार अदालतों की व्यवस्था खर्चीली एवं अलाभकारी साबित हो रही था। न्यायालयों में मुकदमों की संख्या काफी बढ़ गयी थी तथा उस पर कार्य का बोझ काफी ज्यादा था, जिससे शीघ्र न्याय प्रदान करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था।

कॉर्नवालिस ने भारतीयों को उच्च न्यायिक पदों व उत्तरदायित्वों से अलग रखा था, जिससे भारतीयों में काफी रोष था। न्यायालय की भाषा फारसी थी तथा मुकदमा दर्ज कराने वाले को अपनी भाषा में बात करने का अधिकार नहीं था। विलियम बैंटिक ने इन दोषों को दूर करने का प्रयास किया।

बैंटिक ने भ्रमणकारी न्यायालय की व्यवस्था को समाप्त कर दिया। दंड विधान की कठोरता को कम कर दिया। अपराधियों को कोड़े लगाने की प्रथा समाप्त कर दी गई। यह सुधार बैंथम की इस अवधारणा पर आधारित थी कि अपराधी को सजा सुधारने के लिए दी जानी चाहिए न कि बदले के लिए। उसने कमिश्नरों के फौजदारी अधिकार जिला न्यायाधीश को प्रदान किया तथा जिला न्यायाधीश से मजिस्ट्रेट का अधिकार लेकर कलेक्टर को दे दिया गया। मजिस्ट्रेट को दो वर्ष की सश्रम कारावास की सजा देने का अधिकार दिया गया। इसके विरूद्ध न्यायालय में अपील की जा सकती थी।

कलेक्टर को लगान संबंधी मामले निपटाने का अधिकार दिया गया। इसके विरूद्ध अपील सिविल न्यायालयों में की जा सकती थी। अपील का मुकदमा स्वयं कलेक्टर के विरूद्ध होता था।

1831 में विलियम बैंटिक ने जिला एवं सत्र न्यायालय की स्थापना की।

उसने इसी वर्ष से भरतीयों को सदर अमीन के पद पर नियुक्त करने की व्यवस्था की, जो जिला व शहरी न्यायालय के विरूद्ध अपील सुन सकते थें। न्यायिक क्षेत्र में भारतीयों को दिया जाने वाला सदर अमीन का पद सर्वोच्च था किन्तु यूरोपियों व अमेरिकन से संबंधित मुकदमे मुंसिफ या सदर अमीन की अदालत में नहीं सुना जा सकता था।

पश्चिमी क्षेत्रों में कम्पनी का विस्तार होने तथा इन क्षेत्रों के कलकत्ता से अत्यधिक दूर स्थित होने के कारण आगरा को पृथक प्रांत बनाया गया तथा आगरा में ही अपीलीय न्यायालय की स्थापना की गई। 1 जनवरी 1832 ई में इलाहाबाद में सदर दीवानी एवं सदर निजामत न्यायालय की स्थापना की गई, जिससे दिल्ली व उत्तर–पश्चिमी प्रांत में आसानी से न्यायिक प्रशासन का संचालन हो सके। इस न्यायालय का अधिकार क्षेत्र बनारस प्रांत तथा मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर और बुंदेलखण्ड के जिलों तक सीमित रखा गया।

अदालतों में फारसी भाषा के स्थान पर प्रांतीय भाषाओं का प्रचलन होने लगा। बंगाल में जूरी प्रणाली आरम्भ की गई ताकि यूरोपीय जजों को भारतीयों की सहायता उपलब्ध हो सके। 1832 के नियम में यह व्यवस्था की गई कि यूरोपीय जज किसी मामले को प्रतिष्ठित भारतीयों की पंचायत के पास भेज सकेंगे और पंचायत मामले की जाँच कर अपनी रिपोर्ट जजों को पास भेजेगी। जज अपने लिए भारतीय सहायक नियुक्त कर सकते थें, जो प्रत्येक मामले में अपनी अलग राय दे सकते थें।

लॉर्ड मैकाले का न्यायिक व्यवस्था में योगदान –

लॉर्ड मैकाले एक विधि विशेषज्ञ था। 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में एक विधि सदस्य की नियुक्त ख्का प्रावधान किया गया। लॉर्ड मैकाले को सर्वप्रथम विधि सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया था। न्यायिक सुधार के क्षेत्र में सुधार कार्यक्रम को लागू करने में लॉर्ड मैकाले का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। 1833 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट कहा गया था कि विधि प्रणाली के दोष समाप्त किये जाने चाहिए। सुधार लाना इसलिए भी आवश्यक हो गया था क्योंकि इस एक्ट द्वारा ब्रिटिश नागरिकों को भारत में संपत्ति का क्रय–विक्रय करने का अधिकार दे दिया गया था, जिसके लिए भारत में कोई कानूनी व्यवस्था नहीं थी। इस समस्या का एक मात्र समाधान था – विधि का संहिताकरण करना। इस कार्य को लॉर्ड मैकाले ने कुशलतापूर्वक संपन्न किया। संहिताकरण के कार्य में मैकाले को जेम्स प्रिंसेप आदि अनेक प्रशासकों के विरोध का सामना करना पड़ा। बहुमत मिलेट के विधि संग्रह के पक्ष में था किन्तु मैकाले ने अत्यंत ही चतुराई के साथ इस विवाद को विधि आयोग पर छोड़ दिया। बैंटिक ने मैकाले को ही विधि आयोग का अध्यक्ष बनाया। मैकाले की न्यायिक क्षेत्र में सबसे बड़ी सफलता उसकी नई दंड संहिता थी। इसके अंतर्गत किसी न्यायालय के फैसले के विरूद्ध सदर

अदालत के स्थान पर सीधे सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने का यूरोपियों को विशेषाधिकार दिया गया। ऑकलैंड (1837–1842) ने मैकाले की सलाह पर यूरोपीय लोगों को भी सदर न्यायालय के क्षेत्राधिकार में ला दिया, जिसका भारत में रहने वाले अंग्रेजों व यूरोपियों ने विरोध किया तथा उसे काले कानून की संज्ञा दी।

2.3.6 विलियम बैंटिक के बाद न्यायिक सुधार

लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल में 1853 के चार्टर एक्ट के समय विधि संहिता का प्रश्न पुनः उठाया गया और दूसरा विधि आयोग बनाया गया। 1859 से 1861 के बीच दंडविधि, सिविल कार्यविधि, एवं दंड प्रक्रिया पारित किया गया। इन सुधारों ने संपूर्ण भरत के लिए एक सुव्यवस्थित विधि प्रणाली की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ा बहुत अंतर बना रहा। दूसरी ओर यूरोपीय अधिकारियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए न्यायिक संगठन में निरंतर थोड़ा–बहुत परिवर्तन लाया जाता रहा, जिससे भारतीय न्यायिक व्यवस्था भी ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था के अनुकूल होती चली गई।

1861 में भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम द्वारा पुराने सर्वोच्च न्यायालय और सदर न्यायालयों को समाप्त कर उसके स्थान पर कलकत्ता, मद्रास एवं बम्बई में उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई।

उच्च न्यायालयों की स्थापना – 1866 में आगरा में भी एक उच्च न्यायालय की स्थापना की गई, जिसे 1875 में इलाहाबाद स्थानांतरित कर दिया गया। बाद में लाहौर व पटना में भी उच्च न्यायालय स्थापित किये गये।

संघीय न्यायालय की स्थापना –

भारतीय न्यायिक व्यवस्था में अंतिम महत्वपूर्ण सुधार 1935 ई में किया गया। भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधान के अंतर्गत भारत में एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। इसने सर्वोच्च न्यायालय का स्थान ग्रहण कर लिया। इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार संपूर्ण भारत तक विस्तार किया गया। कहने के लिए यह भारत का सर्वोच्च न्यायालय था किन्तु वास्तविक अर्थों में यह सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के विरूद्ध लंदन स्थित प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में अपील की जा सकती थी।

निष्कर्ष – इस प्रकार अंग्रेजों ने संपूर्ण देश में एक समान न्यायिक प्रणाली की स्थापना की। विधियों का संहिताकरण कर उसे राज्य के सभी नागरिकों पर लागू किया गया। न्यायालयों का श्रेणीकरण किया गया। संपूर्ण देश में लोअर कोर्ट, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, हाईकोर्ट, सुप्रीम कोर्ट एवं प्रिवी कौंसिल की व्यवस्था की गई। देश में विधि की व्यवस्था लागू की गई। धर्म और जाति आधारित कानूनों को समाप्त कर धर्मनिरपेक्ष विधि का निर्माण किया गया। न्यायिक व्यवस्था को निष्पक्ष, व्यवस्थित एवं

धर्मनिरपेक्ष बनाने का यथासंभव प्रयास किया गया।

2.4 1857 की क्रांति के बाद प्रशासनिक परिवर्तनें की पृष्ठभूमि

1857 के विद्रोह से अंग्रेजों को इस बात का भलीभांति एहसास हो चुका था कि एक सुसंगठित विद्रोह कभी भी ब्रिटिश शासन के लिए चुनौती बन सकता है। इस विद्रोह में प्रशासन एवं आम जनता के मध्य संपर्क का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। साम्राज्यवादी सरकार को यह अनुभव हो गया कि शासन को जनसामान्य से संपर्क बनाये रखकर ही उसे प्रशासन से जोड़ा जा सकता है। इसके साथ ही उन्हें यह भी एहसास हुआ कि ब्रिटिश प्रशासन को भारतीयों की सभ्यता एवं रीति–रिवाजों, परम्पराओं से भलीभांति अवगत होना है तो उसके लिए जनता का सहयोग अपरिहार्य है। इससे प्रशासन को सुदृढ़ता मिलेगी तथा उसे 1857 जैसे घटनाओं को पुनः होने देने से रोकने में भी सहायता मिलेगी।

1857 के बाद भारत में उपनिवेशवाद का एक नया युग प्रारम्भ हुआ। सरकार का मुख्यतः उद्देश्य अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं सुरक्षित करना था, जिससे कि वह ब्रिटिश आर्थिक एवं वाणिज्यिक हितों की रक्षा कर सके। इसके लिए भारत के प्रशासनिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किया गया। 1857 की क्रांति का दमन होने के बाद ब्रिटिश संसद ने भारत पर से कम्पनी की सत्ता का अंत कर दिया तथा भारत पर शासन करने का अधिकार ब्रिटिश ताज को हस्तांरित कर दिया। 1 नवम्बर 1858 को इलाहाबाद में एक भव्य दरबार का आयोजन किया गया, जिसमें तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने ब्रिटेन की महारानी का घोषणापत्र पढ़ कर सुनाया, जिसमें यह कहा गया था कि ब्रिटिश अधिकारी भारतीय रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा भविष्य में विधि का निर्माण करते समय देश की रीति–रिवाजों, प्रथाओं एवं परम्पराओं का ध्यान रखा जाएगा। घोषणापत्र में सभी भारतीयों को बिना किसी भेदभाव और पक्षपात के योग्यतानुसार शासन के उच्च पदों पर नियुक्ति के संबंध में समान अवसर एवं अधिकार प्रदान करने का वचन दिया गया। इस प्रकार भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में भारतीयों की भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा भारत में लोकसेवाओं के विकासक्रम में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

लोक सेवा के संबंध में लॉर्ड लिटन का कार्य –

लॉर्ड लिटन 1876 से 1880 ई0 के मध्य भारत का वायसराय रहा। वह भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करने का पक्षधर नहीं था। उसने इस बात का प्रयत्न किया कि भारतीय लोक सेवा में नियुक्त न हो सके। उसने 1878–79 में भारतीयों के लिए पृथक सार्वजनिक सेवा की व्यवस्था की। उसके अनुसार सरकार को उच्च कुल के भारतीयों को ही वैधानिक जनपद सेवा में नियुक्तियाँ करनी चाहिए। ये नियुक्तियाँ प्रांतीय सरकारों की सिफारिश पर भारत सचिव की स्वीकृति से

की जाती थी तथा इनकी संख्या संभावित जनपद सेवा की नियुक्तियों का केवल 1/6 तक ही हो सकती थी। इस सेवा को वैधानिक सिविल सेवा का नाम दिया गया। यह योजना मात्र 8 वर्ष बाद ही समाप्त कर दी गई।

लॉर्ड लिटन ने भारतीयों को लोक सेवा के उच्च पदों पर नियुक्त होने से रोकने के लिए परीक्षा में शामिल होने वाले की अधिकतम आयु 21 से घटाकर 19 कर दिया। आयु सीमा कम कर देने से व्यावहारिक रूप में भारतीयों के लिए सेवाओं में प्रवेश पाने का अवसर प्रायः समाप्त हो गया। उम्र घटाने का निर्णय भारतीयों के लिए सिविल सेवा का द्वार बंद कर देने के समान था। इससे भारतीयों में व्यापक असंतोष फैला तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में पूरे देश में इसके विरोध में आंदोलन चलाया गया। व्यापक विरोध के कारण 1887 ई0 में सार्वजनिक सेवा आयोग की सिफारिश पर वैधानिक लोक सेवा बंद कर दिया गया।

2.5 लोकसेवा के संबंध में नियुक्त विभिन्न आयोग एवं उनकी सिफारिशें

नियंत्रण बोर्ड ने समिति की सभी सिफारिशों को स्वीकार कर उन्हें लागू कर दिया। सिविल सेवा का परीक्षा आयोजित करने के लिए 1855 में गठित ब्रिटिश सिविल सर्विस कमीशन को सौंपी गई।

1833 के अधिनियम द्वारा सिविल सेवा भर्ती की आधुनिक योग्यता प्रणाली लागू की गई। लंदन स्थित सिविल सर्विस कमीशन 1855 से प्रवेश परीक्षा आयोजित करने लगा। आयु सीमा 19 से 22 वर्ष रखी गई। हेलसबरी कॉलेज समाप्त करके सिविल सेवा संबंधी प्रशिक्षण ब्रिटिश विश्विद्यालयों में दिया जाने लगा। तत्पश्चात् अधिकारियों की परीविक्षा के आधार पर भारत में उनकी नियुक्ति होती थी। 1864 में पहली बार सत्येन्द्रनाथ टैगोर ने सिविल सेवा परीक्षा उत्तीर्ण की।

मैकाले समिति –

1833 के अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के उपाय सुझाने के लिए 1854 में मैकाले समिति (भारतीय लोकसेवा से संबंधित समिति) की नियुक्ति की गई। मैकाले समिति ने 1854 में अपनी रिपोर्ट दी तथा निम्न सिफारिशें की–

1. सिविल सेवा में भर्ती के लिए खुली प्रतियोगिता प्रणाली अपनायी जानी चाहिए।
2. इस परीक्षा में प्रवेश के लिए अभ्यर्थियों की आयु 18 से 23 वर्ष होनी चाहिए।
3. प्रतियोगी परीक्षा का आयोजन लंदन में किया जाना चाहिए।
4. अभ्यर्थियों को अंतिम तौर पर नियुक्त करने से पहले उन्हें कुछ समय के लिए परीविक्षा (प्रोबेशन) पर रखा जाना चाहिए।

5. हेलसबरी स्थित ईस्ट इंडिया कॉलेज को बंद किया जाना चाहिए।

6. प्रतियोगी परीक्षा का स्तर ऊँचा होना चाहिए तथा गहन ज्ञान से युक्त अभ्यर्थियों का चयन ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

1861 में इंडियन सिविल सर्विस एक्ट पारित किया गया, जिसके अंतर्गत उच्च सेवा के सदस्यों के कुछ महत्वपूर्ण पदों को आरक्षित रखने का प्रावधान किया गया था। 1862 से 1875 के मध्य मात्र 10 भारतीय ही प्ै की परीक्षा में सफल हो पाये थे। सिविल सर्विस एक्ट 1870 के माध्यम से 1861 के अधिनियम की त्रुटियों को दूर किया गया तथा इसमें भारतीयों के प्रवेश का प्रावधान किया गया किन्तु इसे तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिटन द्वारा 1879 में ही लागू किया जा सका।

एचीशन आयोग –

वर्ष 1886 में चार्ल्स एचीशन की अध्यक्षता में लोकसेवा आयोग का गठन किया गया ताकि लोकसेवा में उच्च पदों पर नियुक्त होने की भारतीयों की दावेदारी के प्रति पूरा न्याय किया जा सके। एचीशन आयोग ने 1887 में अपनी रिपोर्ट दी जिसमें निम्न सिफारिशें की गयी थी –

1. सिविल सेवाओं को दो स्तरीय वर्गीकरण (उच्च व निम्न सेवा) के स्थान पर त्रिस्तरीय वर्गीकरण (प्ुचमतपंस) केंद्रीय, प्रोविंशियल (प्रांतीय) और सबआर्डिनेट (अधीनस्थ) को अपनाया जाना चाहिए।

2. सिविल सेवा में प्रवेश के लिए अधिकतम आयु सीमा 23 वर्ष निर्धारित की जानी चाहिए।

3. भर्ती की सांविधिक सिविल सेवा प्रणाली का होना सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

4. प्रतियोगी परीक्षा इंग्लैण्ड व भारत में साथ–साथ आयोजित की जानी चाहिए।

5. इंपिरियल सेवा के अधीन कुछ प्रतिशत प्रांतीय सिविल सेवा के सदस्यों को पदोन्नत करके भरे जाने चाहिए।

आयोग की सभी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया व उसे लागू कर दिया गया। सांविधिक सिविल सेवा को 1887 में समाप्त कर दिया गया।

इसलिंग्टन आयोग –

1912 में इसलिंगटन की अध्यक्षता में भारत में लोक सेवा के संबंध में शाही आयोग की नियुक्ति की गई जिसने 1915 में अपनी रिपोर्ट दी। आयोग ने निम्न सिफारिशें की थी–

1. उच्च पदों पर भर्ती आंशिक रूप से इंग्लैंड व आंशिक रूप से भारत में की

जानी चाहिए। किन्तु इसने इंग्लैंड व भारत में एक साथ प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करने के विचार का समर्थन नहीं किया।

2. उच्चतर पदों का 25 प्रतिशत आंशिक रूप से प्रत्यक्ष भर्ती तथा आंशिक रूप से पदोन्नति के माध्यम से भारतीयों द्वारा भरा जाना चाहिए।

3. भारत सरकार के अधीन सेवाओं को प्रथम एंव द्वितीय श्रेणी में वर्गीकृत किया जाय।

4. लोक सेवकों के वेतन का निर्धारित करते समय कार्य क्षमता को बनाए रखने के सिद्धांत का अनुकरण किया जाना चाहिए।

5. सीधी भर्ती के लिए दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि होनी चाहिए। ष्ट के लिए यह अवधि तीन वर्ष की होनी चाहिए।

आयोग की रिपोर्ट 1917 में प्रकाशित की गई, जब इसकी सिफारिशें प्रथम विश्वयुद्ध एवं 1917 की अगस्त घोषणा के कारण अप्रासंगिक हो चुकी थी, अतः इन सिफारिशों पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

मांटेक्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट/प्रतिवेदन –

भारतीय संवैधानिक सुधारों के संबंध में 1918 में मांटेस्क्यू–चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन भारतीय लोक सेवा के विकासक्रम में मील का पत्थर साबित हुआ। इस प्रतिवेदन में निम्न सिफारिशें की गई थी –

1. उच्चतर पदों का 33 प्रतिशत भारत में भर्ती के माध्यम से भरा जाय तथा इस प्रतिशत को 1.5 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ाया जाय।

2. भारत और इंग्लैण्ड में एक ही समय पर प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जानी चाहिए।

3. ICS के सदस्यों को अच्छा वेतन, पेंशन, भत्ते तथा सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

1919 के भारत शासन अधिनियम द्वारा उपरोक्त सिफारिशों को लागू किया गया। 1919 के भारत सरकार अधिनियम के समय 9 अखिल भारतीय सेवाएँ अस्तित्व में थी जो निम्न थी –

(1) भारतीय सिविल सेवा (ICS)
(2) भारतीय पुलिस सेवा (IPS)
(3) भारतीय वन सेवा (IFS)
(4) भारतीय सिविल वेटनरी सेवा
(5) भारतीय वन अभियांत्रिकी सेवा
(6) भारतीय चिकित्सा सेवा
(7) भारतीय अभियांत्रिकी सेवा
(8) भारतीय शैक्षिक सेवा
(9) भारतीय कृषि सेवा

इस सूची में भारतीय कृषि सेवा के रूप में अंतिम अखिल भारतीय सेवा 1906–07 में जोड़ी गयी थी। इन सेवाओं के सदस्य भारत के राज्य सचिव द्वारा नियुक्त किये जाते थे तथा ये उन्हीं द्वारा नियंत्रित किये जाते थें। इसीलिए भारत सचिव को राज्य सेवा के सचिव के रूप में भी जाना जाता था। अखिल भारतीय सेवा का पहली बार उल्लेख 1918 में कार्य विभाजन समिति द्वारा प्रयुक्त किया गया था, जिसके अध्यक्ष एम.इ. गाटलेट थे। 1918 व 1919 के सुधारों के फलस्वरूप पै के लिए पहली प्रतियोगी परीक्षा ब्रिटिश लोक सेवा आयोग के पर्यवेक्षण के अधीन 1922 में भारत में इलाहाबाद में आयोजित की गयी थी।

इस समय तक उच्चतर लोक सेवा में प्रवेश के लिए पाँच पद्धतियाँ मौजूद थी जो निम्न थी –

1. इंग्लैण्ड में आयोजित खुली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा
2. भारत में आयोजित पृथक प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा
3. बार से नियुक्तियों द्वारा (न्यायिक पदों के संबंध में)
4. भारत में सामुदायिक एवं प्रांतीय प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए मनोनयन द्वारा
5. 1922 में भारत सरकार द्वारा निम्नतर सेवाओं पर भर्ती के लिए कर्मचारी चयन बोर्ड का गठन किया गया जो 1926 तक अस्तित्व में रहा। इसके बाद इसके कार्यों का नवगठित लोक सेवा आयोग द्वारा संपन्न किया जाने लगा।

ली आयोग –

1923 ई में लॉर्ड विस्काउंट ली की अध्यक्षता में भरत में उच्च लोक सेवाओं के संबंध में शाही आयोग की नियुक्ति की गई जिसने 1924 में अपनी रिपोर्ट दी। इसने निम्न सिफारिशें की –

1. ICS, IPS भारतीय चिकित्सा सेवा, भारतीय इंजीनियरिंग सेवा (सिंचाई शाखा) भारतीय वन सेवा (बम्बई प्रांत के अतिरिक्त) को बनाए रखा जाना चाहिए।
2. उपरोक्त सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति तथा उन पर नियंत्रण रखने का कार्य भारत के राज्य सचिव द्वारा किया जाना चाहिए।
3. अन्य अखिल भारतीय सेवाएँ – भारतीय कृषि सेवा, वेटनरी सेवा, शैक्षिक सेवा, इंजीनियरिंग सेवा (सड़क व भवन शाखा), वन सेवा (केवल बम्बई प्रांत में) के लिए भविष्य में कोई भर्ती नहीं की जानी चाहिए तथा भविष्य में इन सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति एवं नियंत्रण का कार्य प्रांतीय सरकारों द्वारा किया जाना चाहिए।

4. सेवाओं के भारतीयकरण के लिए उच्च पदों में से 20 प्रतिशत पद प्रांतीय लोकसेवा में पदोन्नति के आधार पर भरा जाना चाहिए।

5. सीधी भर्ती के समय अंग्रेजों व भारतीयों का अनुपात समान होना चाहिए ताकि लगभग 15 वर्ष में 50–50 प्रतिशत के अनुपात का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

6. ऐसे ब्रिटिश अधिकारियों को समानुपातिक पेंशन के आधार पर सेवानिवृत्ति की अनुमति दी जानी चाहिए, जो भारतीय मंत्रियों के अधीन कार्य करने के इच्छुक न हो।

7. 1919 के भारत सरकार अधिनियम के प्रावधान के अंतर्गत लोक सेवा का गठन किया जाना चाहिए।

लोकसेवा आयोग –

ली आयोग की सभी सिफारिशों को स्वीकार कर उन्हें लागू किया गया। 1926 में लोक सेवा आयोग का गठन कर उसे लोक सेवकों की भर्ती करने का कार्य सौंपा गया। लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष व चार अन्य सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान था। इस आयोग के पहले अध्यक्ष ब्रिटिश गृह लोक सेवा के वरिष्ठ सदस्य सर रॉस बार्कर थे।

2.6 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत लोक सेवा से संबंधित प्रावधान

1935 में भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के बाद 1937 में इस आयोग का स्थान संघीय लोक सेवा आयोग ने ले लिया। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने के बाद स्वतंत्र भारत में संघ लोक सेवा आयोग अस्तित्व में आया। इस अधिनियम में लोक सेवा के सदस्यों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों की रक्षा संबंधी प्रावधान किया गया था।

इस अधिनियम में संघीय लोक सेवा आयोग तथा प्रांतीय लोक सेवा आयोग की स्थापना के साथ–साथ दो या दो से अधिक प्रांतों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना करने का प्रावधान था।

2.7 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लोक सेवा की स्थिति

1947 में भारत ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र हुआ। इस समय केवल दो अखिल भारतीय सेवा ही अस्तित्व में थी –

1. भारतीय नागरिक (लोक) सेवा (ICS)
2. भारतीय पुलिस सेवा (IPS)

इसके अतिरिक्त केंद्रीय व राज्य स्तर की विभिन्न सेवाएँ भी अस्तित्व में थी।

केंद्रीय सेवाएँ 4 श्रेणियों में वर्गीकृत थी।

प्रथम श्रेणी द्वितीय श्रेणी

अधीनस्थ चतुर्थ श्रेणी की निम्नतर सेवाएँ।

2.8 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लोक सेवा के संबंध में परिवर्तन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान के लागू होने के बाद प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए जो निम्न हैं–

(1) केंद्र व राज्य दोनों स्तर पर संसदीय शासन प्रणाली की सरकार स्थापित हुई। इसमें कार्यपालिका विधायिका से संबंधित थी। कार्यपालिका को प्राथमिकता देते हुए इसे विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया।

(2) केंद्र व राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन के साथ संघीय शासन प्रणाली की शुरूआत हुई किंतु केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया।

(3) राजनीतिक कार्यपालिका का उच्चतर लोक सेवकों पर नियंत्रण बरकरार रखा गया तथा लोक सेवकों को राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन माना गया।

(4) केंद्र व राज्य दोनों स्तरों पर कल्याण व विकास से संबंधित अनेक विभागों एवं सेवाओं का गठन किया गया।

(5) लोकसेवकों की भूमिका में व्यापक परिवर्तन लाया गया। उन्हें सामाजिक–आर्थिक विकास प्रक्रिया में बदलाव लाने वाले अभिकर्ता का दायित्व सौंपा गया।

(6) राष्ट्रीय क्रांति व जिला स्तर पर नियोजन के माध्यम से प्रशासन में कल्याण एवं विकास सम्बन्धी पक्षों को शामिल किया गया।

(7) सबसे निचले स्तर पर प्रजातंत्र को मजबूती प्रदान करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था को प्रारम्भ किया गया।

(8) सलाहकार समितियों, दबाव समूह और अन्य माध्यमों से सभी स्तरों पर प्रशासन में लोगों की भगीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

2.8.1 भारतीय संविधान में लोक सेवा से संबंधित प्रावधान

भारतीय संविधान के भाग 14 के अंतर्गत अध्याय 1 एवं 2 में अनुच्छेद 308 से 323 में संघ एवं राज्यों के अधीन सेवाएँ से संबंधित प्रावधान का वर्णन है।

अध्याय 1 – सेवाएँ (अनुच्छेद 308–314)

अनुच्छेद 308 – निर्वचन

अनुच्छेद 309 – संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तें

अनुच्छेद 310 – संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की पदावधि।

अनुच्छेद 311 – संघ या राज्य के अधीन सिविल हैसियत से नियोजित व्यक्तियों को पदच्युत किया जाना, पद से हटाया जाना या पंक्ति में अवनत किया जाना।

अनुच्छेद 312 – अखिल भारतीय सेवाएँ।

अनुच्छेद 313 – संक्रमणकालीन उपबंध।

अध्याय 2 – संघ और राज्यों के अधीन सेवाएँ (अनुच्छेद 315–323)

अनुच्छेद 325 – संघ और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग।

अनुच्छेद 316 – सदस्यों की नियुक्ति और पदावधि।

अनुच्छेद 317 – लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का हटया जाना और निलंबित किया जाना।

अनुच्छेद 318 – आयोग के सदस्यों और कर्मचारियों की सेवा की शर्तों के बारे विनियम बनाने की शक्ति।

अनुच्छेद 319 – आयोग के सदस्यों द्वारा ऐसे सदस्य न रहने पर पद धारण के संबंध में प्रतिषेध।

अनुच्छेद 320 – लोकसेवा आयोग के कृत्य।

अनुच्छेद 321 – लोकसेवा आयोग के कृत्यों का विस्तार करने की शक्ति।

अनुच्छेद 322 – लोकसेवा आयोगों के व्यय।

अनुच्छेद 323 – लोक सेवा अयोगों के प्रतिवेदन।

भाग 14 (क) अधिकरण (अनुच्छेद 323क – 323 ख)

अनुच्छेद 323 (क) प्रशासनिक अधिकरण।

अनुच्छेद 323 (ख) अन्य विषयों के लिए अधिकरण

2.8.2 संघ लोक सेवा आयोग

संघ लोक सेवा आयोग भारतीय संविधान द्वारा स्थापित एक संवैधानिक निकाय है, जो भारत सरकार के लोकसेवा के पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करती है। संविधान के अनुच्छेद 315–323 में एक संघीय लोक सेवा आयोग और राज्यों के लिए राज्य लोक सेवा आयोग के गठन का प्रावधान है।

सदस्य –आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं। कम से आधे सदस्य किसी लोक सेवा के सदस्य (कार्यरत व अवकाश प्राप्त) होते हैं जिन्हें न्यूनतम 10 वर्षों का अनुभव प्राप्त हो। इनका कार्यकाल 6 वर्षों का या 65 वर्ष की उम्र, जो भी पहले आए, तक होता है। ये कभी भी अपना इस्तीफा राष्ट्रपति को संबोधित कर दे सकते हैं तथा राष्ट्रपति भी इन्हें पद की अवमानना या अवैध कार्यों में लिप्त होने के लिए बर्खास्त कर सकते हैं।

2.9 अन्य प्रशासनिक संस्थाओं का विकास

1. **केंद्रीय सचिवालय –**

(1) 1843 में भारत के गवर्नर जनरल ने भारत सरकार के सचिवालय को बंगाल सरकार के सचिवालय से पृथक कर दिया, जिसके फलस्वरूप केंद्रीय सचिवालय के अंतर्गत सर्वप्रथम पृथक रूप से गृह, वित्त, रक्षा एवं विदेश विभागों की स्थापना हुई।

(2) 1859 में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने पोर्टफोलियो (विभाग–विभाजन) की प्रणाली को प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप गवर्नर जनरल की परिषद के एक सदस्य को केंद्रीय सचिवालय के एक या एक से अधिक विभागों का प्रभारी बनाया गया और परिषद की ओर आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत किया गया।

(3) 1905 में लॉर्ड कर्जन ने सचिवालय के कर्मिकों के लिए कार्यकाल संबंधी प्रणाली प्रारम्भ किया।

(4) 1905 में भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा रेलवे बोर्ड का गठन किया गया, जिसके फलस्वरूप रेलवे पर नियंत्रण का कार्य लोक निर्माण विभाग से लेकर इस बोर्ड को दिया गया था।

(5) 1947 में भारत सरकार के विभागों का नाम बदलकर मंत्रालय कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय केंद्रीय सचिवालय में 18 मंत्रालय थे।

2. **राज्य प्रशासन –**

ब्रिटिश शासनकाल में राज्य प्रशासन से संबंधित प्रशासनिक संस्थाओं का विकास निम्न प्रकार से हुई थी –

(1) 1772 ई में वॉरेन हेस्टिंग्स ने राजस्व संग्रहण एवं न्याय प्रदान करने के प्रयोजन से जिला कलेक्टर के पद का सृजन किया।

(2) 1786 में राज्य स्तर पर राजस्व प्रशासन से जुड़े मामले के निपटारे के लिए सर्वप्रथम बंगाल में राजस्व बोर्ड नामक संस्था का गठन किया गया था।

(3) 1792 में लॉर्ड कॉर्नवालिस ने थानेदार प्रणाली के स्थान पर दरोगा प्रणाली की शुरूआत की, जो सीधे जिला प्रमुख के नियंत्रण में थी।

(4) 1829 में लॉर्ड विलियम बैंटिक ने जिला व राज्य मुख्यालयों के बीच एक मध्य प्राधिकरण के रूप में प्रभागीय आयुक्त के पद की रचना की थी।

(5) 1861 में भारतीय पुलिस अधिनियम के माध्यम से कॉस्टेबल प्रणाली की स्थापना हुई, जिसके द्वारा जिला पुलिस को जिला मजिस्ट्रेट (जिला कलेक्टर) के अधीन किया गया था।

3. **स्थानीय प्रशासन** – वर्तमान भारत के शहरी स्थानीय शासन से संबंधित संस्थाएँ ब्रिटिश शासनकाल में अस्तित्व में आई व विकसित हुई जो इस प्रकार है –

(1) 1687 में भारत में पहले नगर निगम की स्थापना मद्रास में हुई।

(2) 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में नगर निगमों की स्थापना हुई।

(3) 1870 में लॉर्ड मेयो के वित्तीय विकेंद्रीकरण से संबंधित प्रस्ताव द्वारा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का विकास हुआ।

(4) लॉर्ड रिपन के 1882 के प्रस्ताव को स्थानीय स्वशासन का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है।

(5) 1905 में विकेंद्रीकरण के मुद्दे पर शाही आयोग का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष हॉबहाउस थे।

(6) भारत सरकार अधिनियम 1919 के माध्यम से प्रांतों में स्थानीय स्वशासन प्रारम्भ की गई। द्वैध प्रणाली के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन को हस्तांरित विषय का दर्जा प्राप्त हुआ जिसके प्रभारी भारतीय मंत्री होते थे।

(7) वर्ष 1924 में केंद्रीय विधायिका द्वारा कैंटोनमेंट एक्ट पारित किया गया।

(8) भारत सरकार अधिनियम 1935 द्वारा शुरू की गई प्रांतीय स्वायत्ता से जुड़ी योजना के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विषय घोषित किया गया।

4. **वित्तीय प्रशासन** –

(1) 1735 में भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा विभाग का गठन किया गया।

(2) 1860 में बजट प्रणाली की शुरूआत हुई।

(3) 1870 में लॉर्ड मेयो ने वित्तीय प्रशासन का विकेंद्रीकरण किया जिसके फलस्वरूप प्रांतीय सरकारों को स्थानीय वित्तीय प्रबंधन के लिए उत्तरदायी बनाया गया था।

(4) 1921 में आक्वर्थ समिति की सिफारिश पर रेल बजट को आम बजट से पृथक कर दिया गया।

(5) 1921 में केंद्र में लोक लेखा समिति का गठन हुआ।

(6) 1935 में केंद्रीय अधिनियम द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई।

2.12 सारांश

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मुख्यतया ब्रिटिश शासन की अद्वितीय विरासत है। 1773 में ब्रिटिश संसद ने कंपनी के प्रशासनिक दोषों को दूर करने के लिए रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया। वॉरेन हेस्टिंग्स ने बंगाल के प्रथम गवर्नर जनरल के रूप में कार्यभार संभाला तथा भारत में प्रशासनिक सुधार की ओर ध्यान देकर ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने की हरसंभव कोशिश की। भारत में लोक सेवा का प्रारम्भ 1773 ई के रेग्यूलेटिंग एक्ट से माना जाता है।1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा 1774 में कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश एवं तीन अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई। इसके अधिकार क्षेत्र में कलकत्ता में रहने वाले सभी भारतीय तथा अंग्रेज थे। 1784 ई0 में ब्रिटिश संसद ने पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया जिसका उद्देश्य म्ब् की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना था। पिट्स इंडिया एक्ट 1784 के अंतर्गत रेखांकित कार्यों को संपन्न करने के लिए सितम्बर 1786 में लॉर्ड कार्नवालिस को गवर्नर जनरल तथा ब्रिटिश सेना का मुख्य सेनापति बनाकर भारत भेजा गया।कार्नवालिस ने यूरोपीय पद्धति पर भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का संगठन किया तथा प्रशासनिक व्यवस्था में यूरोपीयों को प्रधानता दिया। भारतीय संवैधानिक सुधारों के संबंध में 1918 में मांटेस्क्यू–चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन भारतीय लोक सेवा के विकासक्रम में मील का पत्थर साबित हुआ। ली आयोग की सभी सिफारिशों को स्वीकार कर उन्हें लागू किया गया। 1926 में लोक सेवा आयोग का गठन कर उसे लोक सेवकों की भर्ती करने का कार्य सौंपा गया।1935 में भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के बाद 1937 में इस आयोग का स्थान संघीय लोक सेवा आयोग ने ले लिया। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने के बाद स्वतंत्र भारत में संघ लोक सेवा आयोग अस्तित्व में आया।

2.13 आदर्श प्रश्न

1. लार्ड कार्नवालिस के प्रशासनिक एवं न्यायिक सुधारों की समीक्षा करें।

2. ब्रिटिश शासन काल में लोक सेवाओं के विकास का वर्णन करें।

3. वारेन हेस्टिंग्स के न्यायिक सुधारों पर प्रकाश डालें।

4. लोकसेवा एवं न्यायिक सेवा से सम्बंधित विभिन्न समितियों के बारे में बताइए।

उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार – आधुनिक भारत 1885–1947

ए. त्रिपाठी – उग्रवादी चुनौती

पी. स्पीयर्स – द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)

डी. डाल्टन – महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति

सी.एच. हेमसथ – भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार

सुमित सरकार – बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

एस.सी. सरकार – बंगाल का नवजागरण

इकाई–3

सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं घटनाक्रम

इकाई की रूपरेखा :

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सविनय अवज्ञा आंदोलन

3.3.1 सविनय अवज्ञा आंदोलन की पृष्ठभूमि

3.3.2 दिल्ली घोषणा पत्र

3.3.3 कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन एवं पूर्ण स्वराज्य की मांग

3.3.4 सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारण

3.3.5 कांग्रेस का आंदोलन प्रारम्भ करने का निर्णय एवं गाँधी जी द्वारा सरकार से की गयी माँग

3.4 नमक कानून

3.4.1 सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारम्भ एवं दांडी यात्रा

3.5 सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम

3.5.1 सविनय अवज्ञा आंदोलन की प्रगति

3.5.2 सविनय अवज्ञा आंदोलन का दमन

3.6 सविनय अवज्ञा आंदोलन का मूल्याँकन

3.7 प्रथम गोलमेज सम्मेलन

3.7.1 प्रथम गोलमेज सम्मेलन की पृष्ठभूमि

3.7.2 प्रथम गोलमेज सम्मेलन में विभिन्न दलों के सम्भागी

3.7.3 वार्ता के आधार

3.7.4 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का परिणाम

3.8 गाँधी – इरविन/दिल्ली समझौता

3.8.1 समझौता की पृष्ठभूमि

3.8.3 समझौता की शर्तें

3.8.4 गाँधी इरविन समझौते का मूल्यांकन

3.9. द्वितीय गोलमेज सम्मेलन

3.9.1 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की पृष्ठभूमि

3.9.2 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन

3.9.3 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के सहभागी

3.9.4 वार्ता का आधार

3.9.5 प्रतिनिधियों की प्रतिक्रियाएँ

3.9.6 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का परिणाम

3.10 सांप्रदायिक पंचाट/निर्णय –

3.10.1 सांप्रदायिक पंचाट/निर्णय की पृष्ठभूमि।

3.10.2 सांप्रदायिक पंचाट/निर्णय के प्रमुख प्रावधान।

3.10.3 सांप्रदायिक पंचाट/निर्णय की आलोचना।

3.10.4 सांप्रदायिक पंचाट/निर्णय की समीक्षा।

3.11 पूना समझौता/गाँधी–अम्बेडकर समझौता –

3.11.1 पूना समझौता की पृष्ठभूमि

3.11.2 पूना समझौता

3.11.3 पूना समझौता के प्रावधान

3.11.4 पूना समझौता का मूल्याँकन

3.12 तृतीय गोलमेज सम्मेलन –

3.12.1 तृतीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन।

3.12.2 तृतीय गोलमेज सम्मेलन का अंत।

3.13 सारांश

3.14 आदर्श प्रश्न

3.15 उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

स्वराज संघर्ष भाग 1 में हमने साइमन कमीशन, नेहरू रिपोर्ट एवं जिन्ना के 14 सूत्रीय मांगों के बारे में जानकारी अर्जित की थी। स्वराज्य संघर्ष भाग 2 की यह इकाई राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में हमारी मौजूदा जानकारी को विस्तारित करेगी। इस अध्याय में हम सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारणों एवं परिणामों को जानेंगे। यह

अध्ययन उस दौरान घटित होने वाली अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं यथा गोलमेज सम्मेलनों, गांधी इरविन समझौता, सांप्रदायिक पंचाट, एवं पूना पैक्ट को भी समझने में सहायक होगी।

3.2 उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित पूर्व के अध्ययनों से अर्जित ज्ञान क्षेत्र में वृद्धि करना है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम सविनय अवज्ञा आंदोलन के विभिन्न पहलुओं को समझने में सक्षम होंगे। यह अध्याय हमें नमक कानून एवं गाँधीजी की दांडी यात्रा से भी परिचय कराएगी। अध्ययन का उद्देश्य पाठकों में राष्ट्रीय आंदोलन की गहरी समझ विकसित करना है।

3.3.1 सविनय अवज्ञा आंदोलन पृष्ठभूमि

दिसम्बर 1928 ई में कलकत्ता में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित किया गया। उसमें नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया तथा ब्रिटिश सरकार को यह अल्टीमेटम दिया गया कि यदि 31 दिसम्बर 1928 तक नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया गया तो कांग्रेस एक अहिंसात्मक आंदोलन चलायेगी। कांग्रेस की माँगों पर सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया परिणामस्वरूप कांग्रेस ने 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का निर्णय लिया।

लाहौर अधिवेशन के प्रमुख निर्णय –

- कांग्रेस के विधान में पहली बार स्वराज्य शब्द का उल्लेख किया गया।
- नेहरू रिपोर्ट में उल्लेखित सभी योजनाओं को समाप्त कर दिया गया।
- कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया।
- यह निश्चय किया गया कि सभी कांग्रेसी नेता एवं कार्यकर्ता अपनी संपूर्ण शक्ति भारत को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने की दिशा में लगायेंगे।
- सभी कांग्रेसी भावी निर्वाचनों में भाग नहीं लेंगे तथा वर्तमान में जो भी कौंसिल के सदस्य हैं, वे उसका त्याग करेंगे।
- महासमिति को आवश्यकता पड़ने पर सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ करेन का अधिकार दिया गया।
- प्रत्येक वर्ष के 26 जनवरी को स्वाधीनता दिवस मनाने का निर्णय लिया गया।
- पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के मार्ग में कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के साथ कोई समझौता नहीं करेगी।

- पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति की दिशा में कांग्रेस महासमिति जो भी निर्णय लेगी, सभी कांग्रेसी कार्यकर्ता उसका अक्षरशः पालन करेंगे।

3.3.2 दिल्ली घोषणा पत्र

मई 1929 ई में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी (मजदूर दल) की सरकार स्थापित हुई। भारतीयों को मजदूर दल की सरकार से काफी आशाएँ थी लेकिन भारत के संबंध में ब्रिटेन सरकार की नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सत्ता का चेहरा बदला चरित्र नहीं। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने भारत को शीघ्र ही राष्ट्रमंडल में समानता का दर्जा दिए जाने की घोषणा की तथा भारत से गवर्नर जनरल लॉर्ड इरविन को वार्ता के लिए इंग्लैण्ड बुलाया। इसके फलस्वरूप 31 अक्टूबर 1929 ई को गवर्नर जनरल लार्ड इरविन ने जो दिल्ली घोषणा की वह अत्यधिक ही अस्पष्ट थी। इसमें भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की कोई निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं किया गया था। इसका कांग्रेस ने विरोध किया तथा उसने पूर्ण स्वराज्य की माँग करना प्रारम्भ कर दिया।

3.3.3 कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन एवं पूर्ण स्वराज्य की माँग

नेहरू रिपोर्ट को लागू करने और गोलमेज सम्मेलन द्वारा भारत के लिए औपनिवेशिक संविधान निर्माण के संबंध में वायसराय लॉर्ड इरविन द्वारा आश्वासन न दिये जाने के कारण भारतीय जनता को काफी निराशा हुई तथा सरकार के विरूद्ध पूरे देश में घृणा की लहर दौड़ गई। इस उत्तेजनापूर्ण वातावरण में दिसम्बर 1929 ई लाहौर में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित हुआ। नेहरू औपनिवेशिक स्वराज्य से संतुष्ट नहीं थे और पूर्ण स्वाधीनता चाहते थें। अतः नेहरू ने पूर्ण स्वाधीनता की माँग रखी। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि अगर 1929 तक सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान नहीं करती है तो कांग्रेस स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए आंदोलन करेगी। 31 दिसम्बर 1929 ई को मध्य रात्रि में रावी नदी तट पर जवाहर लाल नेहरू ने तिरंगा झंडा फहराया तथा पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा का प्रस्ताव पढ़ा। प्रस्ताव में 26 जनवरी 1930 का दिन पूर्ण स्वराज्य दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की गई तथा 26 जनवरी को प्रत्येक वर्ष पूर्ण स्वाधीनता दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। 26 जनवरी 1930 को आधुनिक भारत के इतिहास में प्रथम स्वतंत्रता दिवस के रूप में माना जाता है।

- कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन दो कारणों से महत्वपूर्ण बन गया।

  (i) कांग्रेस नेतृत्व में युवा वर्ग को तरजीह दी गई।

  (ii) पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस समारोह मनाया गया। कांग्रेस के विधान की पहली धारा में स्वराज्य शब्द का अर्थ पूर्ण

स्वाधीनता उल्लेखित किया गया और नेहरू रिपोर्ट वापस लेने तथा पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु जनता का आवाहन किया गया। इस अवसर पर प्रतिज्ञा की गई कि ''अन्य लोगों की तरह भारतीय लोगों को भी स्वतंत्रता और अपने कठिन परिश्रम के फल का आनंद लेने का अहरणीय अधिकार है और यह है कि यदि कोई भी सरकार लोगों को इन अधिकारों से वंचित रखती है या उनका दमन करती है तो लोगों को इसे बदलने या समाप्त करने का भी अधिकार है।'' इसी अधिवेशन में सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ करने का अधिकार कांग्रेस कार्यसमिति को दे दिया गया। यह भी प्रतिज्ञा की गई कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना हेतु कांग्रेस के जो निर्देश होंगे उनका पालन वे करेंगे।

3.3.4 सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारण

ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत कर भारतीयों के लिए संघर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं छोड़ा। अतः भारतीयों के सामने आंदोलन करने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं था। देश की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। भारत भी आर्थिक मंदी की चपेट में आ चुका था। वस्तुओं की मूल्य में काफी वृद्धि हो गई थी। किसान, मजदूर, व्यापारी, व सामान्य जनता इससे परेशान थी। सरकार ने गाँधी जी की न्यूनतम माँगों को अस्वीकार कर दिया था। ऐसी स्थिति में गाँधी जी ने आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में पारित गाँधी जी द्वारा भेजे गये अल्टीमेटम का सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप 1929 के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्ति का निर्णय लिया गया। औद्योगिक एवं व्यावसायिक वर्ग भी सरकार की नीति से असंतुष्ट या सरकार ने अंग्रेजों को फायदा पहुँचाने के लिए रूपये की कीमत 16 पैसे बढ़ाकर 18 पैसे कर दी थी। अतः इन वर्गों ने भी कांग्रेस के आंदोलन चलाने के निर्णय को समर्थन दिया। औद्योगिक मजदूरों की स्थिति भी अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। उनकी मजदूरी अत्यंत ही कम थी तथा उनकी कार्यावधि काफी अधिक थी। कल–कारखानों में हड़ताल आम बात हो गई थी। मेरठ षडयंत्र मुकदमा में सरकार ने 36 मजदूरों नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, जिससे मजदूर उत्तेजित हो उठे। मजदूरों में वर्ग चेतना जागृत हुई तथा वे संगठित होकर सरकार का विरोध करने लगे। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के विषय पर टालमटोल की नीति एवं वायसराय लॉर्ड इरविन द्वारा आश्वासन न दिये जाने के कारण भारत का युवा वर्ग काफी असंतुष्ट था।सरदार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के क्रांतिकारी कार्यों और लाहौर षडयंत्र के कारण भारत का राजनीतिक वातावरण उत्तेजित हो गया। क्रांतिकारी आंदोलन को देखते हुए गाँधी जी को डर था कि कहीं समस्त देश हिंसक आंदोलन की ओर न बढ़ जाए। अतः उन्होंने नागरिक अवज्ञा आंदोलन चलाना आवश्यक समझा।

चौरी–चौरा हत्याकांड के कारण असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया गया था। आंदोलन को अचानक स्थगित कर दिये जाने के कारण जनता में निराशा फैल गयी थी, उस निराशा को दूर करने के लिए भी आंदोलन चलाना आवश्यक प्रतीत हो रहा था।देश में सांप्रदायिकता की आग तेजी से फैलता जा रहा था। इसे रोकने के लिए भी आंदोलन चलाना आवश्यक था। साइमन कमीशन के बहिष्कार आंदोलन के दौरान जनता के उत्साह को देखते हुए यह आवश्यक लगने लगा कि जनता के मनोबल को बढ़ाने के लिए एक आंदोलन आवश्यक है।

3.3.5 कांग्रेस का आंदोलन प्रारम्भ करने का निर्णय एवं गाँधी जी द्वारा सरकार से की गयी माँग

14 फरवरी से 16 फरवरी 1930 के मध्य कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक अहमदाबाद स्थित साबरमती आश्रम में हुई। इस बैठक में एक प्रस्ताव पारित करके कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ करने संबंधी सभी अधिकार महात्मा गाँधी को दिया गया। आंदोलन प्रारम्भ करने से पूर्व गाँधी जी ने सरकार को एक अवसर देते हुए वायसराय इरविन के समक्ष 11 सूत्री माँगे रखी। उन्होंने वायसराय से यह भी कहा कि अगर सरकार उनकी माँगों को मान लेगी तो वे अपना आंदोलन स्थगित कर देंगे तथा उनकी माँगे नहीं माने जाने पर वे सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ करेंगे। इन माँगों में छः आम हित के, तीन विशिष्ट पूँजीवादी तथा दो किसान हित से संबंधित माँगे थीं।

गाँधी जी द्वारा इरविन के समक्ष रखी गई 11 सूत्री माँगे निम्न थीं –

- देश में पूर्ण नशाबंदी लागू किया जाय।
- मुद्रा विनिमय दर में एक रूपया को एक शिलिंग चार पेंस के बराबर माना जाय।
- भूराजस्व आधा कर दिया जाय तथा उसे विधानमंडल के नियंत्रण में रखा जाय।
- नमक कर को समाप्त कर दिया जाय।
- सैनिक व्ययों में 50 प्रतिशत कमी की जाय।
- असैनिक कर्मचारियों के वेतन में 50 प्रतिशत कमी की जाय।
- तटीय व्यापार संरक्षण कानून पारित कर भारतीय तट को केवल भारतीय जहाज के लिए सुरक्षित किया जाय।
- राजनीतिक बंदियों को रिहा किया जाय तथा उनपर लगे आरोपों को वापस लिया जाए और निर्वासितों को भारत आने की अनुमति दी जाए।
- गुप्तचर विभाग को या तो समाप्त कर दिया जाय या उसे जन नियंत्रण में

रखा जाय।

- भारतीयों को भी आत्मरक्षार्थ हथियारों के लाइसेंस दिये जायें।

वायसराय इरविन ने गाँधीजी की माँगों पर कोई उत्तर नहीं दिया। गाँधी जी अपने मित्र रेनाल्ड्स के हाथों एक पत्र पुनः वायसराय को भेजा। इस पत्र के जवाब में इरविन ने गाँधी को सावधान करते हुए कहा ''मुझे दुख है कि गाँधी जी वह रास्ता अपना रहे हैं जिसमें कानून और सार्वजनिक शांति भंग होना आवश्यक है। वायसराय के पत्र के जवाब में गाँधी जी ने कहा ''मैंने घुटना टेककर रोटी माँगा किन्तु बदले में मुझे पत्थर मिला। इंतजार की घड़ियाँ समाप्त हुई।''

3.4 नमक कानून

महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारम्भ नमक कानून भंग करके करने का निश्चय किया। नमक के उत्पादन एवं बिक्री पर राज्य का पूर्ण एकाधिकार था। गाँधी जी ने ऐसा कर एक ऐसे सामान्य मुद्दे पर अपना ध्यान केंद्रित किया जो गरीब–अमीर सभी के लिए अनिवार्य उपयोग की वस्तु थी। हर घर में इसका उपयोग होता था। सरकारी एकाधिपत्य के कारण कोई इसे बना नहीं सकता था। प्रत्येक व्यक्ति को बाजार से ऊँची कीमत पर नमक खरीदना पड़ता था।

गाँधी जी का मानना था कि नमक पर एकाधिकार एक अभिशाप है। यह लोगों को आसानी से सुलभ बहुमूल्य वस्तु से वंचित करता है। प्रकृति द्वारा बहुतायत उत्पादित संपदा का विनाश करता है। यह कर भूखे लोगों से धन की उगाही है। इस को समाप्त करना होगा। यह लोगों की क्षमता पर निर्भर है कि इसे जल्दी खत्म कर दिया जाएगा।

3.4.1 सविनय अथवा आंदोलन का प्रारम्भ एवं दांडी यात्रा

गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत वायसराय इरविन के समक्ष पेश की गई 11 सूत्री माँगों को पूरा किये जाने के संबंध में वायसराय द्वारा संतोषजनक उत्तर न मिलने के कारण गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ करने का निर्णय किया। उन्होंने अपने समर्थकों के साथ दांडी तट पर नमक कानून तोड़ने का निश्चय किया।

11 मार्च 1930 को गाँधी जी ने हजारों लोगों की भीड़ को संबोधित करते हुए सभी के साथ प्रण लिया कि ''जब तक स्वाधीनता नहीं मिल जाती तब तक न तो हम स्वयं चैन लेंगे और न ही सरकार को चैन लेने देंगे।'' 12 मार्च 1930 ई को गाँधी जी प्रातः 6:30 बजे अपने 78 कार्यकर्ताओं के साथ साबरमती आश्रम से दाण्डी समुद्र की ओर निकल पड़े। इस प्रकार सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ दाण्डी यात्रा की ऐतिहासिक घटना से हुई। 200 मील की लंबी दूरी 24 दिनों में पूरा कर 5 अप्रैल 1930 को गाँधी जी अपने कार्यकर्ताओं के साथ दाण्डी पहुँचे। 6 अप्रैल 1930 को गाँधी जी ने गुजरात के नौसारी जिले के समुद्र तट पर स्थित दाण्डी गाँव में

स्वयं नमक बनाकर ब्रिटिश सरकार के नमक कानून को तोड़ दिया। इस प्रकार नमक कानून को तोड़कर गाँधी जी ने औपचारिक रूप से सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ किया। दाण्डी यात्रा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सुभाष चंद्र बोस ने इसकी तुलना नेपालियन के पेरिस मार्च और मुसोलिनी के रोम मार्च से की। शीघ्र की यह आंदोलन संपूर्ण देश में फैल गया।

पंडित नेहरू के शब्दों में ''जैसे–जैसे दिन प्रतिदिन जनता इस सत्याग्रही जनता का साथ देती गई, देश में उत्तेजना की मात्रा बढ़ती चली गई। स्टेटमैन नामक समाचारपत्र ने उपहास उड़ाते हुए लिखा ''महात्मा गाँधी उस समय तक पानी खौलाते रहेंगे, जब तक भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त न हो जाए।''

3.5 सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम

6 अप्रैल 1930 को गाँधी द्वारा स्वयं नमक कानून तोड़ने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन के निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किये गये –

- विनय के साथ गलत कानूनों की अवज्ञा करना।
- गाँव–गाँव में नमक कानून तोड़कर नमक बनाना।
- शराब, अफीम एवं विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना।
- विदेशी वस्त्रों की होली जलाना।
- स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहन देना।
- अस्पृश्यता की भावना का त्याग करना।
- सरकारी स्कूल कॉलेजों का बहिष्कार करना।
- सरकारी सेवाओं का त्याग करना।
- 4 मई 1930 को गाँधी जी की गिरफ्तारी के बाद करबंदी को भी आंदोलन के कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया।

3.5.1 सविनय अवज्ञा आंदोलन की प्रगति

महात्मा गाँधी द्वारा नमक कानून तोड़े जाने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन शीघ्र ही पूरे देश में फैल गया। गाँधी जी से प्रेरणा लेकर संपूर्ण देश में नमक कानून तोड़कर नमक बनाया जाने लगा। पूरे देश में उत्साह की लहर फैल गई। मध्य प्रदेश में जंगल कानून और कलकत्ता में सेडीशन कानून का उल्लंघन किया गया। सर्वत्र हड़तालों और प्रदर्शनों का अयोजन किया गया। जगह–जगह सार्वजनिक सभाएँ हुई। कलकत्ता, मद्रास, पटना, करांची, दिल्ली नागपुर और पेशावर आदि स्थानों में प्रदर्शनों और हड़तालों का व्यापक प्रभाव पड़ा। मद्रास, बम्बई, म.प्र., संयुक्त प्रान्त व बंगाल में वृहत स्तर पर नमक बनाया जाने लगा। शांतिपूर्ण तरीके से सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनाई गई। नमक कानून भंग करने के अतिरिक्त विदेशी

कपड़ों की होली जलाई गई, विदेशी कपड़ों एवं अन्य वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। शराब व अन्य नशीली पदार्थों की दुकानों पर धरना दिया गया। विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल–कॉलेजों का त्याग करके राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रवेश लिया। सैकड़ों सरकारी कर्मचारयों ने अपनी नौकरी छोड़ दी, अनेक विधायकों ने कौंसिल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। किसानों ने सरकार को लगान देना बंद कर दिया। वकीलों ने वकालत छोड़ दिया। सरकारी वन कानूनों का उल्लंघन किया गया। श्रमिकों ने हड़ताल एवं प्रदर्शन किया। बम्बई में अंग्रेज व्यापारियों की मिलें बंद हो गई। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस का साथ नहीं दिया तथा इस आंदोलन के प्रति पूर्ण तटस्थता की नीति का पालन किया। उसने इस आंदोलन का खुलकर विरोध किया तथा आंदोलन के दौरान सरकार का साथ दिया। खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगार और जीमयत–उल–उलेमेमेमाए हिन्द के अनुयायियों ने इस आंदोलन में भाग लिया। खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में खुदाई खिदमतगार नामक संगठन की स्थापना की गई जो लाल कुर्ती के नाम से प्रख्यात हुआ। नागालैण्ड में 13 वर्षीय नागा महिला गोडिनेल्यू ने विद्रोह का झंडा बुलंद किया जिसे 1932 में आजीवन कारावास की सजा दी गई। कालांतर में पंडित नेहरू ने गोडिनेल्यू को रानी की उपाधि से सम्मानित किया। यह पहला आंदोलन था जिसमें पहली बार महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया तथा आंदोलन के दौरान सक्रिय भूमिका निभायी। अकेले दिल्ली में ही 1600 महिलाओं को धरना देने के कारण गिरफ्तार किया गया। इस प्रकार समस्त भारत में तीव्रता के साथ इस आंदोलन का प्रसार हुआ तथा इसे अप्रत्याशित सफलता मिली। तमिलनाडु में गाँधीवादी नेता सी. राजगोपालचारी ने तिरूचेनगोड आश्रम से त्रिचुरापल्ली के वेदारण्यम तक नमक यात्रा की। मालाबार में नमक सत्याग्रह की शुरूआत बायकोम सत्याग्रह के नेता के केलप्पड़ ने कालीकट से पेन्नार तक नमक यात्रा की। उड़ीसा में नमक सत्याग्रह गोपचंद्र बंधु चौधरी के नेतृत्व में बालासीर, कटक व पुरी में नमक आंदोलन चलाया गया। असम के सिलहट व बंगाल के नोवाखली में भी नमक कानून तोड़ने का प्रयास किया गया।

3.5.2 सविनय अवज्ञा आंदोलन का दमन

आंदोलन प्रारम्भ होने से पूर्व ही कांग्रेस के सैकड़ों स्वयंसेवकों को किसी न किसी बहाने जेल में डाल दिया गया। सुभाष चन्द्र बोस को पहले ही गिरफ्तार कर एक वर्ष के लिए कारावास में भेजा चुका था। आंदोलन के प्रारम्भ में सरकार को इस बात का बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था यह आंदोलन अत्यधिक तीव्र गति से फैलेगा तथा भारतीयों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित कर देगा। आंदोलन के पूरे देश में फैलते तथा निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता से सरकार की नींद हराम हो गई तथा उसने आंदोलन का दमन करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। जून 1930 को कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। 4 मई 1930 को ही महात्मा गाँधी,

सरदार बल्लभ भाई पटेल, जवाहर लाल नेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद आदि प्रमुख कांग्रेस नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी जी को पुणे के यरवड़ा जेल में रखा गया। सार्वजनिक सभाओं एवं जुलूसों को तितर–बितर करने के लिए अंधाधुंध लाठियाँ चलाई गई, और कभी–कभी गोलियाँ भी चलाई गई। बड़ी संख्या में लोगों को गिरफ्तार किया गया। 1931 के प्रारम्भ में लगभग 90,000 व्यक्ति जेलों में बंद थे तथा सरकार 7 समाचारपत्रों का प्रकाशन बंद कर दिया। प्रदर्शनों एवं सभाओं पर रोक लगा दिया गया। लाठीचार्ज रोजाना की आम बात हो गई। महिलाओं को भी निर्दयतापूर्वक पीटा गया तथा उनसे अभद्रव्यवहार किया गया। उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में आंदोलनकारियों को दबाने के लिये गढ़वाल रेजीमेंट की कुछ टुकड़ियाँ पेशावर भेजी गयी। रेजीमेंट के सिपाहियों ने चंद्रसिंह गढवाली के नेतृत्व में निहत्थे आंदोलनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया।

पूरे देश को अध्यादेश शासन के अधीन कर दिया गया। सर्वत्र दमनकारी कानूनों का राज था। कर बंदी आंदोलन का दमन करने के लिए बलपूर्वक आंदोलनकारियों की संपत्ति जब्त कर ली गई। अनेक स्थानों पर सरकार एवं पुलिस के दमन कार्य की प्रतिक्रिया स्वरूप जनता ने हिंसात्मक कार्यवाई की। सरकार की दमनात्मक कार्यवाई से आंदोलन रूकने के स्थान पर और तीव्र गति से फैलता चला रहा था। आंदोलन के तीव्र गति से बढ़ता देख एवं अनियंत्रित होती जा रही स्थिति पर नियंत्रण करने के लिए सरकार आंदोलनकारियों के साथ समझौता करने का प्रयत्न करने लगी।

3.6 सविनय अवज्ञा आंदोलन का मूल्यांकन

सविनय अवज्ञा आंदोलन को अप्रत्याशित सफलता मिली। इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्र गति एवं मजबूती प्रदान की। इस आंदोलन के अत्यंत ही व्यापक एवं दूरगामी परिणाम निकले जो निम्न है – इस आंदोलन में पहली बार बड़ी संख्या में उच्च वर्ग के लोगों के साथ किसानों, मजदूरों एवं महिलाओं ने भाग लिया। इस आंदोलन ने करबंदी को प्रोत्साहन दिये जाने के फलस्वरूप किसानों एवं मजदूरों में भी राजनीतिक जागृत आई तथा उनमें भी अधिकारों की माँग करने की क्षमता का विकास हुआ। इस आंदोलन के फलस्वरूप जनता में निर्भयता, स्वावलम्बन और त्याग आदि गुणों का विकास हुआ जो स्वतंत्रता की नींव है। जनता ने अब यह समझ लिया कि यदि उन्हें अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त करना है तो उन्हें खुद प्रयास करना पड़ेगा और अंग्रेजों का डटकर सामना करना पड़ेगा। जनसाधारण वर्ग स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय रूप से आंदोलन में भाग लेने लगा। इस आंदोलन ने कांग्रेस की कमजोरियों को स्पष्ट कर दिया। कांग्रेस के पास भविष्य के लिए सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम न होने के कारण वह भारतीय जनता में व्याप्त असंतोष का पूर्णतया उपयोग न कर सकी ।

समाजवादी कार्यकर्ता कमला देवी चट्टोपाध्याय ने गाँधी जी से अनुरोध किया कि वे आंदोलन को पुरूषों तक सीमित न रखकर महिलाओं को भी इस आंदोलन में शामिल करें। इस आंदोलन में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। नमक सत्याग्रह के अवसर पर पहली बार स्त्रियाँ बड़ी संख्या में घरों से बाहर निकली और राष्ट्रवादी कार्यक्रमों में बढ़–चढ़कर भाग लिया। सविनय अवज्ञा आंदोलन की सफलता से अंग्रेज यह बात समझ गये कि अब वे लम्बे समय तक निर्विरोध ढंग से राज नहीं कर सकेंगे। अतः उन्होंने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया। पहली बार सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी कार्यक्रमों में औद्योगिक घरानों ने खुलकर समर्थन दिया।

3.7.1 प्रथम गोलमेज सम्मेलन (12 नवम्बर 1930–19 जनवरी 1931 ई)

सविनय अवज्ञा आंदोलन की घटनाओं ने सरकार के समक्ष संकट उत्पन्न कर दिया। अनियंत्रित होती जा रही स्थिति को नियंत्रित करने के लिए सरकार संवैधानिक सुधारों पर वार्ता करने के लिए तैयार हुई। साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद भारत की संवैधानिक विकास के अवरोधों को दूर करने तथा संवैधानिक गतिरोध को सुलझाने के लिए गोलमेज सम्मेलन का अयोजन किया गया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन का उद्घाटन 12 नवम्बर 1930 को ब्रिटिश सम्राट जार्ज पंचम ने किया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने की। इस सम्मेलन में 89 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिसमें से 16 भारतीय देशी रियासतों के, 57 ब्रिटिश भारत के तथा 16 ब्रिटिश संसद के तीन प्रमुख दलों के प्रतिनिधि थे। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को वायसराय ने मनोनित किया था। इस सम्मेलन में भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। राष्ट्रीय मुसलमानों को सम्मेलन में आमंत्रित नहीं किया गया था। तेज बहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री, डॉ0 अम्बेडकर इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख नेता थे। कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया था। कांग्रेस की अनुपस्थिति पर ब्रेल्सफोर्ड ने कहा था कि ''सेंट जेम्स महल में भारतीय राजा, हरिजन, सिख, मुसलमान, हिन्दू, ईसाई और जमींदारों, मजदूर संघों व वाणिज्य संघों के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए किन्तु वहाँ भारतमाता उपस्थित नहीं थी।''

3.7.2 प्रथम गोलमेज सम्मेलन में विभिन्न दलों के सहभागी

मुस्लिम लीग– मौलाना मोहम्मद अली जौहर, मोहम्मद शफी, आगा खान, मोहम्मद अली जिन्ना, मोहम्मद ज़फ़रूल्ला खान, ए.के. फजलुल हक।

हिन्दू महासभा – बी.एस. मुंजे, एम.आर जयकर

उदारवादी नेता – तेजबहादुर सप्रू, सी.वाय.चिंतामणि, श्रीनिवास शास्त्री, सिख सरदार उज्जवल सिंह

कैथोलिक (ईसाई) – ए.टी. पन्नीर सेल्वम, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर

देशी रियासतें –हैदराबाद के दीवान अकबर हैदरी, मैसूर के दीवान सर मिर्जा इस्माइल सिद्धांत साहू, ग्वालियर के कैलाश नारायण हक्सर, पटियाला के महाराजा भूपिंदर सिंह, बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय, जम्मू–कश्मीर के महाराजा हरि सिंह, बड़ौदा के महाराजा गंगा सिंह, भोपाल के नवाब हमीदुल्ला खान, नवानगर के.के.एस. रणजीत सिंह, अलवर के महाराज जय सिंह प्रभाकर, इंदौर, रीवा, धौलापुर, कोरिया, सांगली, और सरीला के शासक।

3.7.3 वार्ता का आधार

प्रथम गोलमेज सम्मेलन में वार्ता का आधार तीन विषय से जो निम्न हैं–

(i) केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा का निर्माण संघ शासन के आधार पर होगा।

(ii) ब्रिटिश भारत के प्रांत और भारतीय देशी राज्य संघ शासन और विदेश विभाग भारत के गवर्नर जनरल के अधीन होंगे।

(iii) संकट काल के लिए कुछ रक्षात्मक विधान होगा तथा अल्पसंख्यकों के लिए गवर्नर को कुछ विशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की जायेगी।

एक अखिल भारतीय महासंघ बनाने का विचार चर्चा का मुख्य बिन्दु बना रहा। सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी समूहों ने इस अवधारणा का समर्थन किया।

सदस्यों की प्रतिक्रियाएँ – सभी देशी रियासतों के नरेशों एवं प्रतिनिधियों ने संघ शासन को स्वीकार कर संघ राज्य में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। केंद्र में आंशिक उत्तरदायित्व की स्थापना का भी स्वागत किया गया। सम्मेलन में कुछ सदस्यों ने औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। सर तेजबहादुर सप्रू और एम.आर. जयकर ने औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना पर बल दिया। डॉ0 जयशंकर ने कहा कि ''यदि आप आज भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान कर दे ंतो स्वतंत्रता की माँग स्वतः समाप्त हो जायेगी।'' सांप्रदायिकता की समस्या सम्मेलन में सर्वाधिक विवादास्पद रही। सांप्रदायिक समस्या के हल के बारे में प्रतिनिधियों में कोई समझौता नहीं हो सका। मुस्लिम प्रतिनिधियों ने पृथक निर्वाचन प्रणाली पर बल दिया जबकि हिन्दू प्रतिनिधियों ने संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को स्थापित करने की माँग की। वे अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित करने के पक्ष में थे। जिन्ना अपनी 14 सूत्री माँगों को स्वीकार करने पर बल देते रहे। अम्बेडकर ने हरिजनों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की माँग की।

3.7.4 प्रथम गोलमेज सम्मेलन का परिणाम

प्रथम गोलमेज सम्मेलन असफल रहा। 19 जनवरी 1931 को बिना किसी निर्णय के सम्मेलन को समाप्त घोषित कर दिया गया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में

कांग्रेस के भाग नहीं लेने के कारण यह पूर्णतया असफल रहा। औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को भी स्वीकार नहीं किया गया था। इस सम्मेलन की असफलता से ब्रिटिश सरकार ने यह पूरी तरह से समझ लिया कि कांग्रेस के सहयोग के बिना भारत की कोई भी समस्या हल नहीं की जा सकती। अतः सरकार ने कांग्रेस के साथ समझौता करने पर बल दिया। कांग्रेस से समझौता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए वायसराय इरविन ने गाँधी जी तथा कांग्रेस कार्यसमिति के 19 सदस्यों को मुक्त कर दिया तथा कांग्रेस पर से प्रतिबंध समाप्त कर दिया।

3.8 गाँधी–इरविन समझौता (GANDHI-IRWIN AGREEMENT /PACT) (5 मार्च 1931 ई.)

3.8.1 समझौता की पृष्ठभूमि

प्रथम गोलमेज सम्मेलन की असफलता से ब्रिटिश सरकार समझ चुकी थी कि बिना कांग्रेस के सहयोग वह किसी भी भारतीय समस्या का हल नहीं कर सकती है। अतः कांग्रेस से समझौता करने के उद्देश्य से उसने कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल से रिहा कर दिया। 26 जनवरी 1931 को गांधीजी को जेल से छोड़ दिया गया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के बाद तेजबहादुर सप्रू एवं डॉ. एम.आर. जयकर गाँधी जी को यह परामर्श दिया कि यदि कांग्रेस सरकार के साथ वार्ता नहीं करेगी तो संभव है कि सरकार देशी रियासतों एवं अल्पसंख्यकों के साथ कोई ऐसा समझौता न कर ले जो भारत के हित में न हो। अतः उनके प्रयासों से गाँधी जी एवं कांग्रेस ने सरकार के साथ वार्ता करने की दिशा में सकारात्मक संकेत दिया।

3.8.2 गाँधी और इरविन के मध्य समझौता

सर तेजबहादुर सप्रू एवं डॉ0 एम.आर. जयकर के संयुक्त प्रयासों से गाँधी जी एवं वायसराय लॉर्ड इरविन के बीच 20 फरवरी 1931 से अत्यंत ही सौहार्दपूर्ण वातावरण में वार्तालाप शुरू हुआ। लंबी बातचीत के बाद द्वितीय गोलमेज सम्मेलन से पूर्व 5 मार्च 1931 को महात्मा गाँधी एवं तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इरविन के बीच एक राजनीतिक समझौता हुआ जिसे भारतीय इतिहास में गाँधी–इरविन समझौता (ळंदकीप.प्तूपद च्ंबज) के नाम से जाना जाता है। चूँकि यह समझौता दिल्ली में हुआ था, अतः इसे दिल्ली समझौता के नाम से भी जाना जाता है। इस समझौते को 26 से 29 मार्च 1931 तक चले कांग्रेस ने अपने 46वें वार्षिक अधिवेशन में जो कि कराँची में आयोजित किया गया, में स्वीकृति प्रदान किया था। सरदार पटेल ने करांची अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

3.8.3 समझौता की शर्तें

समझौते के परिणामस्वरूप सरकार ने निम्नलिखित आश्वासन दिया –

- सभी अध्यादेश और चालू मुकदमा वापस ले लिया जायेगा।

- हिंसात्मक अपराधों में गिरफ्तार बंदियों के अतिरिक्त सभी राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया जायेगा।
- आंदोलन के दौरान सरकार द्वारा आंदोलनकारियों की जब्त की गई संपत्ति को वापस कर दी जायेगी।
- समुद्र के किनारे निवास करने वाले लोगों को निःशुल्क नमक तैयार करने या एकत्रित करने की अनुमति दी जायेगी।
- शराब, अफीम एवं विदेशी वस्तुओं की दुकानों पर शांतिपूर्ण धरना देने की अनुमति दी जायेगी।
- आंदोलन के दौरान त्यागपत्र देने वालों को उनके पदों पर पुनः बहाल कर दिया जायेगा

कांग्रेस की ओर से गाँधी जी ने सरकार को निम्न आश्वासन दिया –

- कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर देगी।
- कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।
- कांग्रेस ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग नहीं करेगी।
- कांग्रेस आंदोलन के दौरान पुलिस द्वारा की गई ज्यादतियों की जाँच की माँग नहीं करेगी।
- कांग्रेस द्वारा यह समझौता स्वीकार न करने पर सरकार शांति एवं व्यवस्था के लिए आवश्यक कार्यवाही करने हेतु स्वतंत्र होगी।

3.8.4 गाँधी इरविन समझौते का मूल्याँकन

इस समझौते के परिणामस्वरूप कांग्रेस ने अपनी तरफ से सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त करने एवं दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने की घोषणा की। यह समझौता इसलिए भी महत्वपूर्ण था क्योंकि पहली बार ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के साथ समानता के स्तर पर समझौता किया। गाँधी–इरविन समझौते पर मिली–जुली प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटिश सरकार और गाँधी जी दोनों को ही कटुआलोचना का शिकार होना पड़ा। कांग्रेस के उदारवादी पक्ष ने इस समझौते का स्वागत किया जबकि वामपंथियों एवं नवयुवकों ने इस समझौते का विरोध किया। सुभाष चंद्र बोस ने इसे कांग्रेस की पराजय कहा। गाँधी जी सरकार से कोई महत्वपूर्ण मांग नहीं मनवा सके। महात्मा गाँधी, भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू की फाँसी की सजा को भी आजीवन कारावास में परिवर्तित करवाने में असफल रहे। इससे विक्षुब्ध होकर जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि ''भगत सिंह का शव हमारे और इंग्लैण्ड के बीच सदैव खड़ा रहेगा।'' महात्मा गाँधी, भगत सिंह एवं उनके साथियों को फाँसी से नहीं बचा सके

जिससे युवकों को अत्यधिक निराशा हुई। कुछ लोगों का कहना था कि अंग्रेज सरकार द्वारा भगत सिंह की सजा को परिवर्तित न करने पर गाँधी जी को समझौता वार्ता बीच में ही तोड़ देना चाहिए था।

गाँधी–इरविन समझौते ने कांग्रेस की प्रतिष्ठा को बढ़ाया और उसके प्रभाव का काफी विस्तार किया। यह समझौता वायसराय लॉर्ड इरविन की कूटनीतिक चालों की अभूतपूर्व सफलता थी। इस समझौते पर टाइम्स पत्र में यह टिप्पणी की गई कि ''इस प्रकार की विजय किसी वायसराय को बहुत कम ही मिलती है।'' गाँधी–इरविन समझौते के तत्काल बाद अनेक दुखद घटनाएँ घटी जिसमें 23 मार्च 1931 ई को भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव की फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान प्रमुख घटनाएँ थी।

3.9 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (7 सितम्बर 1931 ई – 1 दिसम्बर 1931 ई)

3.9.1 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की पृष्ठभूमि

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन से पूर्व इंग्लैण्ड की राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सम्मेलन से दो सप्ताह पूर्व ही इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार का पतन हो गया था तथा एक राष्ट्रीय सरकार का गठन किया गया जिसमें मजदूर, अनुदार एवं उदार तीनों दल सम्मिलित थे। कंजर्वेटिव पार्टी या अनुदार दल के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय सरकार की अध्यक्षता रैम्जे मैकडोनाल्ड कर रहे थें। सैमुअल होर भारत सचिव बना जो कट्टर अनुदारवादी था। लॉर्ड इरविन के स्थान पर लॉर्ड विलिंगटन को भारत का वायसराय किया गया। नवस्थापित राष्ट्रीय सरकार ने भारत की संवैधानिक समस्या का हल निकालने के लिए लंदन में दूसरे सम्मेलन को आयोजित किया।

3.9.2 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन 7 सितम्बर 1931 से 4 दिसम्बर 1931 के मध्य हुआ। 7 सितम्बर 1931 को लंदन में दूसरा गोलमेज सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से एकमात्र प्रतिनिधि गाँधी जी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। 29 अगस्त 1931 को गाँधी जी ने लंदन के लिए प्रस्थान किया। गाँधी जी सम्मेलन प्रारम्भ होने के 5 दिन बाद 12 सितम्बर 1931 को लंदन पहुँचे। यह सम्मेलन मात्र दिखावा था। इस सम्मेलन में ऐसे ही लोगों को बुलाया गया था जो सांप्रदायिक दृष्टि से सोचते थे। गाँधी जी के लंदन पहुँचने से पूर्व ही सभी निर्णय हो चुका था। इस सम्मेलन में जान बूझकर सरकार ने सांप्रदायिक समस्या को बढ़ावा दिया।

3.9.3 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के सहभागी

कांग्रेस – गाँधी इरविन समझौता के आधार पर कांग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग लिया। कांग्रेस की ओर से उसके एक मात्र प्रतिनिधि महात्मा गाँधी जी ने सम्मेलन में भाग लिया।

मुस्लिम लीग – मुस्लिम लीग की तरफ से मोहम्मद अली जिन्ना ने भाग लिया।

दलित वर्ग – दलितों की ओर से डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने भाग लिया।

पंडित मदनमोहन मालवीय एवं सरोजिनी नायडू ने व्यक्तिगत रूप से इस सम्मेलन में भाग लिया।

इस सम्मेलन में भाग लेने वाले अन्य प्रमुख नेताओं में घनश्याम दास बिड़ला, मोहम्मद इकबाल, मैसूर के दीवान सर मिर्जा इस्माइल, एम.के. दत्ता और सर सैयद अली इमाम शामिल थे।

3.9.4 वार्ता का आधार

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में मुख्यतः प्रस्तावित भारतीय संघ के प्रारूप और अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर नए संविधान के ढाँचा पर चर्चा हुई। इस सम्मेलन में निम्न विषय वार्ता के प्रमुख विषय थे –

- संघीय व्यवस्थापिका का निर्माण।
- संघीय न्यायपालिका का ढाँचा।
- केंद्र एवं प्रांतों के मध्य आर्थिक संसाधनों का बँटवारा।
- देशी राज्यों के भारत संघ में सम्मिलित होने का आधार।

3.9.5 प्रतिनिधियों की प्रतिक्रियाएँ

सभी वर्गों एवं संप्रदायों के प्रतिनिधियों ने वर्गीय हितों को प्रधानता दी। केवल गाँधी जी ने पूर्ण उत्तरदायी शासन की माँग की तथा कांग्रेस को भारत का एक मात्र राष्ट्रीय संस्था बताया। उनके इस दावे को तीन दलों ने चुनौती दी। मुस्लिम लीग का मानना था कि वह अल्पसंख्यकों मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं। देशी रियासतों के प्रतिनिधि इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे कि उनकी रियासतों पर कांग्रेस का प्रभाव है। डॉ0 वी.आर. अम्बेडकर का भी मानना था कि गाँधी जी और कांग्रेस निचली जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। फलतः वर्गीय स्वार्थों की टकराहट मुख्य मुद्दा बन गई। डॉ0 अम्बेडकर मुसलमानों के ही समान दलितों के लिए भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था चाहते थे। गाँधी जी इसके विरूद्ध थे। उनका कहना था कि ''अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचिका का प्रावधान करने से उनकी दासता स्थायी रूप ले लेगी तथा उनके प्रति कलंक का भाव और मजबूत हो

जायेगा। जरूरत इस बात की है कि अस्पृश्यता का विनाश किया जाए।''

डॉ0 अम्बेडकर महात्मा गाँधी के विचारों से असहमत थे। उन्होंने दलित वर्ग की दयनीय स्थिति पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा कि ''ऐसे अपंग समुदाय के पास संगठित निरंकुशता के विरूद्ध जीवन के संघर्ष का एकमात्र रास्ता यही है उसे राजनीतिक सत्ता में हिस्सा मिले जिससे वह अपनी रक्षा कर सके।'' गाँधी जी व अम्बेडकर के विचारों में भिन्नता से सम्मेलन में दलित वर्ग पर कोई आम सहमति नहीं बन सकी तथा सांप्रदायिक समस्या का भी कोई हल नहीं निकाला जा सका।

3.9.6 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का परिणाम

सम्मेलन में गाँधी जी ने कांग्रेस को भारत का एक मात्र राष्ट्रीय संस्था बताया जिसका अन्य सभी प्रतिनिधियों ने विरोध किया। गाँधी जी ने सभी वर्गों के प्रतिनिधियों को एकजुट करने का विफल प्रयास किया। सरकार ने गाँधी जी के दावे को ठुकरा दिया। सम्मेलन द्वारा ब्रिटेन विश्व को केवल यह दिखाना चाहता था कि वह भारतीय समस्या का हल चाहता है किन्तु भारतीय ही किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ हैं। सम्मेलन में संघीय न्यायपालिका का संगठन, संघीय विधानमण्डल का संगठन तथा भारतीय संघ में देशी रियासतों के प्रवेश से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर तो आम सहमति बन गई किन्तु सांप्रदायिक समस्या का कोई हल नहीं निकाला जा सका। दलित वर्ग पर भी कोई आम सहमति नहीं बन पाई। इस सम्मेलन की असफलता का प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार का विरोधी रूख था। वह भारत की समस्या का हल निकालने के लिए थोड़ा भी उत्सुक ,नहीं थी। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन भी असफल रहा। 1 दिसम्बर 1931 ई को यह सम्मेलन समाप्त हो गया। 28 दिसम्बर 1931 को गाँधी जी सम्मेलन से खाली हाथ वापस भारत लौट गये। स्वदेश पहुँचने पर उन्होंने कहा कि यह सच है कि ''मैं खाली हाथ लौटा हूँ किंतु मुझे संतोष है कि जो ध्वज मुझे सौंपा गया था, मैंने उसे नीचे नहीं होने दिया और उसके सम्मान के साथ समझौता नहीं किया।''

3.10 सांप्रदायिक पंचाट (16 अगस्त 1932 ई)

3.10.1 सांप्रदायिक पंचाट (COMMUNAL AWARD) की पृष्ठभूमि

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन पूर्णतया असफल रहा। इस सम्मेलन में सांप्रदायिक प्रश्नों पर विवाद उत्पन्न हो गया तथा भारतीय नेताओं का आपसी मतभेद खुलकर सामने आ गया। इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करना चाहती थी। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सांप्रदायिकता की समस्या का कोई हल नहीं निकाला जा सका था। सम्मेलन के दौरान ही ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने यह घोषणा की थी कि यदि कोई सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया तो ब्रिटिश सरकार इस समस्या का समाधान करेगी तथा

सरकार ने अपनी योजना को कार्यान्वित किया। अपनी कार्ययोजना के अंतर्गत सरकार ने मुसलमानों, सिक्खों, भारतीय ईसाई तथा दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया। 16 अगस्त 1932 को रैम्जे मैकडोनाल्ड ने अपने निर्णय की घोषणा की जिसे सांप्रदायिक निर्णय या पंचाट कहा जाता है।

3.10.2 सांप्रदायिक निर्णय के प्रमुख प्रावधान

- प्रांतीय विधानमंडलों की सदस्य संख्या दोगुनी कर दी गई।
- मुस्लिम बाहुल्य वाले दो प्रांतों – परिश्चमोत्तर सीमा प्रांत एवं सिंध के गठन की घोषणा की गई।
- अल्पसंख्यक वर्ग – मुस्लिम, सिख व ईसाई के लिए पृथक निर्वाचन एवं प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया।
- दलितों (अस्पृश्यों) को हिन्दुओं से अलग मानकर उन्हें भी पृथक निर्वाचन एवं प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया।
- प्रांतीय विधानमंडलों में स्त्रियों के लिए 3 प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर दिया गया।
- विभिन्न प्रांतों में प्रतिनिधित्व के संबंध में गुरूवार (ॅमपहीजंहम) की व्यवस्था की गई लेकिन उसे विशेष रीति से लागू करने की व्यवस्था की गई।
- जमींदारों के सुरक्षित स्थानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की गई।
- श्रम, वाणिज्य, उद्योग, चाय बगान संघों, विश्वविद्यालयों के लिए भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई तथा उनके लिए स्थान आरक्षित किये गये।

नोट : सांप्रदायिक निर्णय के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि जिन क्षेत्रों में हिन्दू अल्पसंख्यक स्थिति में थे, उन्हें वैसी रियायतें नहीं दी गई जैसा कि मुस्लिमों को दी गई थी। जिन प्रांतों में मुसलमानों की जनसंख्या कम थी, वहाँ उन्हें उनके जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया।

3.10.3 सांप्रदायिक निर्णय की आलोचना

सांप्रदायिक निर्णय को निर्णय नहीं कहा जा सकता है। किसी भी निर्णय में विरोधी पक्ष के निवेदन पर मध्यस्थ निर्णय देते हैं जो दोनों पक्षों को मान्य होता है कि किन्तु इस निर्णय में किसी भी पक्ष ने ब्रिटिश सरकार से मध्यस्थता के लिए कभी निवेदन नहीं किया था। वस्तुतः यह निर्णय भारतीयों पर उनकी इच्छा के विपरीत थोप दिया गया।

इस निर्णय के द्वारा हिन्दुओं के साथ अन्याय किया गया, विशेषकर पंजाब

एवं बंगाल में जहाँ हिन्दू अल्पमत में थे। इन प्रांतों में हिन्दुओं को उनकी जनसंख्या के अनुपात में व्यवस्थापिका सभाओं में कम प्रतिनिधित्व दिया। मुसलमानों एवं सिखों को हिन्दुओं की तुलना में उनकी कम आबादी होने के बावजूद अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया। विभिन्न प्रांतो में प्रतिनिधित्व के संबंध में दिये जाने वाले गुरुवार के संदर्भ में भी भारतीय ईसाईयों, आंग्ल–भारतीयों एवं यूरोपियनों के साथ काफी पक्षपात किया गया। भारतीय ईसाईयों को 300 प्रतिशत और यूरोप वासियों को 25000 प्रतिशत गुरुभार दिया गया।

- ➢ सांप्रदायिक निर्णय के माध्यम से सरकार दलितों को हिन्दू धर्म से पृथक करना चाहती थी। यह निर्णय हिन्दू संप्रदाय की एकता को नष्ट करने का प्रयास था।
- ➢ सांप्रदायिक निर्णय द्वारा मुसलमानों, ईसाईयों एवं दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व देकर ब्रिटिश सरकार भारतीयों की एकता को नष्ट कर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर कर देना चाहती थी।
- ➢ पृथक निर्वाचन व्यवस्था एवं प्रतिनिधित्व को अपनाकर करोड़ों दलितों को हिन्दू समुदाय से अलग करने की कोशिश की गई।
- ➢ भारतीयों की एकता को छिन्न–भिन्न करने ; विभिन्न वर्गों एवं संप्रदायों में फूट डाल कर भारत में सांप्रदायिकता की समस्या को और बड़ा बनाने का हर संभव प्रयास किया गया।
- ➢ पृथक निर्वाचन प्रणाली की मान्यता ने भारत की राष्ट्रीय एकता को सदा के लिए खतरा पहुँचा दिया। पाकिस्तान के निर्माण की माँग की पृष्ठभूमि इसी निर्णय में पायी जाती है।
- ➢ सांप्रदायिक निर्णय अप्रजातांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित था तथा इससे भारत में अधिनायकवाद सरकार की स्थापना की आशंका थी।
- ➢ सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का कोई ऐतिहासिक एवं संवैधानिक आधार नहीं है। किसी भी सभ्य देश में जाति, धर्म या लिंग के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रणाली नहीं पायी जाती है।

3.10.4 सांप्रदायिक निर्णय का मूल्यांकन

मूल रूप से यह घोषणा ''फूट डालो और शासन करो'' की नीति पर आधारित थी। सांप्रदायिक निर्णय द्वारा हिन्दू समाज की एकता को भंग करने का प्रयत्न किया गया था। इस निर्णय द्वारा हिन्दू समाज से दलितों को अलग कर दिया गया। इस निर्णय से ऊँची जाति के हिन्दुओं एवं दलितों के बीच बड़ी खाई पैदा हो गई थीं।

मैकडोनाल्ड के सांप्रदायिक निर्णय से जिन वर्गों के हितों की सुरक्षा की गई। उनके प्रतिनिधि प्रसन्न हुए जबकि दूसरी ओर राष्ट्रवादी नेताओं, कांग्रेस और गाँधी जी ने एक स्वर से सांप्रदायिक निर्णय का विरोध किया। लेकिन यह आश्चर्य की बात थी कि कांग्रेस कार्यकारिणी ने न तो इसे स्वीकार किया और न ही अस्वीकार। हालांकि कांग्रेस कार्यकारिणी के अधिकांश सदस्यों ने इस निर्णय को राष्ट्रहित के विरूद्ध बताया। मुस्लिम लीग इस निर्णय से पूर्णतया संतुष्ट थी। यह निर्णय अंग्रेजों की एक चाल थी जिसका लक्ष्य भारत में फूट का बीज बोकर ब्रिटिश शासन को कायम रखना था और उसमें वे काफी हद तक सफल रहे।

3.11 पूना समझौता (26 सितम्बर 1932 ई)

3.11.1 पूना समझौता की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड द्वारा सांप्रदायिक निर्णय की घोषणा करने पर गाँधी जी ने नाराजगी व्यक्त करते हुए सरकार को चेतावनी दी कि यदि सरकार इस घोषणा को अमल में लाती है तो वह इसके विरोध में आमरण अनशन करेंगे। सरकार ने महात्मा गाँधी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। 20 सितम्बर 1932 ई को महात्मा गाँधी ने जेल में ही मैकडोनाल्ड के सांप्रदायिक निर्णय के विरूद्ध आमरण अनशन शुरू कर दिया। गाँधी जी का स्वास्थ्य तेजी से खराब होने लगा तथा उनके जीवन को खतरा पैदा हो गया लेकिन सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तथा अपने निर्णय पर अड़ी रही। गाँधी जी की निरंतर गिरते स्वास्थ्य से कांग्रेसी नेता चिंतित हो उठे। गाँधी जी की दयनीय स्थिति को देखकर सी. राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद, मदन मोहन मालवीय, एम.सी. राजा ने डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के साथ 6 दिनों तक पूना में परस्पर वार्ता किया। उन्होंने एक ऐसा सूत्र निकाला जिस पर गाँधी जी एवं अम्बेडकर एकमत थे।

3.11.2 पूना समझौता

26 सितम्बर, 1932 को पूना की यरवड़ा सेंट्रल जेल में गाँधी जी एवं भीमराव अम्बेडकर के मध्य एक राजनीतिक समझौता हुआ जिसे गाँधी – अम्बेडकर समझौता या पूना समझौता कहा जाता है। यह एक लिखित समझौता था जिस पर अम्बेडकर एवं गाँधी जी सहित अन्य कांग्रेसी नेताओं ने हस्ताक्षर किया था। इस समझौता को ब्रिटिश सरकार ने भी अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। ब्रिटिश सरकार ने इस समझौते द्वारा सांप्रदायिक अधिनियम में संशोधन की अनुमति प्रदान की। मुस्लिम, बौद्ध, सिख, भारतीय ईसाई, एंग्लो इंडियन, यूरोपीय जैसे अन्य धर्मों के लिए मतदाता अलग–अलग रहे।

3.11.3 पूना समझौता की शर्तें या पूना समझौता के प्रावधान

- दलितों को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान की गई पृथक निर्वाचन प्रणाली

समाप्त कर दी गई।

- प्रांतीय विधानमण्डलों में दलितों के लिए पूर्व से आरक्षित स्थानों की संख्या 71 से बढ़ाकर 148 कर दिया गया।
- दलितों को भी सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में मत देने का अधिकार दिया गया।
- केंद्रीय विधानमंडल में दलितों के लिए 18 स्थान आरक्षित किये गये।

यह तय किया गया कि चार सुरक्षित स्थानों के लिए चुनाव दो स्तरों में होगा। शुरू में प्रत्येक सुरक्षित स्थानों के लिए दलित 4 प्रत्याशियों को चुनेंगे। अंत में हिन्दू एवं दलित संयुक्त रूप से उन चार प्रत्याशियों में से किसी एक प्रत्याशी को चुनेंगे। यह नियम 10 वर्षों तक लागू रहेगा। स्थानीय संस्थाओं एवं सार्वजनिक संस्थाओं में दलितों को समुचित प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई। दलितों के शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास के लिए समुचित प्रयास करने की व्यवस्था की गई।

3.11.4 पूना समझौता का मूल्यांकन

पूना समझौता संपन्न होने के उपरांत गाँधी जी ने अनशन समाप्त कर दिया। पूना समझौता के द्वारा अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली एवं प्रतिनिधित्व की माँग छोड़ दिया तथा संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार कर लिया। पूना समझौता कांग्रेस की पराजय थी क्योंकि सिद्धांततः उसने हिन्दू समाज में सांप्रदायिकता को स्वीकार कर लिया। इस समझौते के बाद अक्टूबर 1934 को कुछ समय के लिए गाँधी जी सक्रिय राजनीति से अलग हो गए तथा अपना ध्यान दलितों के उद्धार की ओर लगाया और अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रयास शुरू कर दिया इसके अंतर्गत उन्होंने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की व हरिजन नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया।

3.12 तृतीय गोलमेज सम्मेलन (17 नवम्बर 1932–24 दिसम्बर 1932 ई)

3.12.1 तृतीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन

भारत सचिव सर सैमुअल होर गोलमेज सम्मेलन का विरोधी था। इच्छा न होते हुए भी उसने तीसरा गोलमेज सम्मेलन बुलाया। यह सम्मेलन 17 नवम्बर 1932 को प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य भावी संविधान का प्रारूप तैयार करना था। इस सम्मेलन में विभिन्न दलों एवं वर्गों के 46 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में भारत से केवल राजभक्तों और सांप्रदायवादियों तथा ब्रिटेन से केवल उदारवादियों एवं प्रतिक्रियावादियों ने भाग लिया। मजदूर दल ने इस सम्मेलन के प्रतिनिधिहीन एवं प्रभावहीन होने के कारण इसमें सम्मिलित होने से इंकार कर दिया। कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार कर इसमें भाग नहीं लिया। जिन्ना ने भी इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन का अंत

कांग्रेस के किसी भी प्रतिनिधि के तीसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग नहीं लेने के कारण इस सम्मेलन में कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। सम्मेलन में केवल विगत दोनों गोलमेज सम्मेलनों की पुष्टि की गई तथा नए संविधान के विषय में कुछ प्रावधानों पर एकमत बना। सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधियों ने कुछ प्रगतिशील सुझाव रखें। भारतीयों के लिए मौलिक अधिकारों की मांग की गई, वायसराय के अधिकारों में कटौती करने का प्रस्ताव रखा गया। सरकार ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया। अतः यह सम्मेलन भी विफल हो गया। 24 दिसम्बर 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने तीसरे गोलमेज सम्मेलन को समाप्त घोषित कर दिया।

3.12 सारांश

सविनय अवज्ञा आंदोलन को अप्रत्याशित सफलता मिली। इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को तीव्र गति एवं मजबूती प्रदान की। इस आंदोलन के फलस्वरूप जनता में निर्भयता, स्वावलम्बन और त्याग आदि गुणों का विकास हुआ जो स्वतंत्रता की नींव है।

जनता ने अब यह समझ लिया कि यदि उन्हें अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त करना है तो उन्हें खुद प्रयास करना पड़ेगा और अंग्रेजों का डटकर सामना करना पड़ेगा। जनसाधारण वर्ग स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय रूप से आंदोलन में भाग लेने लगा। प्रथम गोलमेज सम्मेलन का उद्घाटन 12 नवम्बर 1930 को ब्रिटिश सम्राट जार्ज पंचम ने किया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के भाग नहीं लेने के कारण यह पूर्णतया असफल रहा। प्रथम गोलमेज सम्मेलन की असफलता से ब्रिटिश सरकार समझ चुकी थी कि बिना कांग्रेस के सहयोग वह किसी भी भारतीय समस्या का हल नहीं कर सकती है।

3.14 आदर्श प्रश्न

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के मुख्य कारणों को समझाइये।
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान घटित होने वाली मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिये।
3. नमक कानून से आप क्या समझते हैं ? दांडी यात्रा के महत्व को समझाइये।
4. पूना पैक्ट से आप क्या समझते हैं?

3.15 उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई — भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार	–	आधुनिक भारत 1885–1947
ए. त्रिपाठी	–	उग्रवादी चुनौती
पी. स्पीयर्स	–	द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)
डी. डाल्टन	–	महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति
सी.एच. हेमसथ	–	भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार
सुमित सरकार	–	बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)
रामलखन शुक्ला	–	आधुनिक भारत का इतिहास
सत्य राव	–	भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
जी.एन. सिंह	–	भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास
एस.सी. सरकार	–	बंगाल का नवजागरण
क्रिस्टोफर बेली	–	भारतीय समाज और ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण
बी.एल. ग्रोवर और यशपाल	–	आधुनिक भारत का इतिहास
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई–4 (भाग–II)

1935 ई का भारत सरकार अधिनियम और कांग्रेसी मंत्रिमंडल

इकाई की रूपरेखा :

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारत सरकार अधिनियम 1935; का परिचय

4.4 1935 के अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियाँ

4.5 भारत सरकार अधिनियम 1935 की विशेषताएँ

4.6 1935 के भारत सरकार अधिनियम के प्रमुख प्रावधान

4.6.1 गृह सरकार से संबंधित प्रावधान

4.6.2 अखिल भारतीय संघ से संबंधित प्रावधान

4.6.3 संघीय कार्यपालिका से संबंधित प्रावधान

4.6.4 संघीय विधानमंडल से संबंधित प्रावधान

4.6.5 संघीय न्यायालय से संबंधित प्रावधान

4.6.6 प्रांतीय स्वायत्तता से संबंधित प्रावधान

4.6.7 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्य प्रावधान

4.7 भारतीय सरकार अधिनियम 1935 की आलोचनाएँ

4.8 कांग्रेसी मंत्रिमंडल

4.8.1 1937 के निर्वाचन की पृष्ठभूमि

4.8.2 निर्वाचन में भागीदारी के संबंध में कांग्रेस के विचार

4.8.3 कांग्रेस का घोषणापत्र

4.8.4 1937 के निर्वाचन में दलों का प्रदर्शन

4.8.5 मंत्रिमंडल गठन से पूर्व कांग्रेस की रणनीति

4.9 कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल का गठन

4.9.1 कांग्रेस मंत्रिमंडल की उपलब्धियाँ

4.9.2 द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ एवं भारत की स्थिति

4.9.3 कांग्रेस की माँगों पर सरकार की प्रतिक्रिया

4.9.4 कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा त्यागपत्र

4.10 मुक्ति दिवस

4.11 कांग्रेसी मंत्रिमंडल का मूल्यांकन

4.12 सारांश

4.13 आदर्श प्रश्न

4.14 उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में हमने सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ–साथ तीनों गोलमेज सम्मेलनों का भी अध्ययन किया था। इन सम्मेलनों के उपरांत ब्रिटिश सरकार द्वारा 1935 का भारत सरकार अधिनियम प्रस्तुत किया गया। यह अधिनियम आगे की महत्वपूर्ण घटनाओं का भी आधार बना। इस इकाई में हम 1935 का भारत सरकार अधिनियम को जानने के साथ इसके तहत होने वाले निर्वाचन एवं तत्पश्चात गठित होने वाली कांग्रेस मंत्रिमंडल का भी अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को 1935 के भारत सरकार अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों से परिचित कराना है। यह इकाई कांग्रेस मंत्रीमंडलों के गठन, मंत्रिमंडल के त्याग पत्र तथा लीग द्वारा आयोजित मुक्ति दिवस की जानकारी प्रदान करेगी तथा इन घटनाओं का राष्ट्रीय आंदोलन पर पड़ने वाले प्रभावों की समझ भी विकसित करेगी।

4.3 भारत सरकार अधिनियम – 1935 का परिचय

1935 ई के भारत सरकार अधिनियम उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। 1919 ई के भारत सरकार अधिनियम से भारतीय जनता तथा राजनीतिक दल पूर्णतः असंतुष्ट थे। कांग्रेस ने इसे अपर्याप्त, असंतोषजनक व निराशापूर्ण बताया था। अतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की गति तीव्र हो गई। फलस्वरूप 1919 के सुधारों की जाँच करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 में साइमन कमीशन को नियुक्त कर भारत भेजा। लेकिन कमीशन में कोई भारतीय सदस्य न होने के कारण भारतीयों ने उसका बहिष्कार किया। तत्पश्चात भारतीय नेताओं ने नेहरू रिपोर्ट तैयार की, जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गई थी। कांग्रेस ने 1929 ई में लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की माँग की। सभी दलों ने साइमन कमीशन की रिपोर्ट का बहिष्कार किया। भारत के भावी संविधान की

रचना के लिए 1930, 1931 एवं 1932 में क्रमशः तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया जो असफल रहा। अंत में ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1993 ई में एक श्वेत–पत्र जारी किया। इस पर ब्रिटिश संसद की एक संयुक्त प्रवर समिति का गठन लॉर्ड लिनलिथगों के नेतृत्व में श्वेत पत्र पर विचार करने के लिए गठित की गई। 22 नवम्बर 1934 को समिति ने अपनी रिपोर्ट दी। इसी रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1935 ई का भारत सरकार अधिनियम पारित किया।

4.4 1935 के अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियाँ

भारतीय जनता 1919 के भारत सरकार अधिनियम से अप्रसन्न थी। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों ने 1919 के अधिनियम का विरोध किया। 1919 के मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों को कांग्रेस ने असंतोषजनक, अपर्याप्त और निराशाजनक कहा तथा दिसम्बर 1921 में असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया। जिसके अंतर्गत केंद्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलों का बहिष्कार करना सम्मिलित था। 1935 के भारत शासन अधिनियम के पारित होने के लिए निम्न कारक उत्तरदायी थे।

(i) **स्वराज्य दल की भूमिका** – स्वराज्य दल 1919 के अधिनियम के अंतर्गत किये गये सुधारों से अप्रसन्न थी तथा उसे अपर्याप्त मानती थी। दल के सदस्यों ने विधानमंडलों में अधिनियम का व्यापक विरोध किया तथा उसमें संशोधन के लिए प्रस्ताव पारित किया। जब सरकार ने उनकी माँगों की ओर ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने सरकारी कार्यों में अवरोध उत्पन्न करना शुरू कर दिया। स्वराज्यवादियों की अडंगा डालने की नीति के फलस्वरूप सरकार सुधार की दिशा में कार्य करने के लिए बाध्य हुई।

(ii) **साइमन कमीशन की भूमिका** – 1927 में सरकार ने साइमन कमीशन को नियुक्त कर अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार कर लिया था कि मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार असफल रहा। दूसरी ओर 1923 के निर्वाचन में कांग्रेस को मिली अप्रत्याशित सफलता से सरकार चिंतित थी। साथ ही लंदन में लॉर्ड बर्केनहैड भी कमीशन के गठन का श्रेय आगामी उदारवादी सरकार को नहीं देना चाहते थे। जनता साइमन कमीशन की नियुक्ति से अप्रसन्न थी। भारतीयों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार किया। कमीशन की रिपोर्ट में जो सिफारिशें की गई थी, वह मांटेग्यू–चेम्सफौर्ड सुधार की कमियों तथा आगामी सुधारों की आवश्यकता को रेखांकित कर रही थी।

(iii) **नेहरू रिपोर्ट** – 1928 ई में भारत सचिव बर्केनहैड के भारतीयों द्वारा सर्वसहमति से एक संविधान बनाने की चुनौती के फलस्वरूप एक सर्वदलीय सम्मेलन में पंडित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक संविधान निर्मात्री समिति का गठन किया गया, जिसने भारत के भावी संविधान की रूपरेखा बनाई ; जिसे नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। इसमें भारत के लिए औपनिवेशिक

स्वराज्य की माँग की गई। नेहरू रिपोर्ट ने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था की काफी आलोचना की तथा उसके स्थान पर अल्पसंख्यकों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की मांग की। इसने संपूर्ण भारत के लिए एकीकृत संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की जिससे केंद्र तथा सभी प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता मिल सके।

(iv) गोलमेज सम्मेलनों की भूमिका – 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिससे भारतीय असंतुष्ट थे। भारत की शासन व्यवस्था से संबंधित भावी सुधारों पर भारतीय राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों से वार्ता करने के लिए 1930, 1931 व 1932 में तीन गोलमेज सम्मेलन लंदन में आयोजित किये गये थे। इन सम्मेलनों का सर्वप्रमुख उद्देश्य भारत के संविधानिक विकास पर भारत के सभी दलों के साथ विचार–विमर्श करना तथा आगे की रणनीति तय करना था। सभी दलों के अपने–अपने हितों एवं स्वार्थों तथा ब्रिटिश सरकार के उपेक्षापूर्ण नीति के कारण इन सम्मेलनों में कोई विशेष उपलब्धि हासिल नहीं हो सकी।

(v) लॉर्ड इरविन की घोषणा – अक्टूबर 1929 ई में लॉर्ड इरविन ने रैम्जे मैकडोनाल्ड के नेतृत्व में नवगठित मजदूर दल की सरकार से विचार–विमर्श करके घोषणा की कि भारत की उन्नति का अंतिम चरण डोमिनियन स्टेटस प्राप्त करना है। साथ ही उन्होंने लंदन में गोलमेज सम्मेलन के आयोजन की भी घोषणा की जिसमें साइमन आयोग की रिपोर्ट पर विचार–विमर्श होना था। इस सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार, भारतीय अंग्रेजी प्रदेश, भारतीय रियासतों, भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों के भाग लेने की बात कही गई।

(vi) सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा अन्य परिस्थितियाँ – 1932–33 में महात्मा गाँधी व कांग्रेस द्वारा चलायी गयी राष्ट्रीय आंदोलन को दबाने में तो सरकार सफल हो गई किन्तु उसे यह अनुभव हो गया कि आगामी समय में दमनकारी नीति द्वारा राष्ट्रवादी भावनाओं को दबाना असंभव है। अतः आने वाले समय में किसी भी आंदोलन के जन्म लेने की संभावना को खत्म करने तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को दुर्बल करने के लिए सरकार ने 1935 का अधिनियम पारित किया। सरकार को उम्मीद था कि इस अधिनियम को पारित कर सरकार कांग्रेस के एक बड़े खेमे को संतुष्ट कर अपने पक्ष में कर लेगी तथा शेष को दबा देगी। इसी नीति को कार्यान्वित करने के लिए 1935 में भारत शासन अधिनियम पारित किया गया।

(vii) श्वेत पत्र – तीन गोलमेज सम्मेलनों में लिये गये विभिन्न निर्णयों के आधार पर 1933 ई में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र जारी किया। उस श्वेत पत्र

पर विचार करने के लिये ब्रिटिश संसद ने एक प्रवर समिति की नियुक्ति की, जिसकी रिपोर्ट के आधार पर 1935 का भारत शासन अधिनियम पारित किया गया।

इस अधिनियम के निर्माण के लिए निम्न मसौदों की सहायता ली गई।

- ➢ साइमन आयोग प्रतिवेदन
- ➢ नेहरू समिति प्रतिवेदन
- ➢ गोलमेज सम्मेलनों में लिये गये निर्णय
- ➢ ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी श्वेत पत्र
- ➢ संयुक्त प्रवर समिति का प्रतिवेदन

लोथियां प्रतिवेदन जिसमें निर्वाचन संबंधी प्रावधानों का वर्णन था। प्रवर समिति की रिपोर्ट पर आधारित एक विधेयक दिसम्बर 1934 में ब्रिटिश संसद में पेश किया गया जिसे पर्याप्त विचार विमर्श कर ब्रिटिश संसद ने पारित कर दिया। 2 अगस्त 1935 को ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति मिलने के बाद यह कानून बन गया।

4.5 भारत सरकार अधिनियम 1935 की विशेषताएँ

(i) **प्रस्तावना** – 1935 ई के अधिनियम के लक्ष्य के संबंध में कोई नई घोषणा नहीं की गई। इसका वही लक्ष्य रखा गया, जो 1919 ई के अधिनियम का था। 1919 के अधिनियम को रद्द करने के बावजूद इसकी प्रस्तावना को 1935 के अधिनियम के साथ जोड़ दिया गया, जिससे भारतीयों को यह पता रहे कि ब्रिटिश सरकार का अंतिम लक्ष्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।

(ii) **लंबा प्रलेख (Lengthy Document)** – 1935 का भारतीय शासन अधिनियम बहुत लम्बा और जटिल प्रलेख था। इसमें 14 भाग, 321 धाराएँ और 19 परिशिष्ट थे। इसमें केद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के ढाँचे का विस्तृत वर्णन किया गया था। इसके अतिरिक्त एक बहुत ही जटिल संघात्मक व्यवस्था तथा अल्पसंख्यकों और जनप्रतिनिधियों के कानूनी संरक्षण का प्रावधान किया गया था। भारत के संवैधानिक विकास की प्रक्रिया में इस अधिनियम का सर्वाधिक महत्व है। स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान का आधार भी यही अधिनियम बना। विश्व के लम्बे एवं जटिल संविधानों में इसका स्थान आता है।

(iii) **ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता** – इस अधिनियम के अंतर्गत ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता पूर्ववत बनी रही। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में संशोधन, सुधार या रद्द करने का अधिकार संसद के पास था। अधिनियम में किसी भी

प्रकार के परिवर्तन का अधिकार प्रांतीय व संघीय विधानमंडलों को नहीं दिया गया। वे केवल विशेष परिस्थितियों में कुछ विषयों के संबंध में सुझाव दे सकते थे परन्तु उस पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार ब्रिटिश संसद के पास था। इस प्रकार, भारतीय भाग्य के निर्माण की अंतिम सत्ता ब्रिटिश संसद के पास बनी रही।

(iv) प्रांतीय स्वायत्तता – 1935 के अधिनियम की सबसे बड़ी विशेषता प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की। इसके पूर्व प्रांतों में केवल आंशिक उत्तरदायित्व था तथा प्रांतीय सरकारों को एजेंट के रूप में भारत सरकार के अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण में कार्य करना पड़ता था। लेकिन 1935 ई के अधिनियम द्वारा प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी गई और उसमें पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया। प्रांतों में लागू द्वैध शासन प्रणाली का अंत कर दिया गया। प्रांतों को प्रांतीय विषयों पर केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना कानून बनाने का अधिकार दिया गया। प्रांतीय विषयों के शासन का भार ऐसे मंत्रियों को सौंपा गया जो विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी थे। मंत्रिमंडल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर आधारित था। यद्यपि गवर्नर ही कार्यपालिका का प्रधान था परन्तु उससे यह आशा की गई थी वह मंत्रियों के सलाह के आधार पर ही प्रशासन का संचालन करेगा। इस प्रकार प्रांतीय शासन की पूरी जिम्मेदारी प्रांतीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के हाथों में सौंपा गया।

(v) केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना – इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर उसे केन्द्र में लागू किया गया। प्रस्तावित संघीय योजना में कार्यपालिका का अध्यक्ष गवर्नर जनरल होता था। उसके अधीन केंद्रीय विषयों के प्रशासन के लिए कार्यपालिका परिषद व मंत्रियों की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय विषयों को दो भागों – आरक्षित व हस्तांरित विषय में विभाजित किया गया। आरक्षित विषय में प्रतिरक्षा, विदेश नीति, ईसाई धर्म संबंधित विषय, ै ह के क्षेत्रों से संबंधित विषयों को गवर्नर जनरल के अधीन संरक्षित कर दिया गया। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर जनरल स्वविवेक से करता था, जिसके लिए वह कार्यपालिका परिषद के सदस्यों को नियुक्त करता था। हस्तांरित विषयों के प्रशासन के लिए गवर्नर जनरल को सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मंत्रिमंडल की स्थापना की गई थी। ये मंत्री विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी थे। मंत्रियों की संख्या 10 से अधिक नहीं होती थी तथा वे गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त एवं पदच्युत होते थे। मंत्रियों के लिए कुछ योग्यताएँ निर्धारित की गई। गवर्नर जनरल को आरक्षित व हस्तांरित दोनों विषयों के शासन संचालन का अधिकार दिया गया परन्तु उससे आशा की गई कि वह हस्तांरित विषयों के शासन का संचालन मंत्रियों

की सहायता से करेगा। किन्तु हस्तांरित विषयों के संबंध में गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार दिये गये थे। अतः उचित व्यवस्था के नाम पर वह मंत्रियों के कार्य में हस्तक्षेप कर सकता था। वस्तुतः संघ में उत्तरदायी सरकार की स्थापना एक विडम्बना थी।

(vi) **अखिल भारतीय संघ –** 1935 के अधिनियम के अनुसार यह निर्णय किया गया कि केन्द्र में ब्रिटिश प्रांतों और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ स्थापित किया जाएगा। यह संघ 11 ब्रिटिश गवर्नर प्रांतों, 06 चीफ कमिश्नरी क्षेत्र एवं देशी राज्यों को मिलाकर बनाया जाना था। यह संघ दो शर्तों के पूरे होने के बाद शाही घोषणा द्वारा स्थापित किया जाना था –

संघीय संसद के दोनों सदन सम्राट को संघ की स्थापना हेतु प्रार्थना करें।

जब इतनी भारतीय देशी राज्यें विलयन की स्वीकृति दें दे जितनी कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती प्रजा की जनसंख्या की आधी से अधिक हों और जो संघीय राज्य सभा में 52 स्थानों से अधिक स्थानों की अधिकारी हो।

अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश प्रांतों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था, परन्तु देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। संघ में शामिल होने वाले देशी राज्यों को एक संधि पर हस्ताक्षर करना पड़ता था, जिसमें संघ में शामिल होने की शर्तों व रियासत द्वारा संघ को समर्पित शक्तियों का उल्लेख होता था। संघ की समस्त इकाईयों को अपने आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी। केन्द्र में एक संघीय कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई। संघ व इसकी इकाईयों के झगड़ों को सुलझाने के लिए एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। देशी राज्यों द्वारा संघ में सम्मिलित नहीं होने के कारण प्रस्तावित संघ की स्थापना न हो सकी।

(vii) **विषयों का बँटवारा –** संघ की स्थापना के कारण संघीय व प्रांतीय सरकारों के कार्य–क्षेत्रों से संबंधित विषयों का संविधान में अलग–अलग उल्लेख किया गया था। समस्त विषयों को तीन सूचियों–संघीय सूची, प्रांतीय सूची व समवर्ती सूची में विभाजित किया गया। केंद्रीय सूची के विषयों पर केन्द्र को, प्रांतीय सूची के विषयों पर प्रांत को और समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र तथा प्रांत दोनों का कानून बनाने का अधिकार था। संकट की स्थिति व दो या दो से अधिक प्रांतीय विधानमंडलों द्वारा विशेष प्रार्थना करने पर केन्द्र प्रांतीय विषयों पर कानून बना सकता था। समवर्ती सूची के विषयों पर कानून के संबंध में केन्द्र और प्रांत के विरोध होने पर केन्द्र के कानून को मान्यता प्राप्त होती थी। संघीय सूची में 59, प्रांतीय सूची में 54 व समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे। अवशिष्ट शक्तियों के बारे में यह व्यवस्था की गई थी कि गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से केंद्रीय या प्रांतीय विधानमंडल

को इन विषयों पर कानून बनाने की शक्ति दे सकता था।

(viii) संघीय न्यायालय – 1935 के अधिनियम के द्वारा भारत में एक संघीय न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था भी की गई थी। इसका प्रमुख कार्य संघ व प्रान्तों के मध्य तथा प्रान्तों के आपसी विवादों का निपटारा करना था। इसे अधिनियम की धाराओं की व्याख्या करने का भी अधिकार दिया गया। संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश व 06 अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान था लेकिन दो ही न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। संघीय न्यायालय अपील की सर्वोच्च न्यायालय नहीं थी। इसके निर्णयों के विरूद्ध अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी। संघीय न्यायालय का मुख्यालय दिल्ली में था। इसके न्यायाधीशों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी।

(ix) विधान मंडलों का विस्तार – 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय व केंद्रीय विधानमंडलों क सदस्य संख्या में काफी वृद्धि की गई। केन्द्र में लोकसभा के सदस्यों की संख्या 375 व राज्य सभा के सदस्यों की संख्या 260 निर्धारित की गई। प्रांतीय विधानसभा की सदस्यता भी पूर्व की अपेक्षा दोगुनी कर दी गई और 6 प्रांतों में द्विसदनात्मक विधानमंडलों का गठन किया गया।

(x) मताधिकार का विस्तार – 1935 ई के अधिनियम के अंतर्गत मताधिकार का भी विस्तार किया गया। प्रांतों के लिए 10 प्रतिशत जनता को वोट देने का अधिकार दिया गया । लेकिन साथ–ही–साथ सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति को भी अत्यधिक व्यापक बनाया गया।

(xi) सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति को कायम रखना – 1935 ई के अधिनियम के द्वारा अंग्रेजों ने सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को बरकरार रखने के साथ उसका और अधिक विस्तार किया। हरिजनों के लिए सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति को अपनाया गया। केन्द्रीय विधानमंडल में ब्रिटिश भारत से 33 $\frac{1}{2}$ प्रतिशत स्थान प्रदान किया गया, यद्यपि उनकी संख्या इस अनुपात में नहीं थी। ईसाइयों, आंग्ल भारतीयों तथा यूरोपीयों को पूर्व की तरह ही सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति के अंतर्गत प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इस अधिनियम द्वारा मजदूरों व स्त्रियों को प्रतिनिधित्व से अलग अधिकार दिये गये।

(xii) संरक्षण एवं आरक्षण – प्रांतीय क्षेत्र में प्रांतीय स्वायत्तता व केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन दोनों पर ही अनेक सीमाएँ व प्रतिबंध लगाए गए थे। गवर्नर जनरल व गवर्नरों को विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये थे, जिनके लिए उन्हें विशेष शक्तियों तथा मंत्रियों के विरूद्ध स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति दी गई। इन्हीं शक्तियों को संरक्षण एवं आरक्षण कहा जाता है। इनके द्वारा एक ओर विधानमंडलों की शक्तियों पर अनेक सीमाएँ लगी हुई थी तो

दूसरी ओर गवर्नर जनरल व गवर्नरों को मंत्रियों के परामर्श के विरूद्ध कार्य करने तथा उनके कार्यों के हस्तक्षेप करने की विभिन्न शक्तियाँ प्रदान की गई थी। आपातकाल में आवश्यकता पड़ने पर तो गवर्नर जनरल संपूर्ण शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले सकता था।

(xiii) **भारतीय परिषद की समाप्ति** – 1935 के अधिनियम के द्वारा भारत परिषद को समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर भारत सचिव के लिए कुछ परामर्शदाता नियुक्त किये गये, जिनकी संख्या कम से तीन व अधिकतम 6 निर्धारित की गई। इन परामर्शदाताओं से परामर्श लेना या ना लेना भारत मंत्री की इच्छा पर निर्भर था। लेकिन सेवाओं के संबंध में भारतमंत्री के लिए इन परामर्शदाताओं का परामर्श मानना आवश्यक था। हस्तांतरित विषयों के संबंध में भारत सचिव का नियंत्रण काफी कम कर दिया गया था लेकिन जिन विषयों में गवर्नर जनरल व गवर्नरों को स्वविवेकी शक्तियाँ प्राप्त थी, उनपर भारत सचिव का नियंत्रण पूर्व की भांति बरकरार रहा।

(xiv) **वर्मा, बरार और अदन** – इस अधिनियम द्वारा वर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। अदन को भारत सरकार के नियंत्रण से मुक्त करके इंग्लैण्ड के उपनिवेश कार्यालय के अधीन कर दिया गया। बरार प्रांत को वैधानिक दृष्टि से हैदराबाद के निजाम की सत्ता के अधीन कर दिया गया लेकिन प्रशासन की दृष्टि से बरार को मध्य प्रांत का एक अंग बना दिया गया। इस प्रकार मध्य प्रांत व बरार को एक गवर्नरी का प्रांत घोषित किया गया।

(xv) **हाई कमिश्नर की नियुक्ति** – 1919 के अधिनियम द्वारा ही भारत के लिए इंग्लैण्ड में एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम के द्वारा उसके संबंध में यह परिवर्तन न लाया गया कि अब इसकी नियुक्ति सपरिषद गवर्नर–जनरल के द्वारा न होकर गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार होगा। उसका कार्यकाल पाँच वर्ष का होगा। उसके निम्नलिखित कार्य थें –

- इंग्लैण्ड में भारतीय हितों की देखभाल।
- इंग्लैण्ड में भारत सरकार के लिए आवश्यक वस्तुओं को खरीदना।
- भारत की तरफ से ब्रिटिश सरकार से अनुबंध करना।
- इंग्लैण्ड में भारतीय विद्यार्थियों को हर तरह की सुविधाएँ दिलाना।
- यूरोप के अन्य देशों में जो भारतीय किसी विशेष प्रशिक्षण के लिए जाते थे, उनकी सभी सुविधाओं का प्रबंध करना।

निष्कर्ष – 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा भारतीय संवैधानिक विकास के मार्ग को स्पष्ट कर दिया गया था। इसके द्वारा कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कदम उठाये गये

थे जो प्रशसंनीय थे – प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना। इसके द्वारा संघात्मक व्यवस्था की नींव डालकर भारतीयों को प्रशासन का प्रशिक्षण देने का सुंदर प्रयास किया गया। इसके कुछ विपरीत पक्ष भी थे। जैसे – संरक्षण एवं आरक्षण की व्यवस्था, सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति आदि। फिर भी भारतीय संवैधानिक विकास की दृष्टि से इसका अत्यधिक योगदान है। स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान का आधार भी यही अधिनियम बना।

4.6 1935 के भारत सरकार अधिनियम के प्रमुख प्रावधान

1935 ई के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत भारत की शासन व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों के अतिरिक्त शेष प्रावधान 1919 के अधिनियम से ही या तो यथावत या कुछ परिवर्तनों के साथ लिया गया था। सैद्धांतिक रूप से भारत सरकार ही भारत के कल्याण, राजनीतिक प्रगति और शासन के लिए उत्तरदायी थी, जो अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी। यह अधिनियम एक अत्यंत ही विस्तृत प्रलेख था। इसमें भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था, अधिकारियों एवं विधानमंडल के सदस्यों के कार्य शक्तियाँ एवं कदाचार के विरूद्ध संरक्षण संबंधी प्रावधान का विस्तृत उल्लेख है। इस अधिनियम के मुख्यतः चार अंग हैं –

A. गृह सरकार

B. अखिल भारतीय संघ

C. संघीय व्यवस्था

D. प्रांतीय स्वायत्तता

4.6.1 ब्रिटेन स्थित गृह सरकार से संबंधित प्रावधान

1. **क्राउन से संबंधित प्रावधान** – प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन तथा केंद्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाने के कारण भारत पर से भारत सचिव के नियंत्रण को शिथिल कर दिया गया तथा संसद द्वारा निर्मित कानून के माध्यम से भारत सचिव के समस्त निर्देशन, नियंत्रण और निरीक्षण की समस्त शक्तियाँ क्राउन को हस्तांरित कर दिया गया। 1935 ई के अधिनियम द्वारा क्राउन को निम्न अधिकार एवं कर्त्तव्य सौंपे गये थे –

    - क्राउन को गवर्नर जनरल, प्रांतीय गवर्नर, भारतीय सेना के सेनापति व संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया।
    - क्राउन को ही देश के प्रांतों को भारत संघ में सम्मिलित होने के लिए स्वीकृति देने का अधिकार था।
    - क्राउन को गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय गवर्नरों को आदेश पत्र जारी

करने का अधिकार था।

- क्राउन आर्डर इन कौंसिल जारी कर सकता था।
- क्राउन ही सेना के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति तथा सेना का प्रयोग कर सकता था।
- क्राउन को संघीय तथा प्रांतीय कानूनों को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार था।
- क्राउन को गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय गवर्नरों द्वारा जारी अध्यादेश को अस्वीकृत करने का अधिकार था।
- भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी क्राउन के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रह सकते थें।
- ब्रिटिश भारत की संपूर्ण भूमि तथा खानों पर नियंत्रण एवं पूर्ण स्वामित्व क्षमादान देना।
- उपाधियाँ प्रदान करना
- प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करना
- वैदेशिक मामलों पर नियंत्रण
- युद्ध और शांति की घोषणा करना।

2. भारत सचिव के संबंध में प्रावधान –

प्रांतों में स्वायत्त शासन तथा केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाने के कारण भारत सचिव की स्थिति में 1935 के अधिनियम द्वारा कुछ विषयों के संबंध में परिवर्तन कर दिया गया जबकि शेष विषयों के संबंध में 1919 के अधिनियम में वर्णित प्रावधान को यथावत बरकरार रखा गया।

1. 1935 के अधिनियम द्वारा भारत सचिव को भारतीय मामलों में क्राउन के संवैधानिक परामर्शदाता के रूप में कार्य करने की व्यवस्था की गई।
2. जिन मामलों में गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय गवर्नरों को स्वविवेक से निर्णय लेने का अधिकार था, उन विषयों पर भारत सचिव का नियंत्रण यथावत बरकरार रहा। मात्र सैद्धान्तिक रूप से ही भारत सचिव की शक्तियों को क्राउन को हस्तांरित किया गया जबकि व्यावहारिक रूप में क्राउन को सौंपे गये शक्तियों एवं कार्यों को भारत सचिव के परामर्श से ही संपादित किया जाता था।
3. संरक्षित विषयों – प्रतिरक्षा, विदेश नीति, चर्च संबंधी विषय, जनजातीय

क्षेत्र, रेलवे, रिजर्व बैंक आदि विषयों पर भारत सचिव का नियंत्रण पूर्ववत बना रहा।

4. भारत सचिव ही आर्डर इन कौंसिल जारी करता था।

5. भारत सचिव ही देशी रियासतों के संबंध में क्राउन की शक्तियों का प्रयोग करता था।

6. भारत सचिव ही भारत के महालेखाकार तथा गृह विभाग के आय–व्यय के जाँच संबंधी वार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त करता था तथा उसे विचार के लिए ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत करता था।

7. भारत सचिव ही ब्रिटेन में संघीय व प्रांतीय सरकारों की ओर से वित्त संबंधी कार्यों को संपादित करता था।

8. वह ही ठेका एवं देनदारियों संबंधी कार्यों को करता था।

9. भारत सचिव की गवर्नर जनरल एवं प्रांतीय गवर्नरों द्वारा स्वीकृति के लिए भेजे गये अध्यादेशों एवं विधेयकों को विचार के लिए ब्रिटिश संसद एवं क्राउन के समक्ष प्रस्तुत करता था।

10. वह भारत के शासन संबंधी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था।

11. भारत सचिव ही भारत की सीमाओं की रक्षा करने के लिये सेना का प्रयोग करता था।

    इस प्रकार स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक रूप से भारत सचिव के पास शासन संबंधी कोई उत्तरदायित्व नहीं था किन्तु वास्तव में शासन संबंधी सभी अधिकार उसी के नियंत्रण में थे। क्राउन को उसी के परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ता था तथा भारत स्थित गवर्नर जनरल व प्रांतीय गवर्नरों को उसके प्रत्येक निर्देश का पालन करना पड़ता था।

12. भारतीय मामलों की सारी सूचनाएँ ब्रिटिश संसद को देना तथा संसद सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना आदि भारत सचिव का महत्वपूर्ण कार्य था।

3. **भारत सचिव के परामर्शदाता (Adviseres of Secretary of State)** – 1935 के अधिनियम द्वारा भारत परिषद को समाप्त कर उसके स्थान पर भारत सचिव को परामर्श देने के लिए कुछ परामर्शदाताओं को नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। परामर्शदाताओं की संख्या 6 तक हो सकती थी। परामर्शदाता के रूप में नियुक्त होने के लिए शर्त यह थी कि कम से कम

आधे सदस्य ऐसे हो जो भारत में किसी भी पद पर 10 वर्ष रहे हो तथा उन्हें भारत छोड़े दो वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। इन परामर्शदाताओं का कार्यकाल 5 वर्ष का था। इन्हें पुनः नियुक्त किया जा सकता था। परामर्शदाताओं को इंग्लैण्ड के राजकोष से वेतन देने की व्यवस्था की गई। उन्हें 1350 पौंड वार्षिक वेतन प्राप्त होता था। अधिनियम में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि निम्न विषयों के संबंध में भारत सचिव परामर्शदाताओं की सहमति से कार्य करेगा तथा शेष विषयों के संबंध में वह परामर्शदाताओं के परामर्श को मानने से इंकार कर सकता था।

- अप्रैल 1937 ई से पूर्व नियुक्त सरकारी अधिकारियों के संबंध में।
- क्राउन के द्वारा देशी रियासतों से संबंधित किये गये कार्यों के संबंध में।
- सम्राट द्वारा भारत की सेना की सेवा संबंधी शर्तों के संबंध में जारी आदेश।
- इंग्लैण्ड में ऋण की प्राप्ति।

4. **भारतीय उच्चायुक्त (Indian high commissioner) –**

1919 ई के अधिनियम के अंतर्गत इंग्लैण्ड में भारतीय उच्चायुक्त को नियुक्त करने का प्रावधान किया था तथा 1935 के अधिनियम द्वारा उसके पद एवं अधिकार के संबंध में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं किया गया। उच्चायुक्त की नियुक्ति के संबंध में मात्रा यह परिवर्तन किया गया कि अब भरतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति सपरिषद गवर्नर जनरल न होकर मात्र गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत निर्णय द्वारा होगा। उसका कार्यकाल पाँच वर्ष का था। भारतीय उच्चायुक्त के निम्नलिखित कार्य थे –

- इंग्लैण्ड में भरतीयों के हितों का संरक्षण करना।
- इंग्लैण्ड में भारत सरकार के लिए आवश्यक वस्तुओं का क्रय करना।
- भारत सरकार की ओर से ब्रिटिश सरकार के साथ अनुबंध करना।
- इंग्लैण्ड में भारतीय छात्रों को सभी सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।
- यूरोप में विभिन्न देशों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए जाने वाले भारतीयों के लिए सभी सुविधाएँ उपलब्ध करवाना।

4.6.2 अखिल भारतीय संघ से संबंधित प्रावधान

इस अधिनियम के अनुसार भारत के लिए एक संघीय व्यवस्था को स्थापित करने का प्रावधान किया गया था। इस अखिल भारतीय संघ में सभी 11 ब्रिटिश

भारतीय प्रांतों, 6 चीफ कमिश्नरी प्रांत और स्वदेशी रियासतों को सम्मिलित होना था। संघ में ब्रिटिश भारत के प्रांतों के लिए सम्मिलित होना अनिवार्य था, जबकि देशी रियासतों के लिए संघ में सम्मिलित होना उनकी इच्छा पर निर्भर था। जो भी देशी रियासत संघ में सम्मिलित होना चाहते थें, उनके लिए दो शर्तों को पूरा करना अनिवार्य था। (प) संसद के दोनों सदन संघ की स्थापना के लिए ब्रिटिश सम्राट से प्रार्थना करें। रियासत के प्रतिनिधियों में न्यूनतम आधे प्रतिनिधि चुनने वाली रियासते संघ में सम्मिलित न हो। रियासतों की कुल जनसंख्या में से आधी जनसंख्या वाली रियासतें संघ में सम्मिलित न हो। जिन शर्तों पर देशी रियासतों को अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होना था, उनका उल्लेख एक प्रवेश पत्र (Instrument of Accession) में किया जाना था। चूँकि संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया अतः 1946 तक केंद्रीय शासन, भारत सरकार अधिनियम 1919 के प्रावधानों का ही पालन करती रही।

4.6.3 संघीय कार्यपालिका से संबंधित प्रावधान

1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई, जिसमें गवर्नर जनरल समस्त शासन व्यवस्था केंद्र बिन्दु था।

विषयों का विभाजन – शासन से संबंधित सभी विषयों को तीन भागों में विभाजित किया गया। 1. सुरक्षित (संरक्षित), 2. हस्तांतरित, 3. स्वविवेकीय। सुरक्षित विषयों में विदेशी संबंध, प्रतिरक्षा, जनजातीय क्षेत्र तथा धार्मिक विषय सम्मिलित था। जिनका प्रशासन गवर्नर जनरल को कार्यकारिणी परिषद के परामर्श के अनुसार करना था। कार्यकारिणी परिषद केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी।

हस्तांतरित विषय में वे सभी विषय सम्मिलित थे, जो सुरक्षित विषयों की सूची में सम्मिलित नहीं थे। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर जनरल को केंद्रीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित मंत्रियों की सलाह से करना था। मंत्री केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उन्हें व्यवस्थापिका पदच्युत कर सकती थी।

देश की वित्तीय स्थिरता, भारतीय साख की रक्षा, भारत या उसके किसी भाग में शांति की रक्षा, अल्पसंख्यकों, सरकारी सेवकों तथा उनके आश्रितों की रक्षा, अंग्रेजी व वर्मा में निर्मित माल के विरूद्ध किसी भेदभाव से उसकी रक्षा, भारतीय राजाओं के हितों एवं सम्मान की रक्षा तथा ब्रिटिश व निजी विवेकाधीन शक्तियों की रक्षा के संबंध में गवर्नर जनरल को व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार था।

संघीय कार्यपालिका का विभाजन –

केंद्रीय कार्यपालिका के तीन अंग थे।

1. गवर्नर जनरल

2. कार्यकारिणी परिषद

3. मंत्रिपरिषद

1. **गवर्नर जनरल** – 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत गवर्नर जनरल को ब्रिटिश सम्राट का व्यक्तिगत प्रतिनिधि माना गया तथा उसे भारत के समस्त शासन व्यवस्था के केंद्र बिंदु के रूप में स्थापित किया गया। गवर्नर जनरल की नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श से ब्रिटिश सम्राट करता था। उसका कार्यकाल 5 वर्ष का था। उसने 2,51,800 रूपया वार्षिक वेतन भारतीय राजकोष से दिया जाता था।

गवर्नर जनरल की शक्तियाँ एवं कार्य –

(i) स्वविवेकीय शक्तियाँ – भारत का अन्य देशों के साथ संबंध, जनजातीय क्षेत्र अल्पसंख्यकों तथा देशी रियासतों के संबंध में गवर्नर जनरल स्वविवेक से निर्णय लेता था। इन विषयों के संबंध में कार्यकारिणी परिषद के परामर्श को मानना था या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था। अनुच्छेद 45 के तहत एक घोषणा द्वारा संविधान को स्थगित करना गवर्नर जनरल का विशेषाधिकार था।

(ii) कार्यपालिका संबंधी शक्तियाँ –

मुख्य आयुक्तों, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, रिजर्व बैंक के गवर्नर तथा सहायक गवर्नर, रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष, संघ लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को नियुक्त तथा पदच्युत करना।

- मंत्रिपरिषद की बैठकों की अध्यक्षता करना।
- मंत्रिपरिषद के सदस्यों को नियुक्त तथा पदच्युत करना।
- मंत्रिपरिषद के सदस्यों के बीच विभागों का विभाजन करना।
- मंत्रिपरिषद के सदस्यों से शासन के संबंध में जानकारी प्राप्त करना।
- अध्यादेश जारी करना तथा उसे वापस लेना।

(iii) विधायी शक्तियाँ –

- संघीय विधानमंडल के अधिवेशन को बुलाना, स्थगित करना तथा भंग करना। केंद्रीय विधानमंडल को संदेश भेजना।
- विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों को स्वीकृति या अस्वीकृति प्रदान करना।
- कुछ विषयों के संबंध में स्वयं कानून बनाना।

- कुछ विधेयकों को सम्राट की स्वीकृति के लिए आरक्षित करना।
- अध्यादेश जारी करना।

(iv) विशेष उत्तरदायित्व – 1935 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को कुछ विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये थे, जिनके संबंध में वह स्वविवेक से निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र था। गवर्नर जनरल को प्रदान किया गया विशेष उत्तरदायित्व निम्न था –

- भारत या उसके किसी भाग में शांति तथा व्यवस्था के भंग होने की आशंका को रोकना।
- भारत की वित्तीय साख की सुरक्षा करना।
- अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना।
- सरकारी कर्मचारियों के अधिकारियों की रक्षा करना।
- भारत में ब्रिटिश सरकार तथा व्यापारियों के हितों की रक्षा करना।
- देशी राज्यों के हितों की रक्षा करना।
- अपने स्वविवेकीय शक्तियों के प्रयोग में बाधा उत्पन्न नहीं होने देना।

(v) प्रांतीय सरकार से संबंधित शक्तियाँ –

- गवर्नर जनरल प्रांतीय गवर्नरों को अपने विवेक के अनुसार कार्य करने का आदेश दे सकता था।
- प्रांतीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित करना।
- गवर्नर जनरल की अनुमति से ही कुछ विधेयक को प्रांतीय विधानमंडल में रखा जाता था।

2. गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद (Executive Council) –

1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत गवर्नर जनरल को उसके कार्यों के संबंध में परामर्श एवं सहायता देने के लिए एक कार्यकारिणी परिषद की स्थापना की गई थी। कार्यकारिणी परिषद में अधिकतम तीन सदस्यों की नियुक्ति भारत सचिव के परामर्श से ब्रिटिश सम्राट द्वारा किया जाता था। कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों का कार्यकाल अनिश्चित था, वे भारत सचिव के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर बने रहते थे। कार्यकारिणी परिषद के सदस्य संरक्षित विषयों के संबंध में गवर्नर जनरल को परामर्श देते थे। ये सदस्य अपने कार्य के लिए गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी थे न कि विधानमंडल

के प्रति। ये विधानमंडल की बैठकों में भाग तो ले सकते थें किन्तु मतदान नहीं कर सकते थे। कार्यकारिणी परिषद के सदस्य केंद्रीय विधानमंडल के सदस्य होते थे।

3. **संघीय मंत्रिपरिषद (न्दपवद बैपमि वि डपदपेजमते)** – हस्तांरित विषयों के संबंध में परामर्श देने के लिए 1935 के अधिनियम के अंतर्गत एक मंत्रिपरिषद की स्थापना का प्रावधान किया गया था। मंत्रिपरिषद के अधिकतम सदस्यों की संख्या 10 थी। इन सदस्यों की नियुक्ति बहुमत प्राप्त दल के नेता की सिफारिश पर गवर्नर जनरल द्वारा की जाती थी। इनका कार्यकाल अनिश्चित था। मंत्रिपरिषद के सदस्य अपने कार्यों के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी थे। विधानमंडल के दोनों सदनों में से किसी एक का सदस्य होना मंत्रिपरिषद के सदस्य के लिए अनिवार्य था। यदि किसी गैर–सदस्य को मंत्री बनाया जाता था तो उसे 6 माह के भीतर विधानमंडल के किसी भी सदन की सदस्यता लेना अनिवार्य था। चूँकि मंत्रिपरिषद के सदस्य विधानमंडल के सदस्य होते थे, अतः विधानमंडल उनके विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती थी। मंत्रिपरिषद के बैठकों की अध्यक्षता गवर्नर जनरल ही करता था।

4.6.4 संघीय विधानमंडल (FEDERAL ASSEMBLY)

1935 ई के भारत सरकार अधिनियम द्वारा भारत में केंद्रीय स्तर पर द्विसदनात्मक विधानमंडल की स्थापना की गई। जिसके उच्च सदन का नाम राज्य परिषद तथा निम्न सदन का नाम संघीय सभा था। राज्यपरिषद एक स्थायी सदन था, जिसमें विभिन्न इकाईयों का प्रतिनिधित्व होता था। इसके एक–तिहाई सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष के बाद चुने जाते थें। जबकि संघीय सभा जनता की प्रतिनिधि सभा था।

1. **राज्य परिषद** – यह संघीय विधानमंडल का उच्च सदन थी। इसके सदस्यों की कुल संख्या 260 थी, जिसमें से 156 ब्रिटिश भारत तथा 104 देशी रियासतों के प्रतिनिधि होते थे। ब्रिटिश भारत के 156 स्थानों में से 150 का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जबकि शेष 6 का मनोनयन गवर्नर जनरल द्वारा किया जाता था। देशी रियासतों के शासक अपने–अपने प्रतिनिधियों का मनोनयन करते थे। ब्रिटिश प्रांतों के सदस्य प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाते थें। राज्य परिषद का कार्यकाल 9 वर्ष का था। इसके 1/3 सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते रहते थे। इसके सदस्य आपस में एक अध्यक्ष व एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करते थें। चूँकि यह सदन एक स्थायी सदन था अतः कभी भंग नहीं होता था। 1935 के अधिनियम द्वारा संघ की सभी इकाईयों को समान प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था नहीं की गई

थी। राज्य परिषद के कुल स्थानों का भारतीय प्रांतों के बीच विभाजन निम्न प्रकार से था –

प्रांत	**सदस्य**
बंगाल	20
मद्रास	20
संयुक्त प्रांत	20
बंबई	16
बिहार	16
पंजाब	16
मध्य प्रांत और बरार	8
असम	5
उड़ीसा	5
पश्चिमोत्तर प्रांत	5
सिंध	5
ब्लूचिस्तान	1
दिल्ली	1
अजमेर–मारवाड़	1
कुर्ग	1
अन्य	10

सांप्रदायिक आधार पर राज्यपरिषद में स्थानों का विभाजन निम्न था –

संप्रदाय	**संख्या**
सामान्य	75

अल्पसंख्यक एवं दलित	6
मुस्लिम	49
सिख	4
यूरोपियन	7
आंग्ल–भारतीय	1
भारतीय–ईसाई	2
स्त्रियाँ	6

2. **संघीय सभा** – यह संघीय विधानमंडल का निम्न एवं अस्थायी सदन था। इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से जनता करती थी। हालाँकि मताधिकार काफी सीमित था। इसके सदस्यों की कुल संख्या 375 थी, जिसमें से 250 ब्रिटिश भारत के तथा 125 देशी रियासतों के प्रतिनिधि थे। संघीय सभा के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करते थे। संघीय सभा के स्थानों का विभिन्न प्रांतों के बीच विभाजन निम्न प्रकार से किया गया था –

प्रांत	**सदस्य**
मद्रास	37
संयुक्त प्रांत	37
बंगाल	37
बंबई	30
पंजाब	30
बिहार	30
मध्य प्रांत और बरार	15
असम	10
उड़ीसा	5

पश्चिमोत्तर प्रांत	5
सिंध	5
ब्लूचिस्तान	1
दिल्ली	2
अजमेर–मारवाड़	1
कुर्ग	1
कुल	240

सांप्रदायिक आधार पर संघीय सभा के स्थानों का विभाजन निम्न था –

संप्रदाय/वर्ग	**सदस्य संख्या**
सामान्य	105
अनुसूचित जातियों को 105 में से 19 स्थान दिया गया था।	
मुस्लिम	82
यूरोपियन	8
भारतीय इसाई	8
सिख	6
आंग्ल भारतीय	4
वाणिज्य तथा उद्योग	11
श्रम	10
जमींदार	6
स्त्रियाँ	9
कुल	250

संघीय (विधानमंडल) व्यवस्थापिका के अधिकार एवं कार्य –

1. **विधायी शक्तियाँ –**

- संघीय तथा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून का निर्माण करना।
- प्रांतीय विषयों पर कानून बनाना।
- देशी रियासतों के संबंध में विधानमंडल उन्हीं विषयों पर विधि निर्माण कर सकती था, जिन्हें देशी रियासतों द्वारा संघ को सौंपा जाना था।
- यदि गवर्नर जनरल किसी अवशिष्ट विषय को संघीय विषय घोषित कर देता था तो संघीय विधानमंडल उस पर कानून बना सकता था।
- कोई भी विधेयक तभी कानून का रूप लेता था, जब उसे दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया हो तथा गवर्नर जनरल ने उसे अपनी स्वीकृति प्रदान की हो।
- संघीय विधानमंडल के दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति में संयुक्त बैठक की व्यवस्था की गई थी।

2. **कार्यपालिका शक्तियाँ –**

- संघीय मंत्रिमंडल को नियोजित करना।
- संघीय सभा संघीय मंत्रिमंडल को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा पदच्युत कर सकती थी।
- संघीय विधानमंडल संरक्षित विषयों के संबंध में कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकती थी।
- संघीय विधानमंडल काम रोको प्रस्ताव पारित कर सकती थी।
- दोनों सदन कोई भी प्रस्ताव पारित कर गवर्नर जनरल को भेज सकती थी, जिसे मानना या मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था।

3. **वित्तीय शक्तियाँ –**

- बजट संघीय सभा में प्रस्तुत किया जाता था तथा पारित कर राज्यपरिषद में भेजा जाता था।
- बजट के पहले भाग संघ के राजस्व पर भरित व्यय पर ही संघीय विधानमंडल बहस कर सकता था किंतु उसमें कटौती नहीं कर सकता था।
- बजट के 80 प्रतिशत भाग पर विधानमंडल मतदान नहीं कर सकती थी।

- मात्र 20 प्रतिशत भाग पर ही संघीय विधानमंडल को कटौती तथा अस्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त था जिसे गवर्नर जनरल पुनः स्वीकृत कर सकता था।

4.6.5 संघीय न्यायालय

संघ के विभिन्न इकाईयों के विवादों का निपटारा करने, संविधान की व्याख्या करने आदि के उद्देश्य से 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत एक संघीय न्यायालय के गठन का प्रावधान किया गया था। 1 अक्टूबर 1937 ई से संघीय न्यायालय ने कार्य करना शुरू कर दिया था।

संगठन – संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा अधिकतम 06 न्यायाधीशों को नियुक्त किया जा सकता था। ब्रिटिश सम्राट न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि कर सकता था। न्यायाधीशों की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट करता था। संघीय न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बने रह सकते थें किन्तु प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति द्वारा शारीरिक या मानसिक रूप से दोषों ठहराये जाने की स्थिति में ब्रिटिश सम्राट उन्हें पदच्युत कर सकता था।

ब्रिटिश भारतीय न्यायाधीशों की योग्यताएँ –

(i) संघ के किसी भी उच्च न्यायालय में कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के पद पर कार्यरत रहा हो।

(ii) स्कॉटलैंड के अदालत में 10 वर्ष तक सदस्य रहा हो।

(iii) इंग्लैंड या उत्तरी आयरलैंड में 10 वर्ष तक बैरिस्टर रहा हो।

(iv) ब्रिटिश भारत या संघ के अंतर्गत किसी भी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता हो।

(v) मुख्य न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक था कि वह 15 वर्ष तक अधिवक्ता या किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रहा हो।

वेतन – संघीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ˋ 7000 तथा अन्य न्यायाधीशों को ˋ 6000 प्रति माह दिया जाता था। न्यायाधीश के कार्यकाल में उसके वेतन भत्ते में किसी भी प्रकार की कटौती नही की जा सकती थी। ब्रिटिश सम्राट को मंत्रिपरिषद के परामर्श से न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन निर्धारित करने का अधिकार था।

संघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार –

1. **प्रारंम्भिक क्षेत्राधिकार –**

   - 1935 के अधिनियम की व्याख्या करना।
   - संघ तथा राज्यों के बीच उत्पन्न विवाद का निपटारा करना।

- राज्यों के बीच उत्पन्न विवाद का निपटारा करना।
- देशी रियासतों के बीच उत्पन्न विवाद का निपटारा करना।

2. अपीलीय क्षेत्राधिकार –

- उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनना।
- संघीय न्यायालय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील तभी सुनता था। जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे कि मामले में संवैधानिक प्रश्न निहित है।
- विधि की व्याख्या से संबंधित तमाम मामले उच्च न्यायालयों द्वारा संघीय न्यायालय में भेजा जा सकता था।

3. परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार –

- गवर्नर जनरल द्वारा किसी कानूनी विषय पर परामर्श माँगने पर संघीय न्यायालय गवर्नर जनरल को परामर्श दे सकता था।
- गवर्नर जनरल किसी भी संवैधानिक प्रश्न या किसी विधि से संबंधित किसी भी प्रावधान के स्पष्टीकरण के लिए संघीय न्यायालय के पास प्रेषित कर सकता था।

4. अभिकरण न्यायालय के रूप में –

- संघीय न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय था।
- इसके निर्णयों एवं कार्यवाहियों को लिखित रूप में संरक्षित तथा प्रकाशित किया जाता था। अधीनस्थ न्यायालय उसका अनुकरण करते थे।

संघीय न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध अपील –

संघीय न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्ध ब्रिटिश सम्राट की प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में अपील की जा सकती थी किन्तु अपील मात्र परिषद आदेश व्याख्या के प्रश्न, किसी देशी रियासत के प्रवेश पत्र द्वारा संघीय सरकार को दी गयी विषयों संबंधी विवाद, देशी रियासतों में संघीय विधानमंडल के कानूनों को लागू करने के संबंध में की जा सकती थी।

निष्कर्ष –

सघीय न्यायालयों ने 1937 से 1947 के मध्य अत्यंत ही उल्लेखनीय कार्य किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इसने भारत प्रतिरक्षा अधिनियम को रद्द कर इसने नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के संबंध में अपनी महत्ता को सिद्ध किया। 1950 में नवीन संविधान द्वारा संघीय न्यायालय को भारत के सर्वोच्च न्यायालय का दर्जा दिया

गया तथा उसकी शक्तियों में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी गई।

4.6.6 प्रांतीय स्वायत्तता (PROVINCIAL AUTONOMY)

1935 के भारत सरकार अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की। प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत भारत के सभी 11 ब्रिटिश तथा 6 कमिश्नरी प्रांतों में प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना की गई, जिसे द्वारा भारतीयों को स्वशासन में भाग लेने का अवसर मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन का अंत कर उसके स्थान पर उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। संरक्षित तथा हस्तांतरित विषयों के विभाजन को समाप्त कर दिया गया। प्रांतों को पृथक वैधानिक मान्यता दी गई। प्रांतों को स्वायत्तता एवं पृथक विधिक पहचान बनाने का अधिकार दिया गया। प्रांतों पर से केन्द्र के नियंत्रण को काफी कम कर दिया गया। प्रांतों को भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल के आदेशों को मानने की बाध्यता से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार, अब वे प्रत्यक्ष तौर पर ताज (ब्तवूद) के अधीन आ गये। प्रांतों को प्रांतीय विषयों पर केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना कानून बनाने का अधिकार दिया गया। प्रांतों को स्वतंत्र आर्थिक शक्तियाँ एवं संसाधन दिये गये। प्रांतीय सरकारें अपने स्वयं की साख पर धन उधार ले सकती थी।

प्रांतीय स्वायत्तता के अर्थ –

प्रांतीय स्वायत्तता के दो अर्थ लगाये जा सकते हैं।

1. प्रांतों एवं संघ के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन
2. प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना।
3. समस्त विषयों का बँटवारा तीन सूचियों में किया गया। केंद्रीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची। केंद्रीय सूची के विषयों पर केन्द्र सरकार, राज्य सूची पर प्रांतीय सरकार तथा समवर्ती सूची पर दोनों कानून बना सकती थी किन्तु समवर्ती सूची के विषय पर केन्द्र एवं राज्य के कानून के बीच विवाद उत्पन्न होने पर केंद्रीय कानून ही मान्य होता था।
4. 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय सरकार को केंद्र से पृथक एवं स्वतंत्र रखा गया। प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त कर प्रांतों का शासन निर्वाचित विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंप दिया गया।

(1) प्रांतीय स्वायत्तता पर प्रतिबंध –

प्रांतीय स्वायत्तता पर अनेक परिसीमाएँ थीं।

(i) बाह्य प्रतिबंध – अवशिष्ट शक्तियों के निर्धारण की शक्ति गवर्नर जनरल के अधीन थी।

- केंद्रीय विधानमंडल को यह अधिकार था कि संपूर्ण देश में संघीय कानून को कार्यान्वित कर सके।
- गवर्नर जनरल द्वारा आपातकालीन स्थिति की घोषणा किये जाने पर संघीय विधानमंडल प्रांतीय सूची के विषयों पर भी कानून बना सकता था।
- प्रांतीय विधानमंडलों में प्रस्तुत किये जाने वाले अनेक विधेयकों पर गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति अनिवार्य थी।
- गवर्नर पारित विधेयकों को गवर्नर जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता था।
- गवर्नर जनरल गवर्नरों को प्रांतीय सरकार के प्रशासन के संबंध में आदेश दे सकता था।

(ii) आंतरिक प्रतिबंध –

प्रांतीय कार्यपालिका पर विधानमंडल का पूर्ण नियंत्रण नहीं था।

- गवर्नर जनरल को व्यापक स्वविवेकीय शक्तियाँ तथा विशेष उत्तरदायित्व दिया गया था, जिनके पालन के लिए वह गवर्नर जनरल व भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी था।
- गवर्नर प्रांतीय विधानमंडल के नियंत्रण से मुक्त था।
- प्रांतीय विधानमंडल के सदस्यों का निर्वाचन सीमित मताधिकार व सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रणाली पर आधारित था।
- मंत्रियों के वेतन पर भी विधानमंडल का कोई नियंत्रण नहीं था।

02. प्रांतीय कार्यपालिका –

गवर्नर प्रांतीय कार्यपालिका का मुखिया होता था। प्रांत का समस्त कार्य गवर्नर को निर्वाचित सदस्यों से निर्मित मंत्रिमंडल की सहायता से चलाना होता था। मंत्रिमंडल भी गवर्नर की इच्छा से ही अपने पद पर बना रह सकता था। इस प्रकार उसे गवर्नर व विधानमंडल के निम्न सदन के प्रति दोहरा उत्तरदायित्व निभाना पड़ता था। गवर्नर प्रांत में ताज (ब्तवूद) का मनोनित प्रतिनिधि होता था जो ताज की ओर से समस्त कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता था।

गवर्नर को अल्पसंख्यकों, लोकसेवकों के अधिकार, कानून एवं व्यवस्था, ब्रिटेन के व्यापारिक हितों एवं देशी रियासतों आदि के संबंध में विशेष शक्तियाँ प्राप्त थी। यदि गवर्नर यह अनुभव करे कि प्रांत का प्रशासन संवैधानिक

उपबंधों के आधार पर नहीं चलाया जा रहा है तो शासन का संपूर्ण भार वह अपने हाथों में ले सकता था। गवर्नर मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति मुख्यमंत्री के सुझाव पर ही करता था तथा उसे विधानसभा का विश्वास प्राप्त होता था।

03. प्रांतीय विधानमंडल –

सांप्रदायिक तथा अन्य वर्गों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया। अधिनियम के मतदाता मंडल का निर्धारण सांप्रदायिक निर्णय एवं पूना समझौते के अनुसार किया गया। प्रांतीय विधानमंडलों का आकार तथा रचना विभिन्न प्रांतों में भिन्न–भिन्न था। अधिकांश प्रांतों में यह एक सदनात्मक तथा कुछ प्रांतों में यह द्विसदनात्मक थी। द्विसदनात्मक व्यवस्था में उच्च सदन को विधान परिषद तथा निम्न सदन को विधान सभा कहा जाता था। विधानपरिषद में कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किया जाता था।

विधानसभाओं में स्थानों की संख्या निम्न थी –

प्रांत	**सदस्य संख्या**
असम	108
उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत	50
उड़ीसा	60
सिंध	60
मध्य प्रांत	112
बिहार	152
पंजाब	175
बंबई	175
मद्रास	215
संयुक्त प्रांत	228
बंगाल	250

सभी सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होता था। मताधिकार में वृद्धि की

गई। पुरूषों के समान स्त्रियों को भी मताधिकार दिया गया। सभी प्रांतीय विषयों का संचालन मंत्रियों द्वारा किया जाता था जो एक मुख्यमंत्री के नेतृत्व में कार्य करते थे। मंत्री अपने विभाग के कार्यों के प्रति उत्तरदायी थे तथा विधानसभा मंत्रिपरिषद के विरूद्ध प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती थी। प्रांतीय व्यवस्थापिका प्रांतीय तथा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती थी। बजट का 40 प्रतिशत भाग विधानमंडल के मताधिकार से मुक्त था। प्रांतीय विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक गवर्नर की स्वीकृति के बाद ही कानून का रूप लेता था।

(i) गवर्नर विधेयक को लौटा सकता था।

(ii) कानून पर रोक लगा सकता था।

(iii) अध्यादेश जारी कर सकता था।

4.6.7 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्य प्रावधान

नवीन संविधान में संशोधन करने की शक्ति मात्र ब्रिटिश संसद को ही था। भारतीय विधानमंडल मात्र उसमें संशोधन का प्रस्ताव कर सकता था। एक केंद्रीय बैंक की स्थापना का प्रावधान किया गया था। वर्मा तथा अदन को भारत के शासन से पृथक कर दिया गया। उड़ीसा तथा सिंध दो नये प्रांत बनाये गये। उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत को गवर्नर के अधीन रखा गया।

4.7 भारतीय शासन अधिनियम 1935 की आलोचनाएँ

(i) दोषपूर्ण संघ – 1935 के अधिनियम के अनुसार जिस संघ की स्थापना के लिए सुझाव दिया गया, वह अत्यंत दोषपूर्ण था। इस संघ में ब्रिटिश प्रांतो को शामिल होना अनिवार्य था लेकिन देशी रियासतें संघ में शामिल होने या न होने के लिए स्वतंत्र थे। ब्रिटिश प्रांतो व देशी रियासतों की जनसंख्या, आकार, क्षेत्रफल, महत्व व दर्जे में घोर असमानता थी। ब्रिटिश प्रांतों में स्वायत्तत शासन की स्थापना हो चुकी थी और देशी रियासतों में निरंकुशता का साम्राज्य था ऐसी दो असमान इकाईयों का गठजोड़ नितांत अव्यवहारिक था।

(ii) प्रांतीय स्वायत्तता निरर्थक – इस अधिनियम के द्वारा प्रांतीय स्वायत्त शासन की स्थापना की गई थी। परंतु व्यवहार में वह सर्वथा निरर्थक थी। इसका कारण यह था कि गवर्नर जनरल एवं गर्वनरों को ऐसे विशेषाधिकार दिये गये थे जिनके द्वारा वह प्रांतीय सरकारों के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकता था। गवर्नर जनरल आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर संपूर्ण प्रांत का शासन अपने हाथ में ले सकता था। गवर्नर अपने मंत्रियों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य न था।

(iii) संरक्षण व आरक्षण की व्यवस्था – विशेष हितों व अल्पमतों की रक्षा के नाम

पर अधिनियम में आरक्षण व संरक्षण की व्यवस्था की गई थी। वस्तुतः यह व्यवस्था भारत में उत्तरदायी शासन को असफल बनाने की एक अनोखी साजिश था। ये उपाय ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा करने के लिए ही किये गये थे। इस अधिनियम के द्वारा गर्वनरों व गवर्नर जनरल को इतनी अधिक शक्तियाँ मिल गई थी कि उसकी स्थिति किसी स्वेच्छाकारी शासक से कम नहीं था। प्रगति के मार्ग में अपने हितों की रक्षा के लिए सदैव अंग्रेजों की नीति का समर्थन करते थें। अंग्रेज सदैव भारत की प्रगति के मार्ग में उनके हितों का नाम लेकर रोडा अटकाते थें।

(iv) सांप्रदायिक चुनाव प्रणाली का विस्तार – सांप्रदायिक चुनाव प्रणाली देश हित में न था और सभी के विरोध के बावजूद भी न केवल इसे कायम रखा गया बल्कि इसका विस्तार भी किया गया। इसे आंग्ल भारतीयों, यूरोपियनों, भारतीय ईसाइयों व हरिजनों पर लागू किया गया। इस अधिनियम द्वारा यह पद्धति हरिजनों पर भी लागू कर दी गई ताकि हिंदुओं से हरिजनों को पृथक किया जा सके। इस प्रणाली के द्वारा ब्रिटिश सरकार भारत की राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने का प्रयत्न कर रही थी। अतः भारत में इस आधार पर भी अधिनियम का विरोध होना स्वाभाविक था।

(v) आत्मनिर्णय के अधिकार की उपेक्षा – इस अधिनियम द्वारा भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया गया। अतः भारतीयों को अपने लिए एक स्वतंत्र संविधान बनाने का अधिकार नहीं था। यह अधिनियम ब्रिटिश संसद ने बनाया था और भारत की आगे की प्रगति का निर्णय का अधिकार भी ब्रिटिश संसद के पास था। अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश संसद या भारत मंत्री के नियंत्रण में कोई कमी नहीं की गई थी।

(vii) दोषपूर्ण विधानमण्डल व्यवस्था – विधानमंडल पृथक निर्वाचन प्रणाली पर आधारित था। अतः प्रांतीय विधानमंडलों के प्रतिनिधि केवल सांप्रदायिक हितों पर बल देते थे। ये राष्ट्रीय हितों की चिंता न करते थे। दूसरी बात यह है कि मताधिकार का आधार संकुचित था। फलतः परिषदों के अधिकतर सदस्य संभ्रांतशाली वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते थें। तीसरी बात यह है कि अल्पसंख्यकों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक स्थान दिये गये थे। फिर विधानमंडलों की शक्तियों पर अनेक सीमाएँ थीं।

(viii) भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण नहीं – इस अधिनिश्म का बहुत बड़ा दोष यह था कि संघीय योजना के द्वारा भारतीयों को कोई वास्तविक सत्ता का हस्तांतरण नहीं दिया जाना था। संघीय सरकार के महत्वपूर्ण कार्य गवर्नर जनरल के हाथों में था तथा केंद्रीय मंत्रियों को इन विषयों से कोई लेना–देना नहीं था। संघीय व्यय का 80 प्रतिशत धन उनके नियंत्रण से

बाहर था। इन सबके बाद उन–पर आरक्षण और संरक्षण के माध्यम से अनेक प्रतिबंध लगे थे जो इतने व्यापक थे कि भारत की राजनीतिक व आर्थिक शक्ति ब्रिटिश सरकार के ही हाथों में बनी रहती। भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण के बिना संघीय शासन की सफलता नितांत संदिग्ध थी।

4.8 कांग्रेसी मंत्रिमंडल (CONGRESS CABINET)

4.8.1 1937 के निर्वाचन की पृष्ठभूमि

भारत के संवैधानिक विकास के अंतर्गत 1935 में ब्रिटिश संसद ने भारत शासन अधिनियम पारित किया। भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों के अनुकूल सरकार ने प्रांतों में फरवरी 1937 ई में चुनाव कराने की घोषणा की। इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन और केंद्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। 1937 के प्रारम्भ में निर्वाचन कराने के साथ ही सत्ता में भागीदारी के प्रश्न पर द्वितीय चरण की राजनीति पर बहस प्रारम्भ हो गई।

4.8.2 निर्वाचन में भागीदारी के संबंध में कांग्रेस के विचार

1937 में होने वाले निर्वाचन में भाग लेने के संबंध में कांग्रेस के भीतर तीव्र मतभेद था। राष्ट्रवादियों में आम सहमति थी कि 1935 के अधिनियम का पूरी तरह विरोध किया जाय किंतु इस समय आंदोलन चलाना असंभव था, अतः विरोध नहीं किया जा सकता था। इस बात पर पूर्ण सहमति थी कि कांग्रेस को पूर्ण राजनीतिक कार्यक्रम बनाकर निर्वाचन में भाग लेना चाहिए। इससे जनता में उपनिवेशी शासन के विरूद्ध राजनीतिक चेतना का विकास होगा। हालाँकि चुनाव के बाद क्या किया जायेगा यह तय नहीं था। यदि चुनाव में कांग्रेस को प्रांतों में बहुमत मिला तो उसे सरकार बनानी चाहिए या नहीं। इस विषय पर राष्ट्रवादियों में तीव्र मतभेद था। इस विषय पर वामपंथियों एवं दक्षिणपंथियों के मध्य भी तीव्र मतभेद उभरकर सामने आया।

पंडित नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, कांग्रेस सोशलिस्ट एवं साम्यवादी पक्ष सत्ता में भागीदारी के विरूद्ध थे तथा 1935 के अधिनियम का विरोध किये जाने के पक्ष में थे। इनका कहना था कि सत्ता में भागीदारी का अर्थ 1935 के अधिनियम को स्वीकार करना तथा राष्ट्रवादियों द्वारा स्वयं को दोषी ठहराना होगा। साथ ही इसका तात्पर्य बिना अधिकार के उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा। इससे जनआंदोलन का क्रांतिकारी चरित्र समाप्त हो जाएगा तथा कांग्रेस, संसदीय कार्यों में उलझ कर साम्राज्यवादी शासन का अंग बनकर रह जायेगी तथा स्वतंत्रता, सामाजिक–आर्थिक न्याय और गरीबी दूर करने का उसका लक्ष्य अधूरा रह जायेगा।

सत्ता में भागीदारी के समर्थकों ने तर्क दिया कि वे भी 1935 के अधिनियम का विरोध करते हैं किंतु सत्ता में भागीदारी एक अल्पकालीन राजनीति है। यद्यपि

इससे स्वतंत्रता तो प्राप्त नहीं किया जा सकता किंतु वर्तमान परिदृश्यों में संसदीय संघर्ष की राजनीति अपनाना ही श्रेयस्कर है क्योकि वर्तमान में जनआंदोलन का कोई विकल्प नहीं है। यह समय की मांग है कि जन राजनीति को संसदीय राजनीति तथा उसमें हो रही गतिविधियों को प्रांतीय सरकारों से संबद्ध किया जाये जिससे देश में आंदोलन के लिए उपर्युक्त राजनीतिक वातावरण का निर्माण किया जा सके।

1935 के कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में गाँधी जी ने सत्ता में भागीदारी का विरोध किया किन्तु 1936 के प्रारम्भ तक वे कांग्रेस को निर्वाचन में भाग लेकर सरकार बनाने का अवसर देने के पक्ष में राजी हो गए। 1936 में लखनऊ अधिवेशन और फैजपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने चुनावों में भाग लेने, प्रशासन में भागीदारी के विरोध को स्थगित करने तथा सत्ता में भागीदारी के मुद्दों पर चुनाव के पश्चात विचार करने का निर्णय लिया।

4.8.3 कांग्रेस का घोषणापत्र

कांग्रेस ने अपने घोषणापत्र में 1935 के भारत शासन अधिनियम को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने नागरिक स्वतंत्रता की बहाली, राजनीतिक बंदियों की रिहाई, कृषि के ढाँचे में व्यापक परिवर्तन, भूराजस्व और लगान में उचित कमी, किसानों को कर्ज से राहत तथा मजदूरों को हड़ताल करने, विरोध प्रदर्शन करने तथा संगठन बनाने का अधिकार देने आदि का वचन दिया।

4.8.4 1937 के निर्वाचन में कांग्रेस का प्रदर्शन

जनवरी–फरवरी 1937 में देश के सभी प्रांतीय विधानसभाओं के लिए चुनाव हुए। सभी 11 प्रांतीय विधान सभाओं को मिलाकर कुल 1585 सीटें थी। इनमें से कांग्रेस ने 699 सीटें जीती और पाँच प्रांतों मद्रास, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बिहार, उड़ीसा में उसे स्पष्ट बहुमत मिला। चार प्रांतो – बंगाल, बम्बई, असम तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी किन्तु उसे बहुमत नहीं मिला। सिंध और पंजाब प्रांत में कांग्रेस अल्पमत रही। हिन्दू महासभा के प्रत्याशियों को मात्र पंजाब में ही आंशिक सफलता मिला। मुस्लिम लीग ने पंजाब, बंगाल, सिंध और उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में अपने प्रत्याशी खड़े किये किन्तु उसे अच्छी सफलता नहीं मिली। पंजाब में लीग बहुत बुरी तरह परास्त हुई। उसे 86 मुस्लिम स्थानों में से मात्र 2 स्थानों पर सफलता मिली। सिंध और उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में मुस्लिम लीग को एक भी स्थान नहीं मिला। शेष मुस्लिम सीटों पर कांग्रेस एवं अन्य दलों के प्रत्याशी विजयी हुए। बंगाल में मुस्लिम लीग को 119 मुस्लिम सीटों में 40 सीटों पर जीत मिली।

मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के अपेक्षा हिन्दू बहुल क्षेत्रों में लीग को ज्यादा सफलता मिली। उ.प्र. के 64 मुस्लिम सीटों में लीग ने 27 सीटों पर विजय प्राप्त की। मद्रास में 28 मुस्लिम सीटों में से 11 सीट लीग को मिली। 11 प्रांतों में मुसलमानों के लिए

सुरक्षित 482 स्थानों में से कांग्रेस को 26, लीग को 108, निर्दलीय मुसलमानों को 128 सीटें मिली। पंजाब में अधिकांश सीटें युनियनिस्ट पार्टी को मिली। बंगाल में फजहुल हक की प्रजा पार्टी को 38 सीटें मिली। जुलाई 1937 में कांग्रेस ने मद्रास, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बिहार, बम्बई तथा उड़ीसा में अपनी सरकारें गठित की। पंजाब में मुस्लिम लीग व यूनियनिस्ट पार्टी ने संयुक्त रूप से सरकार का गठन किया। बंगाल में लीग व कृषक प्रजा पार्टी ने सरकार बनायी।

जनवरी–फरवरी 1937 में संपन्न हुए चुनावों में यह बात सिद्ध हो गई कि जनता का अधिकांश भाग कांग्रेस के साथ है। 1939 के प्रांतीय चुनावों के साथ ही विधान परिषदों का चुनाव भी संपन्न हुआ। पाँच प्रान्तों बम्बई, मद्रास, बंगाल, बिहार व संयुक्त प्रांत में कांग्रेस को आंशिक सफलता मिली। बिहार के 26 सीटों में से 8 पर तथा मद्रास की 46 सीटों में से 26 सीटों पर कांग्रेस को जीत मिली।

4.8.5 मंत्रिमंडल गठन से पूर्व कांग्रेस की रणनीति

1937 के निर्वाचन में कांग्रेस को 11 में से 6 प्रांतों में बहुमत मिल गया था। तब गवर्नर ने कांग्रेस को मंत्रिमंडल बनाने का आमंत्रण दिया किन्तु कांग्रेस ने इस आधार पर मंत्रिमंडल बनाने से इंकार कर दिया था कि उसे जनता की सेवा करने लायक पर्याप्त अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं। 18 मार्च 1937 को कांग्रेस ने कहा था कि जहाँ–जहाँ विधानमंडलों में कांग्रेस सदस्यों का बहुमत हो, वहाँ–वहाँ मंत्रीत्व स्वीकार कर लिया जाय। किन्तु इससे पहले यह सुनिश्चित कर लिया जाय कि गवर्नर मंत्रियों के वैधानिक कार्यों में अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर बाधा नहीं डालेंगे और उनकी राय के विरूद्ध नहीं जायेंगे।

जिन 6 प्रांतों में कांग्रेस को बहुमत मिला था, उन प्रांतों के कांग्रेस विधायक दल के नेताओं ने अपने–अपने प्रांतों के राज्यपालों से मुलाकात की और उपर्युक्त नीति के आधार पर उनसे वचन माँगा। किन्तु राज्यपालों ने ऐसा वचन देने से यह कहते हुए इंकार कर दिया कि ऐसा कोई वचन नियम विरूद्ध होगा। इस पर सी. राजगोपालाचार्य ने अपने बयान में कहा ''गवर्नर द्वारा कोई वचन नहीं देने पर मंत्रिमंडल बनाने का निमंत्रण सम्मान के साथ अस्वीकार करने के अलावा कांग्रेस के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है। शासन की जिम्मेदारी लेने से पहले हमने जो शर्त रखी है उसकी मंशा सिर्फ इतनी ही है कि वायसराय या भारत सचिव की ओर से हस्तक्षेप संबंधी संरक्षणों के रहते हुए भी प्रांतीय गवर्नर एवं नवनियुक्त मंत्रिमंडल के बीच यह समझौता हो जाय कि गवर्नर अपनी ओर से बेवजह मंत्रिमंडल के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

उन्होंने यह भी कहा कि जब आप जनता को बहुमत के आधार पर मंत्रिमंडल बनाने व शासन की जिम्मेदारी लेने के लिए बुलाते हैं तो कानूनी रूप से आप हमें यह विश्वास तो दिला ही सकते हैं कि उस जिम्मेदारी को समुचित रूप से पूरा करने

में आप हमारे काम में बाधा नहीं डालेंगे। गवर्नर द्वारा हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन देने पर ही वह वातावरण बन सकता है जिसमें मंत्रिमंडल सुचारू रूप से अपना उत्तरदायित्व निभा सके। कांग्रेस ने वायसराय पर दबाव डाला कि वह गवर्नरों को ऐसा करने के लिए कहे। बाद में राज्यपालों को अपने विचार बदलने पड़े तथा उन्हांने मंत्रिमंडल के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन दिया।

4.9 कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल का गठन

वायसराय द्वारा कांग्रेस को बिना वजह मंत्रिमंडल के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन दिये जाने पर कांग्रेस ने 06 प्रांतों में अपनी सरकार बनाई। सिंध तथा उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत में मिला–जुला मंत्रिमंडल गठित हुआ। पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी व मुस्लिम लीग और बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी व मुस्लिम लीग ने मिलकर सरकार बनाई। जिन प्रांतों में कांग्रेस ने अकेले सरकार बनाई वे प्रांत थे – बम्बई, मद्रास, मध्यप्रांत, संयुक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा। प्रांतीय सरकारों के निर्वाचित प्रधान को मुख्यमंत्री के बदले प्रधानमंत्री की उपाधि दी गई। 1937 के चुनाव में हुई पराजय को मुस्लिम लीग भूल नहीं सकी। उसने कांग्रेस के प्रति अनुदार रवैया अपना लिया। इसी समय से वह पूर्णतया कांग्रेस विरोधी बन गई।

4.9.1 कांग्रेस मंत्रिमंडलों की उपलब्धियाँ

1. **नागरिक स्वतंत्रता –**

कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने नागरिक स्वतंत्रता की बहाली हेतु निम्न कदम उठाए –

- 1932 में जनसुरक्षा अधिनियम द्वारा प्रांतीय सरकार को प्रदान किये गये सभी आपातकालीन अधिकारों को समाप्त कर दिया गया।
- हिन्दुस्तान सेवा दल और यूथ लीग जैसे संगठन तथा पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं से प्रतिबंध हटा दिया गया।
- प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया।
- सरकारी विज्ञापन के लिए जिन प्रेसों को काली सूची में डाल दिया गया था, उनको वापस ले लिया गया।
- जब्त किये गये हथियार वापस लौटा दिये गये तथा रद्द किये गये हथियार लाइसेंस को पुनः बहाल कर दिया गया।
- पुलिस के अधिकारों में कमी कर दी गई। पुलिस द्वारा जनता के बीच दिये गये व्याख्यान को दर्ज करने तथा गुप्तचर विभाग द्वारा राजनीतिक कार्यकर्ताओं का पीछा किये जाने की व्यवस्था पर रोक लगा दी गई।
- राजनीतिक बंदियों तथा जेल में बंद क्रांतिकारियों को रिहा कर दिया

गया। राजनीतिक निर्वासन तथा नजरबंदी से संबंधित सभी आदेश रद्द कर दिये गये।

- बम्बई में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान सेवा से बर्खास्त किये गये अधिकारियों के पेंशन–भत्ते पुनः प्रारम्भ कर दिये गये।

2. **कृषि सुधार** – जमींदारी प्रथा को पूरी तरह समाप्त करके भी कांग्रेस ने कृषि ढाँचे का कायाकल्प करने का प्रयत्न नहीं किया। इसके प्रमुख कारण थे–

- मंत्रिमंडल के पास पर्याप्त अधिकार नहीं था।
- वित्तीय संसाधनों का घोर अभाव था।
- मंत्रिमंडल को मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था।
- विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करना एक प्रमुख समस्या थी।
- उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए भारतीयों को एक जुट करने के लिए आपसी सामंजस्य स्थापित करना अत्यंत आवश्यक था।
- कांग्रेसी मंत्रिमंडल के पास ज्यादा समय नहीं था।
- 1938 के बाद यूरोप में युद्ध के बादल मडराने लगे थे।
- कांग्रेस शासित राज्यों के दूसरे सदन में जमींदारों, भूस्वामियों, पूँजीपतियों, का वर्चस्व था तथा कांग्रेस अल्पमत में थी। सरकार को कोई भी कानून पारित कराने के लिए इनके साथ समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ता था।
- कृषि का ढाँचा अत्यंत जटिल एवं उलझा हुआ था।

इन अवरोधों के बाद भी कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने कृषि के ढाँचे में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किया। कृषि में सुधार करने के लिए अनेक विधानों का निर्माण किया गया। संयुक्त प्रांत व बिहार में कांग्रेसी सरकार ने 1939 में कास्तकारी अधिनियम पारित किया जिसके द्वारा आगरा व अवध के किसानों को जोत का पुश्तैनी अधिकार मिला। ये विधान भू–सुधार, ऋणग्रस्तता से राहत, वनों में पशुओं को चराने की अनुमति, भू–राजस्व के दरों में कमी तथा नजराना व बेगारी जैसे कानूनी कार्यों को समाप्त करने से संबंधित थे। कृषि क्षेत्र में किये गये सुधारों का लाभ मुख्यतया बड़े काश्तकारों को ही मिला तथा उप–काश्तकार इनसे ज्यादा लाभान्वित नहीं हो सके। कृषि मजदूरों पर इन सुधारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे इन सुधारों से अछूते रहे।

3. **मजदूरों के संबंध में कार्य –**

कांग्रेस मंत्रिमंडलों का रूख मजदूर समर्थक था। इनका आधारभूत दृष्टिकोण था – मजदूरों के हितों की रक्षा तथा औद्योगिक क्षेत्र में शांति की स्थापना। इन्होंने हड़तालों का कम से कम आयोजन करने तथा हड़ताल पर जाने के पहले अनिवार्य मध्यस्थता की वकालत की। उन्होंने श्रमिक की दयनीय स्थिति में सुधार करने तथा उनकी मजदूरी में वृद्धि करने का प्रयास किया।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने मजदूर संघों की हड़तालों को कानून एवं व्यवस्था के रूप में हल किया तथा जहाँ तक संभव हो सका, इनके लिए मध्यस्थ की भूमिका निभायी। इस रणनीति में कांग्रेसी मंत्रिमंडल को पर्याप्त सफलता मिली।

4. **समाज कल्याण संबंधी कार्य –**

कुछ निश्चित क्षेत्रों में शराब बंदी लागू किया गया। हरिजनों के कल्याण हेतु अनेक उपाय लागू किये गये जिनमें मंदिरों में प्रवेश, सामान्य नागरिक सुविधाओं का प्रयोग, छात्रवृत्तियाँ, पुलिस एवं सरकारी नौकरियों में इसकी संख्या में वृद्धि आदि सम्मिलित थे।

- प्राथमिक, तकनीकी एवं उच्च शिक्षा की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया।
- लोक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता जैसे मुद्दों को प्राथमिकता दी गई।
- खादी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए अनुदान की व्यवस्था दी गई।
- कारा सुधार योजना को कार्यान्वित किया गया।
- स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया।
- राष्ट्रीय योजना के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस ने राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया।

5. **जन–गतिविधियों के संबंध में कार्य –**

- जन–शिक्षा अभियान की स्थापना।
- पंचायतों की स्थापना।
- लोक शिकायत समितियों की स्थापना।
- लोक आंदोलन का प्रारम्भ।

4.9.2 द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रारम्भ एवं भारत की स्थिति

1939 के प्रारम्भ में यूरोप में युद्ध के संकेत स्पष्ट रूप से मिलने लगे थे। कांग्रेस ने विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी कि

वह भारतीयों के इच्छा के विपरीत देश को युद्ध में घसीटने के प्रत्येक प्रयत्न का विरोध करेगी लेकिन सरकार पर इस चेतावनी का कोई असर नहीं पड़ा। 1 सितम्बर 1939 ई को जर्मनी ने पोलैंड पर हमला कर प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ कर दिया। 3 सितम्बर 1939 ई को इंग्लैंड ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगों ने भारत को जर्मनी के विरूद्ध योद्धा देश घोषित कर दिया। इस प्रकार, ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता की राय के बिना ही उन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध की आग में झोंक दिया। 1 अप्रैल 1939 में अंग्रेजों ने भारतीय सेना की एक टुकड़ी को द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व ही अदन भेज दिया था।

कांग्रेस ने सरकार के इस कदम का जोरदार विरोध किया तथा इस बात पर बल दिया कि अगर इंग्लैण्ड लोकतंत्र की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रहा है तो सर्वप्रथम वह भारत से साम्राज्यवाद का अंत कर पूर्ण लोकतंत्र की स्थापना करें तथा भारतीयों को संविधान सभा द्वारा संविधान निर्माण का अधिकार प्रदान करें। कांग्रेस कार्यसमिति ने नई व्यवस्था के लिए लड़ाई में हर प्रकार के सहयोग देने की इच्छा प्रकट की लेकिन साम्राज्यावादी व्यवस्था की रक्षा हेतु युद्ध में किसी भी प्रकार का कोई सहयोग देने के लिए वह बिल्कुल भी तैयार नहीं थी। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार को इस शर्त पर द्वितीय विश्वयुद्ध में सहयोग देने के लिए तैयार थी कि सरकार उसे आश्वासन दे कि युद्ध के बाद वह भारत को स्वतंत्रता प्रदान करेगी। सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी। सरकार का उद्देश्य भारत में अधिराज्य या डोमिनियन स्टेटस की स्थापना करने मात्र तक सीमित था। अतः कांग्रेस ने सरकार के साथ असहयोग करने का निर्णय लिया।

मुस्लिम लीग भी बिना शर्त सरकार को सहायता देने के पक्ष में नहीं थी। वह सरकार से मुसलमानों के प्रति न्याय करने का आश्वासन चाहती थी। लीग ने सरकार को इस शर्त पर सहायता करने का वचन दिया कि सरकार कांग्रेस शासित प्रांतों में जहाँ मुसलमानों के स्वतंत्रता, जीवन, संपत्ति और प्रतिष्ठा पर खतरा है, तथा उनके अधिकारों को कुचला जा सकता है, अतः सरकार मुसलमानों के साथ न्याय करें।

4.9.3 कांग्रेस की माँगों पर सरकार की प्रतिक्रिया

तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनालिथगो ने भारतीय जनमत की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न दलों के लगभग 50 नेताओं से वार्ता किया। 17 अक्टूबर 1939 ई को उसने सरकार के तरफ से एक प्रतिवेदन प्रकाशित किया जिसमें दो बातों का उल्लेख किया गया था –

- ब्रिटिश सरकार ने वायसराय को यह कहने का अधिकार दिया है कि युद्ध समाप्ति पर वह सभी दलों एवं इनके नेताओं से परामर्श करेगी जिससे कि

उनकी सहायता और सहयोग से भारत के संविधान में वांछनीय सुधार किया जा सके।

- युद्ध के दौरान सरकार एक परामर्शदात्री समूह को आमंत्रित करेगी जिसमें जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि होंगे। यह समूह युद्ध संचालन एवं कार्यों के संबंध में जनमत से सरकार को अवगत करायेगी।

वायसराय के व्यक्तव्य द्वारा लीग एवं देशी रियासतों की मांग को पूरा करने का हर संभव प्रयास किया गया। इससे सबसे अधिक निराशा कांग्रेस को हुई क्योंकि माँगों की ओर सरकार ने थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। सरकार की इस घोषणा से असंतुष्ट होकर कांग्रेस ने सरकार के साथ असहयोग करने का निर्णय लिया।

4.9.4 कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा त्यागपत्र

अक्टूबर 1939 कांग्रेस कार्यकारिणी ने वायसराय के व्यक्तव्य की निंदा करते हुए भारत को युद्ध में शामिल करने के विरोध में सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों से इस संबंध में निंदा प्रस्ताव पास करने और त्यागपत्र देने का अनुरोध किया। कांग्रेस शासित 8 प्रांतों ने तत्संबंधी प्रस्ताव पारित किये तथा इन मंत्रिमंडलों ने 15 नवम्बर 1939 को त्यागपत्र दे दिया। इन प्रांतों में शासन की बागडोर गवर्नर के हाथ में चली गई। इस प्रकार प्रांतों में स्वशासन का युग समाप्त हो गया और गर्वनरों का अधिनायवादी युग शुरू हो गया। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के इस्तीफे के बाद सरकार ने 1 नवम्बर 1939 को गांधी जी, राजेंद्र प्रसाद एवं जिन्ना को वार्ता के लिए आमंत्रित किया। यह वार्ता असफल रही। 6 नवम्बर 1939 को वायसराय ने यह घोषणा कि भारतीय नेताओं से उसकी वार्ता विफल हो गई और सांप्रदायिक झगड़े के चलते भारत का संवैधानिक विकास अवरूद्ध हो गया। नवम्बर के अंत में प्रांतों में धारा 93 लागू कर शासन संचालन हेतु परामर्श मंडल को नियुक्त किया गया।

4.10 मुक्ति दिवस

कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा त्यागपत्र देने के बाद मुसलमानों ने जिन्ना के नेतृत्व में 22 दिसम्बर 1939 को मुक्ति दिवस मनाया गया। मुस्लिम के तत्वधान में सारे भारत में सार्वजनिक सभाएँ की गई और कांग्रेस के विरूद्ध प्रस्ताव पास किये गये। जिन्ना के इस कदम ने सरकार का हाथ मजबूत किया और भारतीय शासन की समस्या केवल राजनीतिक न रहकर संप्रदायिक हो गई। बाद में द्विराष्ट्र सिद्धांत के प्रतिपादन और पाकिस्तान की मांग ने समस्या को और गंभीर बना दिया। अम्बेडकर ने भी लीग के साथ मुक्ति दिवस मनाया।

4.11 कांग्रेसी मंत्रिमंडल का मूल्यांकन

यद्यपि 1939 के अंत तक कांग्रेसियों के मध्य सत्ता के लिए अवसरवादिता, आंतरिक कलह एवं जोड़–तोड़ के प्रयास जैसी बुराईयाँ परिलक्षित होने लगी थी

किंतु उनके संसदीय कार्यों ने उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की तथा जनता के मध्य उनके आधार को मजबूत किया। कांग्रेस का 28 माह का शासन निम्न कारणों से महत्वपूर्ण था –

- यह धारणा सिद्ध को गयी कि मौलिक सामाजिक संक्रमण के लिए भारतीय स्वशासन अत्यंत आवश्यक है।
- मंत्रिमंडलों ने सांप्रदायिकता को राकने की दिशा में सार्थक एवं सफल प्रयास किया।
- मंत्रिमंडलों ने भरतीयों के सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक एवं सॉंस्कृतिक उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया।
- ब्रिटिश नौकरशाही के मनोबल में कमी आई।
- कांग्रेस के संसदीय कार्यों ने जमींदारों, महाजनों जैसे विरोधी तत्वों पर पर्याप्त अंकुश लगाया।
- मंत्रिमंडल के कार्यों ने अंग्रेजों की इस धारणा को तोड़ दिया कि भारतीय शासन करने में सक्षम नहीं है।
- मंत्रिमंडल के कार्यों ने देश में एक ऐसी राजनीतिक वातावरण उत्पन्न की जिसमें आम जनता अपने को स्वतंत्र समझने लगी।
- जुलाई 1937 से अक्टूबर 1939 के अपने शासनकाल में कांग्रेस ने अपने संगठन का र्प्याप्त विस्तार कर लिया था जिसने आंदोलन को द्रुतगति से फैलाने में निर्णायक भूमिका रही। सभी प्रदेशों के प्रत्येक गाँव में कांग्रेस कार्यालय स्थापित हो गया था। इससे न केवल कांग्रेस का संगठन मजबूत हुआ बल्कि इन प्रदेशों में राजनीतिक चेतना भी आई जिसने भारत छोड़ों आंदोलन को उग्र रूप देने की पृष्ठभूमि तैयार की।

4.12 सारांश

भारत के भावी संविधान की रचना के लिए 1930, 1931 एवं 1932 में क्रमशः तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया गया जो असफल रहा। अंत में ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1933 ई में एक श्वेत–पत्र जारी किया। इस पर ब्रिटिश संसद की एक संयुक्त प्रवर समिति का गठन लॉर्ड लिनलिथगों के नेतृत्व में श्वेत पत्र पर विचार करने के लिए गठित की गई। 22 नवम्बर 1934 को समिति ने अपनी रिपोर्ट दी। इसी रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1935 ई का भारत सरकार अधिनियम पारित किया। 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा भारतीय संवैधानिक विकास के मार्ग को स्पष्ट कर दिया गया था। इसके द्वारा कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे जो प्रशसंनीय थे – प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना। इसके द्वारा

संघात्मक व्यवस्था की नींव डालकर भारतीयों को प्रशासन का प्रशिक्षण देने का सुंदर प्रयास किया गया। इसके कुछ विपरीत पक्ष भी थे। जैसे – संरक्षण एवं आरक्षण की व्यवस्था, सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति आदि। फिर भी भारतीय संवैधानिक विकास की दृष्टि से इसका अत्यधिक योगदान है। स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान का आधार भी यही अधिनियम बना। भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों के अनुकूल सरकार ने प्रांतों में फरवरी 1937 ई में चुनाव कराने की घोषणा की। जनवरी–फरवरी 1937 में देश के सभी प्रांतीय विधानसभाओं के लिए चुनाव हुए। सभी 11 प्रांतीय विधान सभाओं को मिलाकर कुल 1585 सीटें थी। इनमें से कांग्रेस ने 699 सीटें जीती और पाँच प्रांतों मद्रास, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बिहार, उड़ीसा में उसे स्पष्ट बहुमत मिला। चार प्रांतो – बंगाल, बम्बई, असम तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी किन्तु उसे बहुमत नहीं मिला। गवर्नर ने कांग्रेस को मंत्रिमंडल बनाने का आमंत्रण दिया किन्तु कांग्रेस ने इस आधार पर मंत्रिमंडल बनाने से इंकार कर दिया था कि उसे जनता की सेवा करने लायक पर्याप्त अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं। वायसराय द्वारा कांग्रेस को बिना वजह मंत्रिमंडल के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन दिये जाने पर कांग्रेस ने 06 प्रांतों में अपनी सरकार बनाई। 22 अक्टूबर 1939 कांग्रेस कार्यकारिणी ने वायसराय के व्यक्तव्य की निंदा करते हुए भारत को युद्ध में शामिल करने के विरोध में सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों से इस संबंध में निंदा प्रस्ताव पास करने और त्यागपत्र देने का अनुरोध किया। कांग्रेस शासित 8 प्रांतों ने तत्संबंधी प्रस्ता कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा त्यागपत्र देने के बाद मुसलमानों ने जिन्ना के नेतृत्व में 22 दिसम्बर 1939 को मुक्ति दिवस मनाया गया। मुस्लिम लीग के तत्वधान में सारे भारत में सार्वजनिक सभाएँ की गई और कांग्रेस के विरूद्ध प्रस्ताव पास व पारित किये तथा इन मंत्रिमंडलों ने 15 नवम्बर 1939 को त्यागपत्र दे दिया।

4.13 आदर्श प्रश्न

1. भारत सरकार अधिनियम 1935 की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. भारत सरकार अधिनियम 1935 में वर्णित अखिल भारतीय संघ के स्वरूप कीजिये।
3. भारत सरकार अधिनियम 1935 का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
4. 1935 के निर्वाचन की पृष्ठभूमि को समझाइये।
5. कांग्रेस मंत्रिमंडल के त्यागपत्र देने के कारणों को स्पस्ट कीजिये।

4.14 उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार	–	आधुनिक भारत 1885–1947
ए. त्रिपाठी	–	उग्रवादी चुनौती
पी. स्पीयर्स	–	द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)
डी. डाल्टन	–	महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति
सी.एच. हेमसथ	–	भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार
सुमित सरकार	–	बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)
रामलखन शुक्ला	–	आधुनिक भारत का इतिहास
सत्य राव	–	भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
जी.एन. सिंह	–	भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास
एस.सी. सरकार	–	बंगाल का नवजागरण
क्रिस्टोफर बेली	–	भारतीय समाज और ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण
बी.एल. ग्रोवर और यशपाल	–	आधुनिक भारत का इतिहास
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई–05 (भाग–2)

भारत छोड़ो आंदोलन

इकाई की रूपरेखा :

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि

5.4 भारत छोड़ो आंदोलन के कारण

5.5 कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव को स्वीकृति

5.5.1 वर्धा प्रस्ताव

5.5.2 बम्बई कांग्रेस अधिवेशन

5.6 भारत छोड़ो आंदोलन का प्रारम्भ एवं सरकार की दमनात्मक कारवाई।

5.6.1 भारत छोड़ो आंदोलन की प्रगति।

5.6.2 भारत छोड़ो आंदोलन का दमन।

5.6.3 भारत छोड़ो आंदोलन का भूमिगत संचालन एवं अंत।

5.7 भारत छोड़ो आंदोलन पर विभिन्न दलों की प्रतिक्रियाएँ।

5.8 भारत छोड़ो आंदोलन की असफलता के कारण

5.9 सारांश

5.10 आदर्श प्रश्न

5.11 उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

इकाई 3 में हमने सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं गोलमेज सम्मेलनों के संबंध में जानकारी प्राप्त की थी। इकाई 4 से हमें 1935 के भारत सरकार अधिनियम और कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गठन की जानकारी प्राप्त होती है। इकाई 5 इन घटनाओं से अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए भारत छोड़ो आंदोलन के विभिन्न पहलुओं से हमें जोड़ेगी। अध्ययन के दौरान हम भारत छोड़ो आंदोलन के कारणों, इसकी प्रगति एवं परिणामों को समझ सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तावित इकाई के अध्ययन से हम स्वराज संघर्ष की प्रक्रिया में हुए भारत छोड़ो आंदोलन की गहरी समझ अर्जित कर सकेंगे। यह अध्ययन हमने भारत छोड़ो आंदोलन का स्वराज संघर्ष में रहे योगदानों को समझने में सहायक होगी।

5.3 भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि

क्रिप्स मिशन की असफलता एवं क्रिप्स के अचानक भारत छोड़े जाने से यह बात स्पष्ट हो गई थी कि सरकार कोई भी कार्य भारतीयों के पक्ष में करने की पक्षधर नहीं है। वह मात्रा भारतीयों को धोखे में रखना चाहती है। क्रिप्स मिशन की असफलता से भारतीयों में निराशा और हतोत्साह की लहर दौड़ गयी। संपूर्ण देश में व्याप्त निराशा से चिंतित होकर गाँधी जी ने अनुभव किया कि भारत को निराशा से निकालने तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक और अंतिम युद्ध लड़ना होगा। क्रिप्स मिशन की विफलता के बाद घटनाक्रम तेजी से बदलता जा रहा था। बंगाल पर जापानी आक्रमण का खतरा बढ़ता जा रहा था, जिसके बचाव के लिए अंग्रेजों ने बंगाल में पीछे हटने की नीति अपनाई जिसका अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा। युद्ध के कारण बढ़ती कीमतों एवं जरूरी वस्तुओं की कमी से जनता अत्यधिक दुखी थी। इस बदली परिस्थिति में गाँधी जी ने आम जनता को सबसे बड़े संघर्ष के लिए तैयार किया। उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध भारत छोड़ो आंदोलन चलाने का निश्चय किया। भारत छोड़ो आंदोलन की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ''भारत छोड़ो का अर्थ यह नहीं है कि सभी अंग्रेजों को भारत से उठाकर बाहर फेंक दिया जाये। इसका अर्थ केवल सत्ता का हस्तांतरण है। गाँधी जी ने सरकार को मांग की कि वह तत्काल सत्ता भारतीयों को सौंप दे। इसके बदले गाँधी जी सरकार को भारत की भूमि से युद्ध संचालित करने की अनुमति देने को तैयार थे। अन्यथा उन्होंने धमकी दी ''भारत की बालू से एक ऐसा आंदोलन पैदा करेंगे जो खुद कांग्रेस से भी बड़ा होगा।

5.4 भारत छोड़ों आंदोलन के कारण

(i) **क्रिप्स मिशन की असफलता –** क्रिप्स वार्ता असफल होने एवं क्रिप्स के प्रस्तावों को वापस लिये जाने तथा सर स्टैफर्ड क्रिप्स को अचानक इंग्लैण्ड वापस बुलाये जाने से भारत में निराशा फैल गई। इससे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार को भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करने की थोड़ी भी इच्छा नहीं थी, वह केवल दिखावा कर रही थी। यही नहीं सरकार ने क्रिप्स मिशन की असफलता का उत्तरदायित्व भी कांग्रेस पर डाला। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध आंदोलन चलाने का निश्चय किया।

(ii) **भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार –** जापान द्वारा म्यांमार पर अधिकार कर लिये

जाने के बाद म्यांमार से जो भारतीय शरणार्थी भारत आ रहे थे उनके साथ भेदभाव एवं अमानवीय व्यवहार किया गया। यूरोपियनों को आने के लिए सरल व सही मार्ग दिये गये जबकि भारतीयों को कष्टदायक मार्ग दिया गया। मार्ग में उनके साथ अनेक अमानवीय दुर्व्यवहार किया गया जिसने गाँधी जी को अंग्रेजों के विरूद्ध आंदोलन चलने के लिए प्रेरित किया।

(iii) पूर्वी बंगाल में आतंक का प्रसार – अंग्रेजों ने जापानियों से लड़ने के लिए पूर्वी बंगाल को अपना सैनिक केंद्र बनाया। ब्रिटिश सरकार ने सैनिक उद्देश्यों के लिए किसानों की भूमि पर कब्जा कर लिया था तथा उनके फसलों को नष्ट कर दिया था। सैनिकों ने वहाँ के निवासियों की नावों को भी नष्ट कर दिया जिनसे हजारों परिवार जीवनयापन करते थें। इससे उन परिवारों के समक्ष रोजी–रोटी की समस्या उत्पन्न हो गई। जनता के कष्टों से दुखी होकर गाँधी जी ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध आंदोलन चलाने का निश्चय किया।

(iv) दयनीय आर्थिक स्थिति – द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण देश में वस्तुओं के मूल्य काफी अधिक बढ़ गयी थी। जनता उन्हें खरीदने की स्थिति में नहीं थी। उन्हें अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था। इससे जनता के आर्थिक कष्टों में वृद्धि हो गयी थी जिसके परिणामस्वरूप उनमें ब्रिटिश शासन के विरूद्ध असंतोष की भवना बहुत बढ़ गई। देश में चारों ओर असंतोष भड़क रहा था, जिसमें गाँधी जी को भारत छोड़ो आंदोलन चलाने के लिए विवश कर दिया।

(v) जापान के आक्रमण का भय – जापानी सेना म्यांमार पर अधिकार कर चुकी थी तथा वह निरंतर भारतीय क्षेत्रों की ओर तेजी से बढ़ रही थी। भारत पर जापानी आक्रमण का खतरा निरंतर बढ़ता जा रहा था। महात्मा गाँधी एवं अन्य भरतीय नेताओं यह अनुभव किया कि अंग्रेज भारत की रक्षा करने में असमर्थ हैं तथा उनका मानना था कि यदि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायेंगे तो जापान का भी आक्रमण भारत पर नहीं होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे प्रयत्नशील हो गए।

5.5 कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव को स्वीकृति

देश में निरन्तर निराशा का महौल बनता जा रहा था। इस स्थिति में जनता का मनोबल ऊँचा करना अत्यंत आवश्यक था। अतः गाँधी जी ने भारत छोड़ो आंदोलन चलाने का निश्चय किया। 5 जुलाई 1942 ई को गाँधी जी ने उद्घोषणा किया – ''अंग्रेजों भारत छोड़ो।'' उन्होंने हरिजन नामक पत्रिका में लिखा कि ''अब समय आ गया है जब अंग्रेजों भारत छोड़ो वह भी भारतीयों के लिए न कि जापानियों के लिए।'' एक अन्य लेख में उन्होंने लिखा कि ''भारत को ईश्वर के लिए छोड़कर

चले जाओ और यदि तुम्हारे लिए यह बहुत बड़ी बात है तो उसे अराजकता में छोड़ दो परन्तु चले जाओ।'' गाँधी जी का यह लेख पूरे भारत में गूँज उठा तथा आंदोलन का वातावरण बन गया।

(i) **वर्धा प्रस्ताव** – 14 जुलाई 1942 को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक महाराष्ट्र के वर्धा में हुई। इस बैठक में 27 अप्रैल से 1 मई 1942 में इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में गाँधीजी द्वारा रखे गये विचार का समर्थन किया गया कि भारत की समस्या का एकमात्र हल अंग्रेजों के भारत छोड़ देने में है। गाँधी जी के विचारों को प्राथमिकता देते हुए कांग्रेस कार्यसमिति में भारत छोड़ो का प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव को वर्धा प्रस्ताव भी कहा जाता है। इसी प्रस्ताव का नाम भारत छोड़ो प्रस्ताव रखा गया। इस प्रस्ताव के पारित होने के बाद गाँधी जी एवं कांग्रेस ने जनता में जागृति और मनोबल ऊँचा करने के लिए प्रयास करना शुरू कर दिया। गाँधी जी ने अपने साप्ताहिक पत्रिका हरिजन द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव का व्यापक प्रचार–प्रसार करना शुरू कर दिया। प्रस्ताव पारित होने के बाद गाँधी जी ने कहा कि ''हम खुला विद्रोह करेंगे।''

(ii) **बम्बई कांग्रेस अधिवेशन** – भारत छोड़ो प्रस्ताव की अंतिम स्वीकृति के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक 7 अगस्त 1942 ई0 को बम्बई के ऐतिहासिक ग्वालिया टैंक मैदान में हुई। बम्बई कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की। उन्होंने अधिवेशन में भारत छोड़ो प्रस्ताव पेश किया। 8 अगस्त की रात्रि में प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान गाँधी जी ने कहा – ''मैं पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी भी चीज से संतुष्ट नहीं हो सकता... यह है एक मंत्र बड़ा छोटा सा, जो मैं आपको देता हूँ... करो या मरो... हम भारत को स्वतंत्र करेंगे या इस प्रयास में मर मिटेंगे, हम अपनी गुलामी को स्थायी बनाया जाता देखने के लिए जिंदा नहीं रहेंगे...।''

कांग्रेस कार्यसमिति ने पर्याप्त विचार–विमर्श के बाद भारत छोड़ो प्रस्ताव को पारित कर दिया। समिति ने प्रस्ताव पारित करते हुए घोषणा की कि भारत के लिए और मित्र राष्ट्रों के आदर्श की पूर्ति के लिए इस देश में ब्रिटिश शासन के अंत होने की अत्यंत और तत्काल आवश्यकता है। इसी के ऊपर युद्ध का भविष्य और स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र की सफलता निर्भर है। स्वतंत्र भारत अपने विशाल साधनों को स्वतंत्रता के पक्ष में लगातार इस सफलता को सुनिश्चित कर देगा। इसलिए कांग्रेस पूर्ण आग्रह के साथ अंग्रेजों से अपनी सत्ता हटा लेने की मांग करती है। भारत की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद एक स्थायी सरकार की स्थापना की जायेगी। स्वतंत्र भारत मित्रराष्ट्रों का साथ देगा।

अगर सरकार इस माँग को पूरा नहीं करती है तो उस अवस्था में समिति एक अत्यधिक व्यापक पैमाने पर महात्मा गाँधी नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष चलाने की अनुमति देती है। साथ ही, ''भारतीयों से अपील करती है कि इस आंदोलन का आधार अहिंसात्मक हो और प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्गदर्शन करे।'' इस प्रकार कांग्रेस कार्यसमिति ने गाँधी जी के नेतृत्व में आंदोलन चलाने की घोषणा की।

5.6 भारत छोड़ों आंदोलन का प्रारम्भ और सरकार की दमनात्मक कार्यवाई

भारत छोड़ों आंदोलन प्रस्ताव पारित होने के बाद गाँधी जी ब्रिटिश सरकार को एक अवसर देना चाहते थें ताकि कांग्रेस वायसराय से मिलकर उनके समक्ष अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके तथा शांतिपूर्ण तरीके से उनके साथ स्वाधीनता के संबंध में विचार–विमर्श कर सके। लेकिन वायसराय ने गाँधी जी से मिलने से साफ इकार कर दिया। सरकार गाँधी जी की चुनौती को पहले ही स्वीकार कर तैयार बैठी थी। 9 अगस्त 1942 ई को भारत छोड़ो आंदोलन प्रारम्भ होने के पहले ही दिन प्रातः काल व्मतंजपवद ेमतव भ्वनत के तहत गाँधी जी, कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यों एवं कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी जी और सरोजिनी नायडू को पूना के आगा खाँ महल में नजरबंद कर दिया गया तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं को अहमदनगर के किले में बंदी बनाकर रखा गया। राजेन्द्र प्रसाद को पटना में नजरबंद कर दिया गया व जयप्रकाश नारायण को हजारीबाग जेल में रखा गया जहाँ से वे बाद में भाग गए। कांग्रेस को गैर–कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। कांग्रेस के दफ्तरों में ताला बंद कर दिया गया। पूरे देश में गिरफ्तारियों का दौर शुरू हो गया। सभाओं व जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं प्रेस पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया गया।

5.6.1 आंदोलन की प्रगति

कांग्रेस के राष्ट्रीय नेताओं को बंदी बना लिये जाने और सरकार की दमनात्मक कार्यवाई की नीति से जनता में विद्रोह की भावना पैदा हो गई। जनता के विरोध ने व्यापक जनविद्रोह का रूप धारण कर लिया। जनता का मार्ग प्रदर्शित करने के लिए कोई नेता बाहर नहीं रह गया था। यद्यपि कांग्रेस ने 9 अगस्त 1942 के पूर्व ही आंदोलन का 12 सूत्री कार्यक्रम तैयार कर रखा था किन्तु इनका सही ढंग से संचालन करने वाला नेतृत्व नहीं था। अतः जनता अनयिंत्रित हो गई। जनता के सामने करो या मरो का नारा था इसलिए पूरा देश आंदोलन–मय हो गई। जनता ने सरकार की नीति के विरोध में जुलूस निकाले, सार्वजनिक सभाएँ की, हड़ताल और प्रदर्शन किये गये। जगह–जगह पर आवागमन के साधनों को तोड़–फोड़ दिया गया। रेलवे और पुलिस थानों को जला दिया गया। जगह–जगह आगजनी की घटनाएँ हुई

व तोड़–फोड़ की कारवाई की गई। संचार के साधनों पर जनता ने अधिकार कर लिया। रेल–तार सेवा भंग कर दी गई तथा सरकारी संपत्ति को वृहत स्तर पर नुकसान पहुँचाया गया। करीब 250 रेलवे स्टेशनों, 500 डाकघरों को जला दिया गया तथा 150 थानों पर हमला किया गया। इस आंदोलन में किसानों, मजदूरों, महिलाओं समेत सभी वर्गों ने भाग लिया। अगस्त के मध्य में यह ग्रामीण इलाकों में फैल गया। अनेक स्थानों पर राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना की गई। आंदोलनकारियों ने उग्रवादी कार्यक्रम अपनाकर युद्ध प्रयासों में रूकावट डालने का प्रयास किया एवं आंदोलन के समर्थन में गुप्त रूप से प्रचार किया।

5.6.2 आंदोलन का दमन

देश के बड़े–बड़े शहरों में लगभग एक सप्ताह तक अंग्रेजों का शासन समाप्त हो गया। लगभग दो महीने तक पूरे देश में हिंसक गतिविधियाँ वृहत स्तर पर होती रही। सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए कठोर से कठोर कारवाई शुरू की। निहत्थी जनता पर लाठियाँ चलाई गई और अनेक स्थानों पर आंदोलनकारियों पर गोलियाँ भी चलाई गई। सरकार के दमनात्मक कारवायी से आंदोलन रूकने के स्थान पर और तेज गति से देश में फैलती चली गई। रेलवे, डाकघर, तार, थानों, सरकारी भवन और संपत्ति को नुकसान पहुँचाया गया। आंदोलन में भाग लेने वाले स्त्री–पुरूषों को बेरहमी से पीटा गया। आंदोलनकारियों की संपत्ति जब्त कर ली गई। प्रदर्शनकारियों पर कड़े जुर्माने लगाए गए। गाँवों पर सामूहिक जुर्माना लगाया गया। जनता ने लाठियों एवं गोलियों का जवाब पत्थरों एवं ईंटों से दिया। कई स्थानों पर हवाई जहाज से आंदोलनकारियों पर गोलियाँ चलाई गई। सरकारी आकड़ों के अनुसार भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान करीब 940 लोग मारे गये तथा 1630 लोग घायल हुए जबकि 60,229 लोगों को गिरफ्तार किया गया। भारत सचिव की रिपोर्ट के अनुसार इस आंदोलन के दौरान लगभग 1028 लोग मारे गये, 3215 व्यक्ति घायल हुए। वास्तव में मृतकों व घायलों की संख्या इससे बहुत अधिक थी। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों भारत से अंग्रेजों का शासन शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। किन्तु शासन की कठोर दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप आंदोलन भूमिगत हो गया।

5.6.3 आंदोलन का भूमिगत संचालन एवं अंत

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए जनता पर नृशंसतापूर्वक अत्याचार किया। सरकार की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप आंदोलन भूमिगत हो गया किन्तु समाप्त नहीं हुआ। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ही डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और अरूणा आसफ अली जैसे नेता उभर कर सामने आये। इन नेताओं के नेतृत्व में भारत छोड़ो आंदोलन का भूमिगत रूप से संचालन

होता रहा। आंदोलनकारियों ने उग्रवादी कार्यक्रम अपनाकर सरकार के युद्ध कार्यों में रूकावट डालने का प्रयास किया एवं गुप्त रूप से आंदोलन का प्रचार किया। लगभग तीन सप्ताह तक राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और अरूणा आसफ अली के नेतृत्व में आंदोलन चला। तत्पश्चात यह आंदोलन समाप्त हो गया। सरकार की दमनात्मक नीति के कारण भारत छोड़ों आंदोलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूर्णतया असफल रहा।

5.7 भारत छोड़ो आंदोलन पर विभिन्न दलों की प्रतिक्रियाएँ

भारत छोड़ो आंदोलन कांग्रेस द्वारा संचालित जन आंदोलन था। भारत के अनेक राजनीतिक दल इस आंदोलन का विरोध कर रहे थें तथा उन्होंने इस आंदोलन के दौरान कांग्रेस का साथ नहीं दिया। विरोध करने वालो में मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, साम्यवादी दल और देशी रियासतें थी।

(i) **मुस्लिम लीग** – मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस के भारत छोड़ो आंदोलन का विरोध किया। उसने आंदोलन को मुस्लिम हितों के विरूद्ध बताया तथा मुसलमानों को आंदोलन में भाग लेने से मना कर दिया। मुस्लिम लीग का कहना था कि ''यदि तात्कालिक समय में ब्रिटिश भारत को वर्तमान हाल में छोड़कर चली जाती है और भारत आजाद हो जाता है तो मुसलमानों को हिन्दुओं के अधीन हो जाना पड़ेगा तथा मुस्लिम हिन्दुओं द्वारा दबा दिये जायेंगे।'' जिन्ना ने गाँधी जी के विचारों को खारिज कर दिया। लीग ने आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार को हर संभव सहायता प्रदान की और कांग्रेस विरोधी दलों की सहायता से केन्द्र में अस्थायी सरकार बनाने का असफल प्रयत्न किया।

(ii) **हिन्दू महासभा** – हिन्दू राष्ट्रवादियों ने भी इस आंदोलन का खुलकर विरोध किया तथा औपचारिक तौर पर आंदोलन को समर्थन नहीं दिया। इन्हें भारत के विभाजन पर गहरा ऐतराज था तथा ये एकीकृत अखंड भारत चाहते थे। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष विनायक दामोदर सावरकर व श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने महात्मा गाँधी के विचारों के साथ असहमति जताया तथा उनका साथ देने से इंकार कर दिया।

(iii) **साम्यवादी दल** – साम्यवादियों ने रूस के द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रवेश करने पर ही युद्ध को जनयुद्ध कहा तथा इस बात का प्रयत्न किया कि युद्ध के दौरान सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान किया जाय। साम्यवादी दल ने भी भारत छोड़ो आंदोलन में भाग नहीं लिया। इस समय भारत में ब्रिटिश सरकार ने साम्यवादी दल पर प्रतिबंध लगा रखा था। साम्यवादियों ने दल पर से प्रतिबंध हटाने तथा सोवियत संघ को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध में मदद करने के लिए ब्रिटिश सरकार की मदद की जिसके परिणामस्वरूप साम्यवादी

दल पर से प्रतिबंध हटा दिया गया। साम्यवादी दल ने आंदोलन के दौरान मजदूरों को हड़ताल में भाग नहीं लेने के लिए कहा।

(iv) **राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ** – राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी भारत छोड़ो आंदोलन का समर्थन नहीं किया। भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा न लेने की वजह से इस संस्था के प्रति लोगों में गहरी नाराजगी थी क्योंकि यह आंदोलन भारत से ब्रिटिश सत्ता को हटाकर आजादी लाने के लिए था तथा संघ स्वतंत्रता आंदोलन में कोई योगदान नहीं दे रहा था।

(v) **देशी रियासतें** – देशी रियासतों के राजाओं, एवं जमींदारों ने भी इस आंदोलन में भाग नहीं लिया तथा आंदोलन का विरोध किया। इस आंदोलन को दबाने में इन लोगों ने ब्रिटिश सरकार को हर संभव सहायता दिया।

5.8 आंदोलन की असफलता के कारण

भारत छोड़ो आंदोलन गाँधी जी द्वारा चलाया गया सबसे बड़ा आंदोलन था। हालाँकि यह आंदोलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूर्णतया असफल रहा। यह आंदोलन निम्न कारणों से असफल रहा।

(i) **राजनीतिक दलों द्वारा असहयोग** – भारत छोड़ो आंदोलन का विभिन्न राजनीतिक दलों ने विरोध किया। मुस्लिम लीग, साम्यवादी दल, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने न केवल भारत छोड़ो आंदोलन का विरोध किया बल्कि आंदोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार को सक्रिय सहयोग दिया।

(ii) **कार्ययोजना का अभाव** – भारत छोड़ो आंदोलन को चलाने से पूर्व आंदोलन की रूपरेखा और कार्यक्रम स्पष्ट नहीं था। गाँधी जी को अंतिम समय तक यह आशा था कि सरकार से कोई समझौता हो जायेगा तथा आंदोलन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु ऐसा संभव नहीं हुआ। जैसे ही आंदोलन को प्रारम्भ किया सरकार ने पूर्व निर्धारित कार्य योजना के तहत सभी नेताओं को गिरफ्तार कर आंदोलन को कमजोर कर दिया तथा बाद में दमनात्मक कारवाई से आंदोलन का दमन कर दिया।

(iii) **सरकारी कर्मियों एवं उच्च वर्ग द्वारा सरकार को समर्थन** – भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान सरकारी कर्मचारियों एवं उच्च वर्ग ने सरकार को सक्रिय सहयोग दिया। उनमें सरकार के प्रति वफादारी की भावना बनी रही जिसके कारण सरकारी कार्य बिना किसी रूकावट के चलता रहा तथा सरकार को आंदोलन दबाने में आसानी हुई।

(iv) **आंदोलन में हिंसा का समावेश** – आंदोलन प्रारम्भिक चरण में पूर्णतया अहिंसात्मक था किन्तु कुछ समय के बाद कुशल नेतृत्व के अभाव में

आंदोलन में हिंसा आ गई। आंदोलन के दौरान अनेक स्थानों पर हिंसात्मक कारवाई की गई, सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया गया। हिंसा की प्रवृत्ति भारत छोड़ो आंदोलन की असफलता का एक कारण बन गई।

5.9 सारांश

यद्यपि भारत छोड़ो आंदोलन अपने मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में पूर्णतया असफल रहा किन्तु इस आंदोलन का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में व्यापक महत्व है। इस आंदोलन का निम्न दूरगामी परिणाम निकला–

- इस आंदोलन ने भारतीय जनता को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।
- यह आंदोलन एक व्यापक जनआंदोलन था, जिसमें पहली बार भारतीय जनता ने इतनी बड़ी संख्या में स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया।
- इस आंदोलन ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारत के आक्रोश और स्वतंत्र होने के संकल्प को प्रभावशाली और सुनिश्चित ढंग से व्यक्त किया।
- गाँधी जी ने अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा कि ''मैं उन लोगों में से एक हूँ, जो यह मानते हैं कि वीरों की हिंसा, अहिंसा से बेहतर होती है।''
- जनता में निर्भय होकर सरकार का सामना करने के लिए साहस और शक्ति में वृद्धि हुई।
- इस आंदोलन ने जनता में असाधारण जागृति उत्पन्न कर दी।
- आंदोलन का क्षेत्र और प्रभाव देशव्यापी था तथा इसका भारतीय राजनीति पर स्वतंत्रता संबंधी सकारात्मक विचारों को प्रोत्साहन मिला।
- इस आंदोलन से ब्रिटिश सरकार को स्पष्ट हो गया कि दमन व अत्याचार असंतोष को उभरने से रोक नहीं सकेंगे।
- इस आंदोलन से अंग्रेज यह समझ गये कि अब वे अधिक दिनों तक भारत पर राज नहीं कर सकेंगे और बल के आधार पर वे भारतीयों को ज्यादा दिनों तक दबा नहीं सकते।
- इस आंदोलन के बाद सरकार समझौता वार्ता की ओर उन्मुख हुई जिसमें कांग्रेस को प्रमुखता मिलने वाली थी क्योंकि वह एकमात्र राजनीतिक संगठन थी जिसमें जन आंदोलन खड़ा करने तथा स्थिर सरकार देने की क्षमता थी।
- इस आंदोलन के बाद मुसलमान मुस्लिम लीग के और करीब आ गए तथा सिंध एवं बंगाल में लीग का प्रभाव काफी बढ़ गया।

- इस आंदोलन ने विदेशों में भी भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में वातावरण उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
- इस आंदोलन ने ब्रिटिश जनता को भारतीयों की स्वतंत्रता प्राप्ति में सहयोग देने के लिए आगे आने के लिए प्रेरित किया।
- इस आंदोलन ने भारतीयों में इस भावना का प्रसार किया कि वे स्वतंत्रता की मंजिल के काफी करीब पहुँच चुके हैं।
- इस आंदोलन से उत्पन्न राजनीतिक चेतना के परिणाम स्वरूप 1946 में नौ सेना ने विद्रोह कर दिया, जिसने भारत में ब्रिटिश शासन पर गहरा आघात किया।

5.10 आदर्श प्रश्न

1. भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझाइये।
2. वर्धा प्रस्ताव पर टिप्पणी कीजिये।
3. भारत छोड़ो आन्दोलन के मुख्य घटनाक्रमों का वर्णन कीजिये।
4. भारत छोड़ो आन्दोलन की ब्रिटिश प्रतिक्रिया पर टिप्पणी करें।
5. भारत छोड़ो आन्दोलन का आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

5.11 उपयोगी पुस्तकें

ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार – आधुनिक भारत 1885–1947

ए. त्रिपाठी – उग्रवादी चुनौती

पी. स्पीयर्स – द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)

डी. डाल्टन – महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति

सी.एच. हेमसथ – भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार

सुमित सरकार – बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)

सन्दर्भ ग्रन्थ –

शेखर बंदोपाध्याय – प्लासी से विभाजन तक : आधुनिक भारत का इतिहास

विपिन चंद्रा – भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष

मृदुला मुखर्जी

आदित्य मुखर्जी

के.एन. पाणिक्कर

सुचेता महाजन

ए.आर. देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि,

सुमित सरकार – आधुनिक भारत 1885–1947

ए. त्रिपाठी – उग्रवादी चुनौती

पी. स्पीयर्स – द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ मॉर्डन इंडिया (1740–1947)

डी. डाल्टन – महात्मा गाँधी – कार्यरूप में अहिंसक शक्ति

सी.एच. हेमसथ – भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू समाज सुधार

सुमित सरकार – बंगाल में स्वदेशी आंदोलन (1903–08)

एस.एन. सेन – 1857

विपिन चंद्रा – आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद

अनिता इंदु सिंह – भारत विभाजन की उत्पत्ति, 1936–1947

के.एस. सिंह – बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन 1874–1901,

छोटानागपुर

रामकृष्ण मुखर्जी – ईस्ट इंडिया कम्पनी का उदय एवं पतन

आर.सी. मजूमदार – भारत का बृहद इतिहास

कालिविनदर दत्ता

एच.सी. राय चौधरी

एस.सी. सरकार – आधुनिक भारत का इतिहास

के.के. दत्ता

रामलखन शुक्ला – आधुनिक भारत का इतिहास

सत्य राव – भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

जी.एन. सिंह – भारत का संवैधानिक और राष्ट्रीय विकास

एस.सी. सरकार – बंगाल का नवजागरण

क्रिस्टोफर बेली – भारतीय समाज और ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण

बी.एल. ग्रोवर और – आधुनिक भारत का इतिहास

यशपाल

आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
पी.एल. गौतम	–	आधुनिक भारत
आर.सी. अग्रवाल	–	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन
डॉ0 महेश भटनागर		
डॉ0 वी.के. श्रीवास्तव	–	इतिहास (भारतीय इतिहास की विषयवस्तु)
इडवर्ड थाम्पसन एवं जी.टी. गैरट	–	भारत में ब्रिटिश शासन का उदय एवं पूर्तिकरण
जी.एस. सरदेसाई	–	मराठों का नवीन इतिहास
कामेश्वर प्रसाद	–	भारत का इतिहासकार
बी.एन. पूनिया	–	आधुनिक भारत का इतिहास
दीनानाथ वर्मा	–	आधुनिक भारत का इतिहास

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

MAHY-109

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

खण्ड – 3

स्वतन्त्रता और विभाजन

इकाई – 1

द्वितीय महायुद्ध और भारत 215

इकाई – 2

आजाद हिन्द फौज की स्थापना एवं कार्य 222

इकाई – 3

श्रमिक तथा कृषक आन्दोलन का विकास तथा वामपंथ और उसका योगदान 227

इकाई – 4

सत्ता हस्तान्तरण का घटनाक्रम 236

इकाई – 5

आजाद भारत और विश्व राजनीति 243

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार आचार्य — इतिहास एवं प्रभारी निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 अर्चना सिंह — सहायक आचार्य, इतिहास
काशी नरेश राजकीय पी0जी0 कॉलेज, भदोहीं, उ0प्र0

सम्पादक

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(इकाई 1–5)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2022 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2021

ISBN : 978-93-94487-87-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

इकाई–1
द्वितीय महायुद्ध और भारत

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 यूरोपीय समस्याऐं और द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रति भारतीय दृष्टिकोण

 1.2.1 भारत और द्वितीय विश्वयुद्ध

 1.2.2 अगस्त प्रस्ताव

 1.2.3 क्रिप्स मिशन

 1.2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन

1.3 बोध प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारत की स्थिति क्या थी? इस पर चर्चा की गयी है। तथा इस युद्ध के प्रति भारतीय जनमानस का दृष्टिकोण क्या था? यह भी समझने का प्रयत्न किया गया। इस इकाई में आप जान सकेंगे –

- द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारतीय जनमानस का दृष्टिकोण।
- द्वितीय विश्वयुद्ध का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर प्रभाव।

1.2 प्रस्तावना

''द्वितीय विश्वयुद्ध वास्तव में दो विरोधी साम्राज्यवादों के बीच था। यह तो सरासर मूर्खता तथा असम्भव था कि हम उसी साम्राज्यवाद की रक्षा के हेतु लड़ें जिसका हम इतने दिनों से विरोध करते आ रहे थे।'' .... जवाहर लाल नेहरू

भारतीय जनमत के मुख्य प्रवक्ता के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सन् 1930 से ही युद्ध विरोधी प्रस्ताव पारित करती आ रही थी। इन प्रस्तावों के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया था कि भावी साम्राज्यवादी युद्ध में भारत अपना सहयोग नहीं देगा। 1936 ई0 के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बिगड़ने लगी और द्वितीय विश्वयुद्ध की सम्भावनाऐं बढ़ने लगी। कांग्रेस ने इस स्थिति के लिए साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद दोनों को दोषी बताया और

ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी कि ऐसे युद्ध में भारत को घसीटने का प्रयास किया गया तो भारतीय जनता अपनी पूरी ताकत से इसका विरोध करेगी।

1.2 यूरोपीय समस्याऐं और द्वितीय विष्वयुद्ध के प्रति भारतीय दृष्टिकोण

1931 ई0 से ही यूरोप का राजनीतिक और कूटिनीतिक वातावरण अशान्त होने लगा था और धीरे–धीरे द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी होने लगी। 1933 ई0 में हिटलर ने जर्मनी के शासन पर कब्जा करके अपना अधिनायकत्व कायम किया। इसके पूर्व इटली में मुसोलिनी के नेतृत्व में फासिस्ट प्रणाली का शासनतन्त्र स्थापित हो चुका था। लेकिन 1930–1935 की यूरोपीय घटनाओं पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने विशेष ध्यान नहीं दिया। उस समय भारत की आन्तरिक राजनीति भी बड़ी डावाँडोल थी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चला फिर गाँधी इरविन समझौता हुआ और लन्दन में 'गोलमेज सम्मेलन' की धूम रही। भारतीय नेता इन्हीं घटनाओं में लगातार व्यस्त बने रहे लेकिन 1935 ई0 में जब यूरोप में फासिस्टवाद और नात्सीवाद का नग्न नृत्य होने लगा तो कांग्रेस के लिए यूरोपीय घटनाओं के प्रति उदासीन रहना असम्भव सा हो गया। कांग्रेस ने फासिस्टवाद का विरोध किया। उसकी फासिस्टविरोधी नीति के प्रवर्तक पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे। फासिस्टवाद से उनकी घृणा इतनी तीव्र थी कि जब मुसोलिनी ने उन्हें इटली आने के लिए आमंत्रित किया तो नेहरू ने इसे तत्काल रूप से अस्वीकार कर दिया।

इसी प्रकार जब 1935 ई0 में इटली ने अबीसीनिया पर हमला कर दिया तो अबीसीनिया ने राष्ट्रसंघ से सहायता की अपील की लेकिन महान राष्ट्रों की दुरंगी नीति के कारण राष्ट्रसंघ अबीसीनिया की कोई सहायता नहीं कर सका। भारत में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (अप्रैल 1936) में नेहरू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इतावली आक्रमण की तीव्र भर्त्सना की और कांग्रेस ने अबीसीनिया के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा कि अबीसीनिया के लोगों का संघर्ष संसार के शोषित राष्ट्रों के संघर्ष का ही एक भाग है और 09 मई 1936 ई0 को देश में 'अबीसीनिया दिवस' मनाया गया।

इसी प्रकार जब 1938 ई0 में स्पेन में गृह–युद्ध छिड़ा तो भारतीय जनता की ओर से कांग्रेस ने स्पेनवासियों के नाम सहानुभूति का संदेश भेजा और कुछ ही दिनों बाद प0 नेहरू स्वयं ही स्पेन गये और स्पेन के नेताओं से मिलकर भारत की सहानुभूति का प्रदर्शन किया तथा स्वदेश लौटने पर स्पेनवासियों की मदद की अपील की, इसके लिए लन्दन से बी0के0 कृष्णमेनन की अध्यक्षता में एक 'स्पेन भारत समिति' संगठित की। 1931 ई0 में चेकोस्लावाकिया को लेकर भी यूरोप की स्थिति में भयानक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस देश को हड़पने के लिए हिटलर अपना जाल बिछा चुका था तथा कोई भी देश चेकोस्लावाकिया की स्थिति पर आँसू बहाने को तैयार नहीं था।

इस घटना से प0 जवाहर लाल नेहरू को बहुत सदमा पहुँचा और उनके परामर्श पर कांग्रेस ने म्यूनिख समझौता पर उसकी कड़ी निन्दा की तथा चेकोस्लावाकिया के

विभाजन पर खेद प्रकट किया तथा महान राष्ट्रों की तुष्टिकरण की नीति की भी आलोचना की।

1.2.1 भारत और द्वितीय विश्वयुद्ध

1936 ई0 में युद्ध एवं फासिस्टवाद के विश्व संघर्ष की विश्व समिति के अध्यक्ष 'रोम्यॉरोला' ने बुसेल्स में एक सम्मेलन का आयोजन किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को इसमें शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। कांग्रेस ने इस निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए बी0के0 मेनन को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। अपने भाषण में कृष्णमेनन ने युद्ध के लिए साम्राज्यवाद को दोषी ठहराया और सम्मेलन को युद्ध के मौलिक कारणों पर विचार करने के लिए कहा।

सन् 1938 ई0 के काग्रेस अधिवेशन में भावी युद्ध की स्थिति पर पुनः विचार किया गया और अपनी नीति की घोषणा करते हुए कहा कि भारत संसार के सभी देशों के साथ मिलजुलकर शान्तिपूर्वक रहना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव और सहयोग में उसका पूर्ण विश्वास है लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं है जब तक सभी राष्ट्रों के अधिकारों को मान्यता नहीं मिलती। साम्राज्यवादी युद्ध में भारत किसी कीमत पर हिस्सा नहीं लेगा। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंवश सितम्बर 1939 में यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। नयी दिल्ली से एक उद्घोषणा निकालकर वायसराय ने भारत को भी इस युद्ध में सम्मिलित कर लिया।

इस परिस्थित में कांग्रेस के समक्ष एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी क्योंकि कांग्रेस कई वर्षों से यह घोषणा करती आ रही थी कि साम्राज्यवाद एवं फासिस्टवाद के गठबन्धन से जो युद्ध होगा उसका समर्थन भारत कभी नहीं करेगा। 14 सितम्बर 1939 को कांग्रेस ने युद्ध के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए साम्राज्यवाद, फासिस्टवाद और नाजीवाद तीनों की भत्सना की। और कांग्रेस को यह जानकर प्रसन्नता हुई की ब्रिटेन और फ्राँस स्वतन्त्रता और जनतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध में शामिल है। लेकिन कांग्रेस को ब्रिटेन की नियम पर भरोसा कम था क्योंकि वे कहते कुछ है और करते कुछ है। अतः कांग्रेस ने स्पष्ट किया कि यदि युद्ध का उद्देश्य जनतांत्रिक आधार पर संसार में नयी व्यवस्था कायम करना है तो कांग्रेस को इस युद्ध में बड़ी रूचि होगी अन्यथा नहीं। लेकिन ब्रिटिश सरकार पर कांग्रेस पर इस घोषणा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे शान्त बने रहे। इस प्रकार मध्य भारतीय राजनीति में एक तरह का गतिरोध उत्पन्न हो गया।

1.2.2 अगस्त प्रस्ताव

इस समय तक युद्ध में जर्मनी की तेजी से विजय होती जा रही थी। डेनमार्क, नार्वे, हॉलैंड, फ्रांस इत्यादि उसके अधिकार में आ गए थे। ब्रिटेन पर खतरे के बादल छा गए थे। ऐसी स्थिति में सरकार को भारत के समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता थी। गाँधी और नेहरू स्पष्ट शब्दों में कह रहे थे कि वे ब्रिटेन की बर्बादी का लाभ उठाकर स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं चाहते। ब्रिटिश शासन ने इस मौके का लाभ उठाने का निश्चय किया।

चर्चिल से अनुमति प्राप्त कर भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए वायसराय लिनलिथगो ने 8 अगस्त, 1940 को अपना अगस्त प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव रखे गए–

1. ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।
2. गवर्नर जनरल की सलाहकार समिति (कार्यकारिणी परिषद) का विस्तार कर अधिक संख्या में भारतीयों को स्थान दिया जाएगा।
3. अल्पसंख्यकों की स्वीकृति के अभाव में सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को लागू नहीं करेगी और न ही सरकार शक्ति द्वारा उन अल्पसंख्यकों को दबाएगी।
4. युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सभी वर्गो एवं राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाकर संवैधानिक विकास की समस्या पर विचार किया जाएगा।
5. युद्ध सम्बंधी विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिए युद्ध सलाहकार समिति बनाई जाएगी जिसमें भारतीयों को भी शामिल किया जाएगा।

अगस्त प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया

'अगस्त प्रस्ताव' काँग्रेस स्वीकार नहीं कर सकी। वह स्वतंत्रता और अपनी सरकार की मांग कर रही थी जो उसे नही मिली। इसलिए काँग्रेस का विश्वास सरकार पर से उठने लगा। इससे कालांतर में सांप्रदायिकता और देश के विभाजन को बल मिला। इसी कारण जहाँ काँग्रेस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, वहीं मुस्लिम लीग इस प्रस्ताव, से अंदर से संतुष्ट थी, भले ही पाकिस्तान की माँग स्वीकार नहीं किए जाने से वह ऊपर से असंतुष्ट थी, लेकिन उसके हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था जिसके सहारे वह आसानी से पाकिस्तान प्राप्त कर सकती थी।

अब काँग्रेस के सामने आंदोलन का मार्ग अपनाए जाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था। काँग्रेस ने अगस्त, 1940 में महात्मा गाँधी को यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पहले सत्याग्रही विनोबा भावे बने। नेहरू ने भी इसमें भाग लिया। इनकी देखा–देखी अनेक लोगों ने सत्याग्रह किया और बंदी बनाए गए। गाँधीजी के सत्याग्रहियों पर नियंत्रण के बावजूद हजारो व्यक्ति जेल गये।

इस बीच 'अगस्त प्रस्ताव' के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार कर उसमें भारतीयों की संख्या बढ़ा दी गई, लेकिन काँग्रेस और लीग इनमें सम्मिलित नहीं हुए। सरकार ने सम्भवतः भारतीय सदस्यों के प्रभाव से, 1941 ई0 में राजनीतिक बंदियों को जेल से रिहा कर दिया। इस समय तक युद्ध के मोर्चे पर ब्रिटेन की स्थिति नाजुक बनती जा रही थी। पर्लहार्बर पर जापानी आक्रमण, पूर्वी एशिया में उसकी बढ़ती प्रगति से सरकार घबड़ा उठी। सुभाष बोस जापानी सेना के सहयोग से भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। वर्मा में अंग्रेजो की स्थिति नाजुक बनती जा रही थी। ऐसी स्थिति में सरकार और कांग्रेस दोनों ही एक–दूसरे के करीब आए।

1.2.3 क्रिप्स मिशन

उपर्युक्त परिस्थितियों से बाध्य होकर चर्चिल महोदय ने युद्धकालीन मंत्रिमंडल के एक सदस्य सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजने की योजना बनाई। क्रिप्स 23 मार्च, 1942 को दिल्ली पहुंचे और 30 मार्च, 1942 को उन्होंने अपनी प्रसिद्ध योजना प्रस्तुत की। इस योजना के दो भाग थे –

1. युद्ध के पश्चात लागू किए जाने वाले प्रस्ताव।
2. युद्धकालीन स्थिति में ही तत्काल लागू किए जाने वाले प्रस्ताव। इन प्रस्तावों द्वारा सरकार ने यह स्वीकार किया कि वह युद्ध के पश्चात भारत को –

   (क) डोमिनियन स्टेटस प्रदान करेगी। कॉमनवेल्थ में रहने या नहीं रहने का अधिकार भारत का प्राप्त होगा।

   (ख) युद्ध के पश्चात भारत के नए संविधान के निर्माण के लिए एक संविधान–सभा बनाई जाएगी जिसके सदस्यों का चुनाव प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा और कुछ का मनोनयन देशी रियासतों के शासकों द्वारा किया जाएगा।

   (ग) ब्रिटिश भारत के किसी भी प्रान्त को या देशी रियासत को भारतीय संघ से अलग डोमिनियन स्टेटस पाने का अधिकार रहेगा।

   (घ) ब्रिटिश सरकार और संविधान–सभा में एक संधि होगी जिसमें अंगरेजी सरकार द्वारा भारतीय धार्मिक और अल्पसंख्यक जातियों को दिए गए आश्वासनों एवं सुरक्षा का वर्णन होगा। अर्थात् नए संविधान में उन सुविधाओं को बनाए रखना होगा।

क्रिप्स मिशन ने कुछ तात्कालिक उपाय भी सुझाए, लेकिन क्रिप्स मिशन भारतीयों को संतुष्ट नहीं कर सका। उल्टे इसने कांग्रेस और भारतीय जनता में अंगरेजों के प्रति अविश्वास और घृणा की भावना भर दी। सभी दलों ने विभिन्न कारणों से इसे अस्वीकृत कर दिया। फलतः अप्रैल, 1942 में क्रिप्स महोदय ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। इसकी विफलता के लिए भारतीय नेताओं को दोषी ठहराकर वे वापस चले गए।

1.2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारम्भ

सन् 1942 तक आते–आते युद्ध की स्थिति अत्यन्त नाजुक हो गयी जब संयुक्त राज्य अमेरिका इसमें शामिल हो गया तथा सोवियत संघ पर जर्मनी के आक्रमण से युद्ध के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के निरन्तर बिगड़ने से अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट और चीनी नेता च्यांगकाई–शेक ब्रिटिश सरकार पर भारतीय समस्या के समाधान के लिए दबाव डालने लगे। इन परिस्थितियों में प्रधानमंत्री बिन्सटन चर्चिल ने सर

स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारतीय गतिरोध को सुलझाने के लिए भेजा लेकिन यह क्रिप्स मिशन सफल नहीं हो सका। अतः यह तो निश्चित प्रतीत होने लगा था कि ब्रिटिश सरकार खुले विद्रोह के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं समझेगी। अतएव् 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के अतिरिक्त भारतीयों के पास सम्भवतः कोई अन्य विकल्प नही रह गया था। अतः अगस्त 1942 में कांग्रेस व्यापक पैमाने पर सरकार के खिलाफ संघर्ष शुरू कर दिया। सरकार ने इस आन्दोलन को बर्बरतापूर्वक शीघ्र ही कुचल दिया। सभी बड़े भारतीय नेता जेल भेज दिये गये। युद्ध में भारत को अपार जन–धन की हानि उठानी पड़ी तथा भारतीय दृष्टिकोण से युद्ध से भारत को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। लेकिन ब्रिटिश सरकार को अब यह महसूस होने लगा कि अब लम्बे समय तक भारत पर अधिकार बनाये रखना सम्भव नहीं है।

इंग्लैण्ड में यद्यपि चर्चिल ने यह कहा कि ''मैं सम्राट का प्रधानमंत्री इस लिए नहीं बना कि ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त हो जाय'' परन्तु ये शब्द मूलतः वहाँ के लोगों के बहकावे के लिए अधिक थे। उसे भी स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजों का प्रभाव जितना भी हो, आन्दोलनकारी जब चाहे देश के बड़े व्यवस्थित प्रशासन को ठप्प कर सकते है।''

सन् 1943 तक युद्ध मित्र शक्तियों के पक्ष में जाने लगा था परन्तु भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड वेवेल भी जो चर्चिल द्वारा नियुक्त किये गये थे इस दृढ़ निश्चय पर पहुँच गये थे कि युद्ध के उपरान्त इंग्लैण्ड को भारत से चले जाना चाहिए और उनका यह अनुमान था कि यह भावना अंग्रेजी सरकार तथा सम्पूर्ण जनता की भावना है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में फासिस्ट, नाजी शक्तियाँ तथा जापानी साम्राज्यवादी शक्तियाँ पूर्णतया परास्त हो गये। यद्यपि इंग्लैण्ड विजयी तो हुआ लेकिन अब वह दूसरी श्रेणी की शक्ति रह गया था। अब संसार में दो महान शक्तियाँ अमेरिका और रूस सामने आ गई चीन और इनमें से रूस विशेषकर उन सभी देशों के साथ था जो स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। इन परिस्थितियों मे इंग्लैण्ड के लिए अपना साम्राज्य बनाये रखना केवल समय का प्रश्न ही रह गया था और 1942 के विद्रोह ने भारत के स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

1.3 बोध प्रश्न–1

प्रश्न–1 कांग्रेस का द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रति क्या दृष्टिकोण था? इस 10 पक्तियों मे वर्णन कीजिए।

प्रश्न–2 निम्न प्रश्नों के उत्तर सही/गलत में दीजिए

a) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वितीय विश्व युद्ध में सहर्ष शामिल हुआ।

b) भारतीय जनता भी इस दौरान ब्रिटिश सरकार की सहयोगी बनी रही।

c) इस युद्ध ने देश की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त किया।

d) अमेरिका और जर्मनी इस युद्ध मे निर्णायक रूप से विजयी हुए।

1.4 सारांश

तात्कालिक दृष्टि से इस युद्ध से भारत को बहुत लाभ नहीं हुआ लेकिन युद्ध के समय चीन, ईरान आदि देशों से भारत के सम्बन्ध बढ़े। भारत और अमरीका के सम्बन्ध में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। किप्स मिशन समाचार पत्रों तथा संयुक्त राज्य अमरीका के लोकमत ने उन्हें यह मानने पर बाध्य कर दिया कि भारत में ब्रिटिश राज्य गलत है और सदैव गलत रहा है। इस लिए हम यह मान सकते है कि इस युद्ध ने भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.5 शब्दावली

फासीवाद– इटली के मुसोलिनी द्वारा संगठित राजनीतिक आन्दोलन जो मूल रूप में समाजवाद या साम्यवाद के विरूद्ध नही अपितु उदारतावाद के विरूद्ध था।

नाजीवाद– जर्मनी के तानाशाह एडोल्फ हिटलर की विचारधारा जिसमें सरकार की हर योजना में जनता–समाज की भागीदारी है।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

(a) गलत

(b) गलत

(c) सही

(d) गलत

इकाई–2
आजाद हिन्द फौज की स्थापना एवं कार्य

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 स्वतन्त्रता आन्दोलन में सुभाष चन्द्र बोस का प्रवेश

1.2.1 आजाद हिन्द फौज की उत्पत्ति

1.2.2 अस्थायी सरकार की स्थापना

1.2.3 सैनिक कार्यवाहियाँ

1.2.4 आजाद हिन्द फौज के अफसरों पर मुकद्मा

1.3 स्वतन्त्रता संग्राम पर आजाद हिन्द फौज का प्रभाव

1.4 बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में आजाद हिन्द फौज की स्थापना का सच उसके कार्यो आदि की चर्चा की गई है तथा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने इसमें अपना क्या योगदान दिया तथा किस प्रकार आजाद हिन्द फौज ने आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, इसे समझाने का प्रयास इसय इकाई में किया गया है।

1.1 प्रस्तावना

सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन पूरी तरह से ब्रिटिश सरकार द्वारा कुचल दिया गया तथा देश के सभी बड़े नेता जेलों में बन्द कर दिये गये तथा दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्वयुद्ध में व्यस्त थी। देखा जाए तो भारतीय राजनीति में सन् 1942–45 तक का समय निस्क्रिय राजनीति का समय था। जनता को नेतृत्व प्रदान करने वाला कोई नहीं था। अतः छिट–पुट घटनाओं के अतिरिक्त भारत में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। इसका मतलब यह नहीं था कि अंग्रेजो का विरोध समाप्त हो गया था। इन परिस्थितियों में भी एक व्यक्ति ऐसा था जो इस विरोध को सक्रिय नेतृत्व दे रहा था और वह व्यक्ति थे–सुभाष चन्द्र बोस। सुभाष चन्द्र बोस देश के अन्दर तथा बाहर (विदेशी मदद द्वारा) से

स्वतन्त्रता आन्दोलन को हवा दे रहे थे।

1.2 स्वतन्त्रता आन्दोलन में सुभाष चन्द्र बोस का प्रवेश

सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और गाँधीयुग के एक महान नेता थे। उनका जन्म 23 जनवरी 1897 ई में कटक (उड़ीसा) में हुआ था। उन्होंने आई0सी0एस0 की परीक्षा भी पास की लेकिन देश प्रेम की भावनाओं से प्रेरित होकर अंग्रेजी नौकरी छोड़ दी।

शीघ्र ही देशबन्धु चितरंजन दास के प्रभाव में आकर वे कांग्रेस की तरफ आकर्षित हुए। धीरे–धीरे वे कांग्रेस के एक प्रभावशाली नेता बन गये। बोस ने स्वराज दल के गठन और इसके प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गाँधी–इरविन समझौता और नेहरू रिपोर्ट से वे अत्यनत अप्रसन्न थे। नेहरू रिपोर्ट का विरोध करने के लिए उन्होंने ''इंडिपेंडेट लीग'' बनाई। उन्होंने साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रश्न पर गाँधी की नीतियों की कटु आलोचना की जिससे दोनों के मध्य सम्बन्ध बिगड़ने चले गये।

इसी समय 1939 ई0 में कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन हुआ गाँधी जी पट्टाभि सीता रम्मैया को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे। वहीं दूसरी ओर वामपंथी नेता सुभाष चन्द्र बोस को अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे इस चुनाव में सीता रम्मैया की हार हुई और बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने लेकिन गाँधी–बोस की नीतियों से अप्रसन्न थे। अतः बोस ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया तथा उन्होंने अपने विचार वाले व्यक्तियों को मिलाकर एक पार्टी का गठन किया जिसका नाम ''फारवर्ड ब्लाक'' रखा। ''फारवर्ड ब्लाक'' की स्थापना कर बोस स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेने लगे इस कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पुनः कैद कर लिया लेकिन कुछ समय पश्चात् ही उन्हें कैद से मुक्त कर दिया गया। जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तब सुभाष चन्द्र बोस ने जनता से ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध विरोध का आह्वान किया तो उन्हें सरकार ने अपने ही घर में नजर बन्द कर दिया।

1.2.1 आजाद हिन्द फौज की उत्पत्ति

सन् 23 जनवरी 1941 को अचानक पता चला कि बोस अचानक अपने घर से गायब हो गये। वास्तव में सुभाष अत्यन्त गुप्त तरीके से अफगानिस्तान और रूस होते हुए जर्मनी पहुंचे और वहाँ हिटलर से मुलाकात की। जर्मन सरकार ने उन्हें जापान भेजने का प्रबन्धन भी कर दिया।

सन् 1941 के उत्तरार्ध में जापान को युद्ध में अपार सफलता मिल रही थी। सिंगापुर, मलाया, वर्मा पर जापान का अधिकार हो गया था तथा ब्रिटिश शासन का प्रभाव क्षेत्र भी संकुचित होने लगा था। जापान की इस प्रगति को देखकर प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस ने टोकियो सम्मेलन में ''आजाद हिन्द फौज'' (इण्डियन नेशनल आर्मी I.N.A) के गठन की योजना बनायी। अंग्रेजी सेना के जो भारतीय सैनिक और अफसर जापान के अधीन थे तथा जिनकी संख्या लगभग साठ हजार थी वे इस सेना

में भारती किये गये तथा जापान ने शस्त्रों से इनकी सहायता की। कैप्टन मोहन सिंह ने आजाद हिन्द फौज पर मर मिटने का मन्त्र दिया।

इसी समय सुभाष चन्द्र बोस ने वहाँ उपस्थित होकर सेना के संगठन की बागडोर अपने हाथों में ले ली और 1 सितम्बर 1942 ई0 में औपचारिक रूप से फौज का गठन हुआ था तथा मोहन सिंह इसके प्रधान सेनापति बने।

1.2.2 अस्थायी सरकार की स्थापना

सुभाष चन्द्र बोस एक पनडुब्बी द्वारा 13 जून 1943 ई0 को टोकियो पहुँचे। जापान के प्रधानमन्त्री तोजो ने सुभाष का स्वागत किया तथा 4 जुलाई 1943 को रासबिहारी बोस ने पूर्व एशिया के भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व सुभाष को सौंप दिया। बोस ने स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार बनाने और फौज लेकर भारत जाने की घोषणा की। उन्होंने ''दिल्ली चलो'' का नारा दिया तथा भारतवासियों से कहा – ''तुम मुझे खुन दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा''। 21 अक्टूबर 1945 ई0 को उन्होंने सिंगापुर में ''स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार'' की स्थापना की। इस अस्थायी सरकार में हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा, जय हिन्द को अभिवादन, कांग्रेस के तिरंगे झण्डें को राष्ट्रीय ध्वज एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता ''जनगणमन अधिनायक ....'' को राष्ट्रीय गान के रूप में स्वीकार किया गया।

1.2.3 सैनिक कार्यवाहियाँ

अब सुभाष चन्द्र बोस जापानी सहयोग से भारत पर आक्रमण की योजना बनाने लगे उन्होंने ब्रिटेन पर अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा की दी। जापान ने अण्डमान और निकोबार द्वीप अस्थायी सरकार को सौंप दिया। बोस से इनका नाम बदलकर 'शहीद' और 'स्वराज' कर दिया और वहाँ का प्रशासन अपने हाथों में लिया।

शहनवाज खान के सेनापतित्व में फौज भारत वर्मा सीमा पर मित्रराष्ट्रो की सेना से युद्ध करने के लिए भेजी गयी। मई 1944 ई0 में फौज ने काक्स बाजार के निकट एक भारतीय चोकी पर अधिकार कर तिरंगा झण्डा लहराया। कोहिया पर भी फौज ने झण्डा फहराया किन्तु इसी बीच मई 1944 ई0 से युद्ध में जापान की स्थिति बिगड़ने लगी और वर्मा से जापान को हटना पड़ा। अंग्रेजो ने जापानियों के साथ फौज पर भी अत्याचार आरम्भ कर दिये। बदलती परिस्थितियों में जापानी सरकार फौज को पूरा सहयोग नहीं दे पायी और भारत विजय करने का बोस का स्वप्न अधूरा रह गया। बोस को रंगून भी छोड़ना पड़ा और बोस का मिशन सफल नहीं हो सके। इसके बाद कुछ लोगों का मानना है कि जापान के आत्मसमर्पण (14 अगस्त 1945) के कुछ समय पश्चात् ही एक हवाई दुर्घटना में बोस की मृत्यु हो गयी।

1.2.4 आजाद हिन्द फौज के अफसरों पर मुकद्मा

द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की पराजय और युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया। इन

सैनिकों पर राजद्रोह एवं विश्वासघात का आरोप लगाया गया। नवम्बर 1945 ई0 में दिल्ली के लाल किले में कर्नल शाहनवाज, कप्तान ढिल्लो और लेफ्टिनेंट सहगल पर मुकदमा चलाया गया। पूरे देश में सरकार के इस कार्य की तीखी प्रतिक्रिया एवं विरोध हुआ। उनको सजा दिये जाने के विरोध में जनप्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गये। कलकत्ता में प्रदर्शनकारियों ने सेना और पुलिस का मुकाबला किया। पूरे देश में इन नेताओं की रिहाई की मांग की जाने लगी। अनेक कांग्रेसी भी जो नेताजी के विरोधी थे वे भी सरकारी कार्यवाही का विरोध कर रहे थे। कांग्रेस की तरफ से भूलाभाई देसाई, तेज बहादुर सप्रु, कैलाश नाथ काटजू, जवाहर लाल नेहरु आदि इन अधिकारियों के मुकदमें की पैरवी कर रहे थे। यद्यपि मुस्लिम लीग ने इस मामले में निरपेक्षता की नीति अपनायी, परन्तु आसफ अली सरीखे मुस्लिम लीग के नेता भी इनकी रिहाई की मांग कर रहे थे। इन जबर्दस्त आन्दोलनों एवं प्रदर्शनों से सरकार को झुकना पड़ा और इन अधिकारियों को रिहा भी करना पड़ा। यह भारतीयों की बहुत बड़ी विजय थी।

1.3 स्वतन्त्रता संग्राम पर आजाद हिन्द फौज का प्रभाव

यद्यपि आजाद हिन्द फौज अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल रही फिर भी भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में उसे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसके संगठन और कार्यक्रम ने यह सिद्ध कर दिया कि अब विदेशी सरकार अपनी भारतीय सेना की राजभक्ति का भरोसा नहीं कर सकती। भारतीय सेना भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रमुख आधार थी तथा उसमें राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना का अभाव था। लेकिन आजाद हिन्द फौज का संगठन इस बात का प्रमाण था कि सेना भी राष्ट्रीयता की लहरों से ओत–प्रोत होने लगी है और उसे देश भी आजादी की लड़ाई में भी हिस्सा लेना है। इसके साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन का आधार, स्तम्भ (सेना) ही गिर गया। भारत में जिस तरह राष्ट्रीयता की भावना की प्रगति हो रही थी उसे देखकर यह लगने लगा कि भारत को इग्लैण्ड के अधीन रखने के लिए भारतीय सेना के स्थान ब्रिटिश सेना की आवश्यकता होगी, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इंग्लैण्ड की जनसंख्या कम हो गयी थी जिससे भारत में एक विशाल ब्रिटिश सेना की कल्पना असम्भव बात हो गयी थी।

आजाद हिन्द फौज से सन् 1946 में हुए नौसैनिक विद्रोह को भी प्रेरणा मिली। आजाद हिन्द फौज और इसके अध्यिाकारियों पर चलाये गये मुकदमों ने नौसेना के लोगों की सुषुप्त राष्ट्रीय भावनायें जगा दी। जिसके फैलाव से ब्रिटिश शासन पूरी तरह हिल गया।

1.4 बोध प्रश्न

प्र0–1 स्वतन्त्रता संग्राम में आजाद हिन्द फौज की क्या भूमिका (प्रभाव) रही? दस पंक्तियों में लिखिए।

प्र0–2 सही, गलत में उत्तर दीजिए।

a) आजाद हिन्द फौज का गठन से सुभाष चन्द्र बोस ने किया था।

b) आजाद हिन्द फौज के अफसरों पर लाल किले से मुकदमा चलाया गया।

c) आजाद हिन्द फौज अपने लक्ष्य में असफल रही।

d) आजाद हिन्द फौज ने नौसैनिक विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

1.5 सारांश

यद्यपि सुभाष चन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज अपने उद्‌देश्यों में सफल नहीं हो सकी, फिर भी बोस ओर आजाद हिन्द फौज ने भारत में उन राष्ट्रवादियों की हताश भावना को ढाढ़स बंधाया जो निराशा और असहायता से ग्रस्त थे। उन्होंने सेना के जवान और भारतीय जनता के हर वर्ग के सामने साहस और देशभक्ति की ऐसी मिसाल रखी जो प्रेरणा देने वाली थी और मर्यादा से जोड़ने वाली भी थी।

1.6 शब्दावली

साम्राज्यवाद – वह दृष्टिकोण जिसके अनुसार कोई महत्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति और गौरव को बढ़ाने के लिए अन्य देश पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर ले।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

उ0– a) गलत

b) सही

c) सही

d) सही

इकाई–3

श्रमिक तथा कृषक आन्दोलनों का विकास तथा वामपथ और उसका योगदान (1974)

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 श्रमिक आन्दोलन का विकास

1.2.1 बोध प्रश्न सं0–1

1.3 कृषक आन्दोलन का विकास

1.3.1 बोध प्रश्न सं0–2

1.4 वामपंथ और उसका योगदान

1.4.1 बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम भारत में बढ़ रही राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव देश की साधारण जनता (जिसके दो वर्ग में किसान और मजदूर) पर किस प्रकार पड़ा ? उन्होंने किस प्रकार अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए एकजुट होना प्रारंभ किया। इसके विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। साथ ही वामपंथ और राष्ट्रीय आन्दोलन में उसका क्या योगदान रहा इसकी जानकारी भी प्राप्त करेंगे।

1.1 प्रस्तावना

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न कारणों से फैल रही राष्ट्रीय चेतना को साधारण जनता, किसान और कारखानों में काम करने वाले मजदूर वर्ग ने निर्णायक ढंग से प्रभावित किया। रूस की क्रान्ति से इन दोनों वर्गों को बड़ी प्रेरणा मिली और वर्ग चेतना ने उनको अत्यन्त लड़ाकू बना दिया। बाद के वर्षों में महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलन में आने से इस वर्ग को बड़ी राहत महसूस हुई क्योंकि उनका आन्दोलन, जन आन्दोलन था। यद्यपि गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का संघर्ष पहले से अधिक व्यापक हो गया था लेकिन उस पर अभी उच्च मध्य वर्ग का ही प्रभाव था। स्वयं गांधी जी के आंशिक सामाजिक

विचार कई तरह के भ्रम पैदा करने वाले थे।

गांधी जी जहाँ एक तरफ तो गरीब, किसानों और शोषित मजदूरों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते रहे और दूसरी ओर वे जमींदारों और पूंजीपतियों को आश्वासन देते रहे। ऐसी स्थिति में किसान और मजदूरों को शुरू–शुरू में खूब पहल कदम करना पड़ी, मैदान में कूदना पड़ा और स्वयं संघर्ष के लिए आगे आना पड़ा। कालान्तर में उनका सारा संघर्ष राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अंग बन गया।

1.2 श्रमिक आन्दोलन का विकास

19वीं तथा 20वीं शताब्दी में भारतीय उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप दो नये वर्गों का समाज में उदय हुआ पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग। इन दोनों वर्गों के मध्य बहुत अधिक असामानता थी। सरकारी नीतियों भी श्रमिकों के हितों के अनुकूल नहीं थी। एक ही साथ साम्राज्यवादी राजनीति व्यवस्था तथा पूंजीपतियों के शोषण का शिकार उन्हें होना पड़ रहा था। इसलिए श्रमिक अपने हितों की सुरक्षा के लिए संगठित होने और संघर्ष करने के लिए एकजुट होने लगे।

1853 ई0 में जब भारत में रेलवे का निर्माण आरंभ हुआ तब उनमें काम करने के लिए बड़ी संख्या में मजदूरों को भर्ती किया गया। कोयला खानों, कारखानों और कल कारखानों में अकुशल श्रमिक एवं पढ़े–लिखे लोग बड़ी संख्या में भर्ती किये गये लेकिन मालिक और पूंजीपति इनकी सुविधा का कोई ध्यान नहीं रखते। उन्हें कम मजदूरी पर ही लम्बे समय तक अस्वस्थ्य वातारण में काम करना पड़ता था। भारत में सस्ते मजदूरों को देखकर लंकाशायर के वस्त्र–उत्पादकों को भय हुआ कि कहीं भारतीय कपड़ा उद्योग सस्ती मजदूरी के कारण उनका प्रतिद्वन्दी न बन जाये इसलिए श्रमिकों की स्थिति सुधारने के नाम पर नियंत्रण स्थापित करने की व्यवस्था की गयी।

1881 ई0 में फैक्ट्री कानून बनाकर 7 वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर कारखानों में काम करने पर 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के काम के घंटों को सीमित करने तथा खतरनाक मशीनों के चारों ओर बाड़ा लगाने की व्यवस्था की गयी थी। दूसरी फैक्ट्री कानून 1891 ई0 में बना जिसमें स्त्रियों के काम करने की अवधि 11 घण्टे ($1\frac{1}{2}$ घण्टे मध्य अवकाश के साथ) निश्चित की गई। 20वीं शताब्दी में कुछ और भी कानून श्रमिकों की स्थिति सुधारने के लिए बने। इन सबमें 1911 ई0 का फैक्ट्री अधिनियम था। जिसमें 14 साल के ऊपर के मजदूरों के काम के घण्टे घटाए गए और निश्चित किया गया कि श्रमिकों से 12 घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जायेगा। लेकिन इन सबके बावजूद श्रमिकों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ तथा उनका शोषण जारी रहा।

लेकिन धीरे–धीरे मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना आने लगी। इन अधिकारों के लिए 1882–1890 ई0 के मध्य बम्बई और मद्रास प्रान्तों में कम से कम 25 हड़तालें हुई। 1884 ई0 में एन0एम0 लोखंडे नामक एक पत्रकार की पहल से बम्बई के

मजदूरों का बम्बई मिल मजदूर एसोसिएशन का संगठन किया गया। इसी प्रकार 1985 ई0 में अहमदाबाद में आठ हजार बुनकरों की हड़ताल हुई। इन हड़तालों के बावजूद भी 19वीं शताब्दी तक मजदूरों का कोई दृढ़ संगठन नहीं बना था लेकिन उनमें वर्ग चेतना तथा एकता की भावना आने लगी थी।

1905–1904 ई0 में भारत में उग्रवादी राष्ट्रीय आन्दोलन का मजदूरों के जागरण पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के समय पूरे भारत में श्रमिकों की अनेक हड़तालें तो हुई। लेकिन अभी भी वे पूरी तरह से संगठित नहीं थे। जिसके अनेक कारण थे जैसे–भारत के मजदूर गरीब थे, अशिक्षित थे और उनके पास साधनों का अभाव था। दूसरा इनके आन्दोलन को बाहरी लोग नेतृत्व देते थे तथा देश में समाजवाद के आधार पर मजदूर वर्ग के विचारों और संघर्ष के सिद्धान्त के आधार पर चलने वाला कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न कारणों से प्रेरित होकर जो लोग मजदूरों का नेतृत्व करने आये वे मजदूर आन्दोलन की जरूरतों तथा उसके उद्‌देश्य को समझ नहीं सके और उन्हें सही नेतृत्व नहीं दे सके।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद स्थिति धीरे–धीरे बदलने लगी। रूस की बोल्सेविक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप दुनिया में क्रान्तिकारी लहर उठने लगी। भारत का मजदूर वर्ग भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। उस समय देश की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने मजदूरों में नयी जागृति उत्पन्न करने में मदद की। अपनी स्थिति से असंतुष्ट मजदूरों ने सन् 1919–20 में देश के औद्योगिक केन्द्रों में हड़तालों का तांता लगा दिया। इन हड़तालों से असहयोग आन्दोलन की बड़ी मदद मिली।

अखिल भारतीय कांग्रेस ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद विश्व के सभी मजदूरों की स्थिति को ठीक करने के लिए एक 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ;प्स्व्द्ध की स्थापना की गई। जिसका प्रभाव भारतीय मजदूरों पर भी पड़ा। अब हड़तालों के साथ–साथ मजदूरों की एकता और शक्ति को बनाये रखने के लिए मजदूर यूनियन भी बनाये जाने लगे। सन् 1920 तक भारत में लगभग 125 मजदूर संघ बनाये गये। इस दिशा में पहल कांग्रेस की ओर 31 अक्टूबर 1920 को बम्बई में लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की गठन किया। इस अखिल भारतीय संगठन पर आरंभ में उदारवादी नेताओं जैसे चितरंजन दास, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस ने इसके कार्यों में रूचि ली। 1920 ई0 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में मजदूरों और किसानों के संबंध में प्रस्ताव पारित कर उनकी दशा सुधारने के लिए कार्यक्रम बनाने का निर्णय लिया। इसके बाद कांग्रेस निरन्तर मजदूरों की समस्याओं पर ध्यान देने लगी। 1925 ई0 में कानपुर अधिवेश में कांग्रेस ने रचनात्मक कार्यों में मिल मजदूरों को संगठित करने का कार्यक्रम स्वीकार किया। पुनः 1927 ई0 में कांग्रेस ने औद्योगिक मजदूरों के बीच कार्य करने के लिए प्रचारक नियुक्त करने और संगठन बनाने की योजना बनाई गई।

सन् 1923 में लाला लाजपत राय, जोजेक बैपटिस्टा, दीवान चमनलाल आदि

मजदूर नेताओं ने मिलजुल कर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की। इसके प्रसिद्ध नेताओं एन0एम0 जोशी, वी0बी0 गिरी आदि के नाम शामिल थे। सन् 1927 तक ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने 57 यूनियनें शामिल हो गई जिनमें सदस्यों की सं0 150555 थी।

स्पष्ट है कि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात मजदूरों में नई चेतना का तेजी से विकास हुआ और श्रमिक आन्दोलन में वृद्धि हुई, परन्तु इस ट्रेड यूनियन कांग्रेस का रूख सुधारवादी था क्रान्तिकारी नहीं। इस पर ब्रिटेन के श्रमिक दल के समाजवादी लोकतंत्रवादी विचारधारा का प्रभाव था और ये नेता भी श्रमिक संगठनों की राजनीतिक गतिविधियों केवल श्रमिकों की आर्थिक दशा सुधारने तक ही सीमित रहे। गांधी जी के अहिंसावाद, ट्रस्टीशिप तथा वर्ग सहयोग की भावना के कारण मजदूरों को राजनीतिक आन्दोलनों से दूर रखने का प्रयास किया और उन्हें 1920–22 के असहयोग आन्दोलन में श्रमिक को शामिल नहीं किया गया।

साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव

भारतीय श्रमिक वर्ग को क्रान्तिकारी मार्ग पर ले जाने का प्रयास साम्यवादियों ने किया। साम्यवादी प्रभाव के कारण व्यापार संघ में क्रान्तिकारी भावना आने लगी। असहयोग आन्दोलन समाप्त होते–होते पुनः हड़तालों की संख्या बढ़ने लगी। विश्व की आर्थिक मन्दी का श्रमिकों पर बुरा असर पड़ा। 1928 ई0 में औद्योगिक अशान्ति बनी रही। इस वर्ष 203 हड़तालें देश में हुई। जिनका उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना था। सरकार ने इन हड़तालों की जांच एवं हड़तालों के बढ़ते प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से 1928 ई0 में 'हिब्टली कमीशन' भारत भेजा। इस कमीशन के विरोध में प्रदर्शन और सभाएं आयोजित की गई। साम्यवादियों का प्रभाव कम करने के उद्देश्य से 8 अप्रैल 1929 ई0 को 'श्रमिक विवाद अधिनियम' बनाया गया। जिसका उद्देश्य हड़तालों और श्रमिकों के राजनीतिक कार्यों पर अंकुश लगाना था। 1934 ई0 में चुनावों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने साम्यवादी दल और उससे सम्बद्ध संगठनों को गैर कानूनी घोषित कर दिया। इस आदेश से श्रमिक आन्दोलन को आघात पहुंचा परन्तु श्रमिकों का आन्दोलन नहीं रूका। द्वितीय विश्व युद्ध के अवसर पर श्रमिक संगठनों को एकबद्ध करने और संघर्ष चलाने के अनेक प्रयास हुए और युद्ध के समाप्त होने के बाद मजदूर पुनः अपनी बिखरी हुई शक्ति को बटोरकर सामने लगा।

1.2.1 बोध प्रश्न सं0–1

प्रश्न 1: प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मजदूर आन्दोलन के विकास पर 10 पंक्तियां लिखिये–

प्रश्न–2 निम्न प्रश्नों का सही या गलत में उत्तर दीजिए–

a. प्रथम फैक्ट्री कानून 1891 ई0 में बनाया गया।

b. 1911 के फैक्ट्री कानूनी में 12 घण्टे से अधिक मजदूरों से काम लेने पर रोक

लगायी गयी।

c. आल इण्डिया ट्रेड यूनियन का गठन लाल लाजपत राय की अध्यक्ष में किया गया।

d. श्रमिक आन्दोलन पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव नहीं पड़ा।

1.3 किसान आन्दोलन का विकास

भारत में जमीन जोतने वाले किसान को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है बड़े किसान, मंझले किसान और छोटे किसान। जब से भारत में अंग्रेजों ने अपनी पैठ जमाकर अधिक से अधिक भूराजस्व एकत्र करने के उद्‌देश्य से विभिन्न भू–पद्वतियां चलायी गई। तब से अंग्रेज भारतीय किसानों का विभिन्न प्रकार से शोषण करते आ रहे थे। ये किसान कर्ज के बोझ से बुरी तरह दबे हुए थे जिसके अनेक कारण थे। ब्रिटिश शासन के पूरे काल में किसानों का तीनों तरफा शोषण हो रहा था। (1) सरकार किसानों से मालगुजारी लेती थी। (2) जंमीदार लगान वसूलता था और (3) क्रूर साहूकार उनका सबकुछ लूट लेता था। इसके सभी के विरूद्ध किसान प्रारंभ से ही विद्रोह करते आ रहे थे। जिनमें उन्नीसवी सदी में नील विद्रोह (1859–60) ई0, मोपला विद्रोह, संथाल विद्रोह (1875) चम्पारन आन्दोलन (1915 ई0), खेड़ा आन्दोलन (1918) ई0, बिरसा मुंडा आन्दोलन (1895) ई0 ताना भगत आन्दोलन आदि प्रमुख किसान विद्रोह थे।

ये किसान अपना गुस्सा जमींदारों, साहूकारों पर समय–समय निकालते रहे। इसमें उन्हें भी अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि सरकार पूरी ताकत से जमींदारों और साहूकारों की मदद किया करती थी। लेकिन 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में हुए इन किसान आन्दोलनों ने किसानों में एक नई चेतना जगा दी। वे भी अपने सामाजिक और आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए जुझारू रूख अपनाने लगे।

राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ–साथ किसान आन्दोलन में भी वृद्धि होने लगी तथा उनके भी संगठन बनने लगे। महात्मा गांधी ने किसानों को भी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की मुख्य धारा में आने के लिए प्रेरित किया। 1920 ई0 के आसपास बंगाल, पंजाब उत्तर पश्चिमी प्रान्त में किसानों के संगठन स्थापित किये गये। इन किसानों ने भारत के अनेक भागों में सामन्ती शोषण के विरूद्ध आन्दोलन किये। उत्तर पश्चिमी प्रान्त में रायबरेली और फैजाबाद के किसानों ने गैरकानूनी कर देने से इंकार कर दिया। वहां किसानों ने एका (EKKA) आन्दोलन चलाया। उड़ीसा में भी किसान आन्दोलन कर रहे थे। वास्तव में रंपा विद्रोह, मोपला विद्रोह, भील विद्रोह आदि किसान आन्दोलन ही थे। लेकिन देश में किसानों का संगठित आन्दोलन 1929–30 में विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के दौर में प्रारंभ हुआ। इस आर्थिक मंदी ने किसानों की कमर तोड़ दी। जमींदारों और साहूकारों की जोर जबरदस्ती बहुत बढ़ गई थी। वे लगातार लगान में बढ़ोत्तरी कर रहे थे और उनकी भूमि छीनने का प्रयास कर रहे थे। बाद में किसानों ने संगठित होकर इसका विरोध करने

का प्रयास किया। इस कार्य में उन्हें कांग्रेस की मदद मिली। गांव–गांव में किसान कमेटियां बनने लगी थी। इन कमेटियों का काम बेदखली का विरोध करना था। ये कमेटियां धीरे–धीरे एक दूसरे से मिलकर जिला कमेटियां और फिर प्रान्तीय स्तर पर किसानों के संगठन कायम हुए। इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। 'अखिल भारतीय किसान सभा का गठन'।

किसान सभा का गठन और उसके कार्य

अप्रैल 1935 ई0 में संयुक्त प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) में प्रान्तीय किसान संघ की स्थापना की गई। इसके बाद एन0जी0 रंगा एवं नवूंदरी वाद ने अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना के लिए प्रयास किये। अप्रैल 1936 ई0 में लखनऊ में स्वामी सहजानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का पहला अधिवेशन फैजपुर में हुआ। सभा ने एक किसान–कौन्सिल की स्थापना की तथा एक किसान बुलेटिन नामक पत्र निकालने का भी निर्णय लिया। इसका सम्पादन इंदुलाल याज्ञिक ने किया। तथा इस अधिवेशन में लगभग बीस हजार किसानों ने भाग लिया तथा अखिल भारतीय कांग्रेस के साथ मिलकर किसान सभा ने राजनीतिक भाईचारा स्थापित करने का प्रयास किया। किसान कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य निम्न थे।

- आर्थिक शोषण से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करना और किसान, मजदूर और शोषित वर्गों का आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति दिलाना।
- किसानों को संगठित करना और तत्कालीन आर्थिक और राजनीतिक माँगों के लिए लड़ना ताकि वे शोषण से मुक्त हो सके।
- स्वाधीनता संग्राम में भाग लेना।

किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में प्रदर्शन किये और 1 सितम्बर 1936 को पूरे देश में किसान दिवस मनाया गया। 1937 ई0 में कांग्रेसी प्रान्तीय सरकारों के गठन के बाद किसानों में यह उम्मीद जगी कि सरकार किसानों को राहत प्रदान करेगी। लेकिन निराश होकर 1937 ई0 में किसानों ने बिहार में विशाल प्रदर्शन किया। 1963 ई0 तक यह किसान सभा अत्यन्त सशक्त हो चुकी थी। किसानों के दबाव में ही 1937–1938 के बीच प्रान्तीय कांग्रेस सरकारों ने भूमि और लगान सम्बन्धी सुधार कार्यक्रम अपनाये। किन्तु बाद में कांग्रेस ने किसानों और किसान सभा के विरूद्ध अनुदार रूख अपनाया और किसान सभा को तोड़ने का प्रयास किया जाने लगा। कांग्रेसियों द्वारा किसान सभा की कार्यवाहियों में भाग लेने पर प्रान्तीय कांग्रेस और जिला कांग्रेस समितियों द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया। लेकिन फिर भी किसान आन्दोलन का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान किसान आन्दोलन ने जोर पकड़ना प्रारंभ किया। जब 1942 ई0 में सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन को बुरी तरह कुचल दिया और कांग्रेस नेताओं को जेल में बंद कर दिया तो किसान आन्दोलनों ने आगे बढ़कर स्वतंत्रता आन्दोलन को

आगे बढ़ाया। किसान नेताओं ने कांग्रेसी नेताओं की रिहाई की मांग की। इस प्रकार के आन्दोलन स्वतंत्रतापूर्व और बाद में चलते रहे। इन किसान आन्दोलनों को साम्यवादी और समाजवादी विचारधारा के प्रभाव से बहुत अधिक सहायता मिली। सन् 1946–47 में साम्यवादी नियंत्रित किसान सभाओं, बंगाल, केरल, हैदराबाद और अन्य राज्यों में किसानों ने सघर्ष तेज कर दिया। उनकी मांग जमींदारी प्रथा समाप्त करने की थी। इसके लिए किसानों लड़ाकू ढंग से अपना संघर्ष करना प्रारंभ कर दिया।

1.3.1 बोध प्रश्न 2

प्र0 1 ब्रिटिश काल में किसानों की दशा पर टिप्पणी लिखिए

1.4 वामपंथ और उनका योगदान

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में वामपंथी विचारधारा का नेतृत्व मुख्य रूप से दो दलों के द्वारा किया गया। यह दल थे– भारत का साम्यवादी दल और कांग्रेस समाजवादी दल।

भारत की साम्यवादी पार्टी की स्थापना के पीछे मजदूर वर्ग की चेतना और संघर्ष का उभार था। भारतीय जनता की साम्राज्यवादी शोषण के विरूद्ध संघर्ष की इच्छा तथा रूस की क्रान्ति प्रेरणा का कार्य कर रही थी। 1920 ई0 में ताशकन्द एम0एम0 राय, के नेतृत्व में साम्यवादी दल की पहली शाखा की स्थापना की गई। बाद में देश की अन्दर स्वतंत्ररूप से धीरे–धीरे साम्यवादी दलों का गठन होने लगा। जैसे बम्बई में एस0ए0 डांगे, बंगाल में मुजफ्फर अहमद, पंजाब में गुलाम हुसैन, मद्रास में सिगारवेल पेटियार ने मुख्य कार्य किये तथा सोशलिस्ट, नवयुग, इंकलाब लेबर किसान बजट का प्रकाशन किया। इस पार्टी ने स्वतंत्रता प्राप्त करना अपना लक्ष्य घोषित किया। आरंभ से ही साम्यवादी आन्दोलन को साम्राज्यवादी दमन का सामना करना पड़ा। पेशावर केस (1922), कानपुर केस (1924), मेरठ केस (1929) के माध्यम से प्रमुख साम्यवादी नेताओं को जेल भर कर सरकार ने उन्हें दबाने का प्रयास किया जिससे वे जनता के बीच सक्रिय रूप से उभर न सके लेकिन इस दल के ठोस कार्यों के के कारण देश में विभिन्न मजदूर और किसान पार्टियों की स्थापना हुई।

1930 के दशक में साम्यवादियों को यह अहसास हुआ कि हमारा सबसे बड़ा वर्ग संघर्ष राष्ट्रीय संग्राम है और कांग्रेस इसका महत्वपूर्ण अंग ही अतः साम्यवादी दल कांग्रेस के अन्दर काम करने के लिए प्रेरित हुआ और उसका यह फैसला सही सिद्ध हुआ। साम्यवादी कांग्रेस संगठन अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल रहा। अखिल भारतीय किसान सभा, अखिल भारतीय छात्र संघ, प्रगतिशील लेखक संघ का गठन इसी काल में हुआ। 1939 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ तो साम्यवादियों ने उसे साम्राज्यवादी युद्ध घोषित किया तथा अधिकाश साम्यवादियों को कैद कर लिया गया। 1942 ई0 के आन्दोलन ने इनकी भूमिका को थोड़ा विवादास्पद बना दिया और अपने सारे प्रयासों के बावजूद यह साम्यवादी एक बड़ी शक्ति के रूप में नहीं उभर सका जिससे कि

राष्ट्रीय आन्दोलन के अंतिम दौर पर कोई प्रभाव डाल सके।

वामपंथ की दूसरी विचारधारा से प्रेरित समाजवादी दल की स्थापना जय प्रकाश नारायण ने 1934 ई0 में की। समाजवादी पार्टी ने अपने कार्यक्रम को कांग्रेस की कीमत पर आगे बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। कांग्रेस की एकता के नाम पर ही उन्होंने 1939 में गांधीवादियों के विरूद्ध सुभाष का साथ नहीं दिया। भारत की साम्यवादी पार्टी से अलग होते हुए कांग्रेस समाजवादी पार्टी एक हिस्सा मार्क्सवाद से अलग नहीं था। उनका एक ही सिद्धान्त था मार्क्सवाद। लेकिन यह मान्यता सभी सदस्यों की नहीं थी। 1936 ई0 में नेहरू को पुनः यूरोप जाने का अवसर मिला और इस बार उन्हें अनेक समाजवादी–साम्यवादी नेताओं ने मुलाकात करने का अवसर मिला तथा उनका विश्वास इस विचारधारा में और दृढ़ हो गया।

1942 ई0 की क्रान्ति में कांग्रेस समाजवादी दल की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही। क्रान्ति के दौरान यातायात के साधनों को नष्ट करने में इस दल का विशेष हाथ रहा। ब्रिटिश सरकार समाजवादी दल के नेताओं पर से रूष्ठ हो गये। ऐसे सभी नेताओं को जेल में डाल दिया गया।

1.4.1 बोध प्रश्न 3

प्रश्न 1 साम्यवादी दल की विचारधारा पर टिप्पणी लिखिए–

प्रश्न 2

a. साम्यवादी दल की स्थापना बम्बई में की गई।

b. कानपुर केस (1924) से साम्यवादी दल का संबंध था।

c. समाजवादी विचारधारा को लाने को श्रेय जवाहर लाल नेहरू को है।

d. साम्यवादियों का झुकाव मार्क्सवाद की ओर था।

1.5 सारांश

पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन के समय किसान वर्ग व मजदूर वर्ग अपनी–अपनी समस्याओं के लिए सत्ता के साथ बराबर संघर्ष करते रहे और आन्दोलन चलते रहे। उनके इन आन्दोलन में उनका साथ समय–समय पर विभिन्न वामपंथी दलों जैसे कांग्रेस साम्यवादी और समाजवादी ने बड़ी बखूबी से निभाया।

1.6 शब्दावली

वामपंथ : राजनीति में वह पक्ष या विचारधारा जो समाज को बदलकर उसके अधिक आर्थिक बराबरी लाना चाहते है। इसका प्रारंभ फ्रांसीसी क्रान्ति से दिखाई पड़ता है।

पूंजीवाद : वह आर्थिक प्रणाली या तंत्र जिसमें उत्पादन के सभी साधनों पर निजी स्वामित्व हो।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(a) गलत (b) सही (c) सही (d) गलत

बोध प्रश्न–2

(a) गलत (b) सही (c) सही (d) गलत

इकाई–4

सत्ता हस्तांतरण का घटनाक्रम

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सन्धि वार्ताओं का क्रम ज्वालामुखी के कगार

1.2.1 शिमला सम्मेलन पर वैवेल योजना

1.2.2 आजाद हिन्द के मुकदमे

1.2.3 नौसेना में विद्रोह

1.3 कैबिनेट मिशन

1.4 सत्ता का हस्तांतरण और माउन्ट वेटेन योजना

1.5 बोध प्रश्न

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम सदियों से चले आ रहे ब्रिटिश शासन के विरोध में चलाये जा रहे आन्दोलन के अन्तिम चरण का अध्ययन करेंगे। साथ ही जानने का प्रयास करेंगे कि वे कौन सी घटनाएं थी जिनके द्वारा यह स्वतंत्रता भारत को प्राप्त हो सकी।

1.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिश शासन के अन्तिम दो वर्षों के दौरान घटित घटनाओं के ताने–बाने से दो बाते स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। पहली ब्रिटिश, कांग्रेसी और लीग के नेताओं के बीच अत्यन्त धीमी गति से चलने वाली बातचीत, जिसके कारण साम्प्रदायिक हिंसा बढ़ती गई जिसकी चरम परिणति हुई उस स्वाधीनता में जिसक साथ दुःखद विभाजन भी जुड़ा था। दूसरा छिटपुट स्थानीय किन्तु अत्यन्त संघर्षपूर्ण एवं एकजुट सार्वजनिक गतिविधियां जैसे आजाद हिन्द फौज के बंदियों की रिहाई का आन्दोलन, नौसेना का विद्रोह, बंगाल का तेभागा विद्रोह आदि।

वास्तव में उपयुक्त जन आन्दोलनों ने भारत में ब्रिटिश राज का बने रहना लगभग असंभव कर दिया था। जन आन्दोलनों में होने वाली ज्यादियों के भय ने कांग्रेसी नेताओं

को बातचीत और समझौते की नीति पर चिपके रहने और अन्ततः स्वतंत्रता की अनिवार्य कीमत के रूप में विभाजन को भी स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। इन साम्राज्यवाद–विरोधी जन आन्दोलना के कारण ही अगस्त 1947 को विभाजित भारत समझौता संभव हुआ।

1.2 ज्वालामुखी के कगार पर भारत

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात 1942 ई0 की अगस्त क्रान्ति की हिंसक घटनाओं का दोषारोपण सरकार ने महात्मा गांधी पर किया। गांधी और कांग्रेस सरकार ने आरोप लगाया कि गांधी ने ही जनता को हिंसात्मक आन्दोलन करने को प्रेरित किया। गांधी जी इतने बड़े आरोप को सहने के लिए तैयार न थे। अतः उन्होंने अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए 21 दिन का उपवास (10 फरवरी–03 मार्च 1943) रखा। लेकिन गांधी जी के बिगड़ते स्वास्थ्य को देखते हुए 1944 ई0 में उन्हें रिहा किया।

जेल से रिहा किये जाने के पश्चात गांधी जी ने पुनः एक बार राजनीतिक गतिरोध दूर करने का प्रयास किया। राज गोपालाचारी योजना को स्वीकृति प्रदान कर उन्होंने साम्प्रदायिकता से उत्पन्न सवैधानिक गतिरोध को दूर करने का प्रयास किया। इस योजना के अनुसार मुस्लिम लीग को भारत की स्वतंत्रता की मांग का समर्थन करना था तथा अन्तरिम सरकार में कांग्रेस में सहयोग करना था। युद्ध के बाद भारत के उत्तर–पश्चिम एवं उत्तर–पूर्व के उन क्षेत्रों में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे वहां जनमत संग्रह द्वारा यह निश्चित करना था कि वे भारत के साथ रहना चाहते है या अलग होना। चाहते है बंटवारे की स्थिति में प्रतिरक्षा, संचार आवागमन एवं जनसंख्या का आदान–प्रदान एक समझौते द्वारा तय किया जायेगा। परन्तु ये सभी शर्तें सत्ता हस्तान्तरण के बाद ही लागू होगी। इन सभी सुझावों साथ गांधी–जिन्ना वार्ता लगभग 2 सप्ताह तक चली लेकिन ये वार्ता असफल हो गई। क्योंकि जिन्ना के अनुसार इस योजना द्वारा मुसलमानों को ''एक अपूर्ण, अंगहीन और दीमक लगा हुआ पाकिस्तान मिलना था जो उन्हें स्वीकार्य नहीं था। इस वार्ता की असफलता ने विभाजन को अवश्यभावी बना दिया। इस घटना के बाद जिन्ना का राजनीतिक महत्व बढ़ गया।

1.2.1 वैवेल योजना

अक्टूबर 1943 ई0 में लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वैवेल भारत के नये वायसराय बनकर आये। इसी मध्य अगस्त 1945 ई0 में द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। चर्चिल सरकार ने लेबर दल के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर पुनः संवैधानिक सुधारों का नाटक के उद्देश्य 1945 ई0 में वैवेल को विचार विमर्श के लिए लंदन बुलाया। 25 जून 1945 ई0 में शिमला में वैवेल की अध्यक्षता में सम्मेलन प्रारंभ हुआ जिसमें कांग्रेस और लीग के अतिरिक्त सिख, दलित वर्ग तथा केन्द्रीय विधान सभा के यूरोपियन दल के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। लेकिन जिन्ना की हठधार्मिता और वैवेल की अदूरदर्शिता से शिमला सम्मेलन असफल रहा।

जुलाई 1945 ई0 में इग्लैण्ड में चुनाव में लेबर पार्टी को बहुमत मिला। अब चर्चिल की जगह एटली प्रधानमंत्री बने। लेबर पार्टी उदार दृष्टिकोण रखती थी। एटली ने भारत में प्रांतीय और केन्द्रीय विधानसभाओं के लिए चुनाव करवाने की घोषणा की। 1945–1946 ई0 के चुनावों में सामान्य स्थानों पर कांग्रेस को और मुसलमानों के लिए आरक्षित स्थानों पर लीग को सफलता मिली। केन्द्रीय विधानसभा में कांग्रेस 57 और लीग को 30 स्थान प्राप्त मिले। इस प्रकार हिन्दु बहुसंख्यक प्रांतों में कांग्रेस तथा बंगाल और सिंध में लीग की सरकार बनी।

1.2.2 आजाद हिन्द फौज के मुकदमें

ब्रिटिश नीति में निर्णायक परिवर्तन 1945–46 ई0 जन दवाब के कारण आय। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया। उन पर विश्वासघात और राजद्रोह का आरोप लगाया गया। नवम्बर 1945 ई0 दिल्ली के लाल किले में कर्नल शहनवाज, कप्तान ढ़िल्लो और लेफ्टिनेंट सहगल पर मुकदमा चलाया गया। देश में सरकार के इस कार्य की तीखी प्रतिक्रिया और विरोध हुआ। उनको सजा दिये जाने के विरोध में जन–प्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गये तथा सारे देश में इन फौजियों की रिहाई की मांग की गई। भूलाभाई देसाई, तेज बहादुर सप्रू, कैलाश नाथ काटजू, जवाहर लाल नेहरू सेना के इन अधिकारियों के मुकदमें की पैरवी कर रहे थे। मुस्लिम लीग ने निरपेक्षता की नीति अपनायी। जबरदस्त आन्दोलन एवं प्रदर्शनों की स्थिति में अब सरकार अवहेलना करने की स्थिति में नहीं रह गई थी। अतः सरकार को इन अधिकारियों को रिहा करना पड़ा। यह भारतीयों की बहुत बड़ी विजय थी।

सैनिक का विद्रोह

सन् 1946 में भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त अशान्त थी। अलग पाकिस्तान की मांग लगातार बढ़ती जा रही थी। जगह–जगह साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। देश में ऐसी स्थिति में जबलपुर में सैनिकों ने और बम्बई में वायुसेना के सैनिकों ने भी हड़ताल का पुलिस ने भी दिल्ली और बिहार में हड़ताल की। लेकिन सबसे बड़ा सैनिक विद्रोह था। बम्बई में रॉयल नेवी (RTN) का सैनिक विद्रोह। इस विद्रोह का मुख्य कारण था युद्ध के दौरान 'असैनिक वर्ग' के लोगों को भर्ती किया जाना। इन सैनिकों में राजनीतिक चेतना थी। नौसैनिकों का युद्ध के दौरान गैर–भारतीयों से सम्पर्क हुआ उन्हें अपनी स्थिति अत्यन्त दयनीय लगी। ये नौसैनिक प्रजातीय भेदभाव से अत्यन्त दुखी थी। आजाद हिन्द के अधिकारियों पर चलाए गए मुकदमों से भी उनमें रोष था। युद्ध के बाद भारत में घटनेवाली प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का भी उन पर प्रभाव पड़ा और वे आन्दोलन की राह पर चल पड़े। सरकार ने इस आन्दोलन को दबाने का प्रयास किया। नौसैनिकों को जनसाधारण और अनेक राजनीतिक दलों का भी समर्थन मिला। इस आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार को अपनी स्थिति डगमगाती नजर आने लगी। अतः उन्होंने भारतीयों के साथ असंवैधानिक

समझौते का प्रयास तीव्र कर दिया। इसी उद्देश्य से मार्च 1946 ई0 कैबिनेट मिशन भारत भेजा गया। मिशन का उद्देश्य भारतीय नेताओं के साथ मिलकर भारत में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को जल्दी संभव बनाना।

1.3 कैबिनेट मिशन

कैबिनेट मिशन ने भारत की स्वतंत्रता को एकदम नजदीक ला दिया। इस योजना का सबसे बड़ा गुण था कि इसने कांग्रेस और लीग की मध्यस्थता करने का प्रयास किया। इस मिशन के निम्न प्रावधान थे।

- ब्रिटिश सरकार और देशी रियासितों का एक संघ बने जिसके हाथों में विदेशी मामले, रक्षा और यातायात संबंधी अधिकार होंगे।
- संघीय विषयों के अतिरिक्त सभी विषय प्रान्तों के हाथ में होंगे।
- देशी रियासतें संघ को सौंपे गये विषयों के अतिरिक्त सभी विषयों पर अपना अधिकार रखेगी।
- प्रस्तावित संघ की एक कार्यकारिणी और विधायिका होगी जिसमें ब्रिटिश सरकार और संयुक्त प्रांत को रखा गया।
- संविधान के अस्तित्व में आते ही अंग्रेजी सर्वोच्चता समाप्त हो जायेगी। देशी रियासतों को अधिकार होगा कि वे संघ से संबंध करे या प्रान्त से।
- विधानसभाओं का ब्रिटेन के साथ शक्ति हस्तान्तरण से उत्पन्न मामलों पर सन्धि करनी होगी।
- पाकिस्तान की मांग का व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण स्वीकार नहीं किया गया।

कैबिनेट मिशन ने देश की स्वतंत्रता को नजदीक कर दिया और देशवासियों के बीच नई आशा का संचार (स्वतंत्रता प्राप्ति) किया। अतः कांग्रेस और लीग दोनों ने ही इस योजना को स्वीकार किया।

लेकिन अन्तरिम सरकार की योजना को कांग्रेस स्वीकार नहीं कर सकी। लीग ने कांग्रेस के बगैर अन्तरिम सरकार गठन करने का प्रस्ताव वायसराय के समक्ष रखा जिसे वायसराय ने ठुकरा दिया। जिससे जिन्ना क्रोधित हो उठे और 29 जून 1946 को जिन्ना ने कैबिनेट मिशन को अस्वीकार कर पाकिस्तान प्राप्ति के लिए 13 अगस्त 1946 ई0 को सीधी कार्यवाही करने की धमकी दी। 8 अगस्त 1946 को कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार के निर्माण की योजना स्वीकार कर ली लेकिन अब जिन्ना ने इंकार कर दिया। 24 अगस्त 1946 ई0 वायसराय ने 14 मंत्रियों वाले मंत्रिमण्डल की घोषणा की। इस अन्तरिम सरकार के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को बनाया गया। अक्टूबर 1946 ई0 में जिन्ना भी इस सरकार में शामिल हो गये।

अन्तरिम सरकार के गतिरोधों को दूर करने के उद्देश्य से लंदन में 3–6 दिसम्बर

1946 ई0 को एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें एटली, वैवेल, नेहरू और जिन्ना ने भाग लिया। लेकिन लीग ने दिस0 1946 में होने वाली संविधान सभा की बैठक का बहिष्कार किया।

1.4 सत्ता का हस्तान्तरण और माउन्टेबेटेन योजना

देश की तत्कालीन स्थिति से चिंतित ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी 1947 को यह घोषणा की अंग्रेज जून 1948 के पूर्व सत्ता भारतीयों को सौंप देंगे। सत्ता हस्तातंरण के कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से लार्ड वैवेल की जगह लार्ड माउन्टबेटेन को नया वायसराय नियुक्त कर भारत भेजा गया।

24 मार्च, 1947 को माउण्टबेटेन ने अपना पद ग्रहण किया। लेकिन उन्होंने शीघ्र ही महसूस किया कि भारत का बंटवारा अवश्यभावी है क्योंकि कांग्रेस और और लीग में मतभेद बहुत ज्यादा बढ़ गया है। आजादी मिलने की संभावना जब सरकार होने लगी तो लोगों पर साम्प्रदायिकता का जुनून सवार हो गया। बड़े स्तर पर साम्प्रदायिक दंगे हुए जिसमें लीग, हिन्दू महासभा और अकाली दल, तीनों ने हिस्सा लिया। लाहौर, अमृतसर तक्षशिला और रावलपिण्डी, बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश आदि जगहों पर भीषण नरसंहार हुआ। गांधी जी एक जगह से दूसरी जगह साम्प्रदायिक एकता कायम करने के लिए घूमते रहे। लेकिन जनता पागल हो उठी थी। बाद में नेहरू और पटेल के दवाब में गांधी जी को विभाजन स्वीकार करना पड़ा। 3 जून 1947 ई0 को माउण्टबेटेन योजना प्रकाशित हुई जिसकी धाराये निम्न थी–

1. भारत का विभाजन भारतीय संघ और पाकिस्तान में कर दिया जाए।
2. इन राज्यों की सीमा निश्चित करने के पूर्व पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश और असम के सिलहट जिले में जनमत संग्रह कराया जाए और सिंध विधानसभा में वोट द्वारा यह निश्चित किया जाए कि वे किसके साथ रहना चाहते है।
3. बंगाल और पंजाब में हिन्दू और मुसलमान बहुसंख्यक जिलों में प्रान्तीय विधानसभा के सदस्यों की अलग–अलग बैठक बुलाई जाए।
4. हिन्दुस्तान की संविधान सभा दो हिस्सों में बांट जायेगी जो अपने–अपने लिए संविधान तैयार करेगी। दोनों राज्यों को डोमिनियम स्टेट्स प्रदान किया जायेगा।
5. देशी रियासतों को यह स्वतंत्रता होगी कि जिसके साथ वे चाहे मिल जाए या अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रख।

इस योजना को ब्रिटिश संसद में पेश किया गया। वहां से यह 16 जुलाई 1947 ई0 को पास हो गया। कांग्रेस और लीग दोनों ने ही इस योजना को स्वीकार कर लिया। भारतीय स्वाधीनता विधेयक के अनुसार भारत को मध्यरात्रि में आजादी मिली। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान का निर्माण हुआ और ठीक 12 बजे रात

को 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने वही भारत के के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटेन तथा प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू बने। संविधान सभा में नेहरू ने घोषणा की। ''आज हमारे दुर्दिन की अवधि समाप्त हो गई। भारत ने पुनः अपने आपको प्राप्त कर लिया है।''

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न –1 वैवेल योजना की असफलता के क्या कारण था ?

....

....

प्रश्न –2 कैबिनेट मिशन की मुख्य धारायें क्या थी ?

....

....

प्रश्न –3 सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया पर 10 लाइन लिखिये ।

....

....

प्रश्न –4 सही/गलत में उत्तर दीजिए–

(a) क्रिप्स मिशन अपने उद्देश्यों में सफल रहा।

(b) ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल भारतीयों का हित चाहते थे।

(c) आजाद हिन्द फौज के मुकदमों में पूरी भारतीय जनता ने ब्रिटिश सरकार का विरोध किया।

(d) विभाजित भारत के पहले गवर्नर जनरल माउन्टवेंटेन बने।

1.6 सारांश

भारत का विभाजन एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। गाँधी, कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार तीनों ही भारत की अखण्डता बनाये रखना चाहती थी। परन्तु बंटवारा रूक नहीं सका। लेकिन निष्पक्ष रूप देखा जाय तो भारत विभाजन के लिए ब्रिटिश राज, कांग्रेस और मुस्लिम लीग तीनों ही उत्तरदायी थी। समय–समय पर तीनों ने जो नीतियां अपनाई वे अन्ततः विभाजन के लिए उत्तरदायी कारण बनी।

1.7 शब्दावली

सम्प्रदायिकता आपसी मतभिन्नता को सम्मान देने के बजाय विरोधाभास का उत्पन्न

होना अथवा ऐसी परिस्थितियां का उत्पन्न होना जिससे व्यक्ति किसी अन्य धर्म के विरोध में अपना व्यक्तव्य प्रस्तुत करें।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

(a) xyr (b) xyr (c) lgh (d) lgh

इकाई–5
आजाद भारत और विश्व राजनीति

रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आजाद भारत के विदेशी सम्बन्ध

1.2.1 भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करने वाले कारक

1.2.2 भारत की विदेश नीति के उद्देश्य

1.2.3 भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्त

1.3 बोध प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आजादी के बाद देश के नेताओं ने किस प्रकार की वैदेशिक नीतियों का पालन किया तथा उनकी विदेश नीति किन सिद्वान्तों से निर्देशित हुई तथा कैसे इन सभी तत्वों ने मिलकर देश की राजनीति को प्रभावित किया, इस पर चर्चा की जायेगी।

1.1 प्रस्तावना

एक राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि हुआ था। दुनिया महायुद्ध की तबाही से अभी बाहर ही निकली थी और उसके सामने पुनर्निर्माण का सवाल प्रमुखता से आ खड़ा हुआ। इस समय यूरोप में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने के प्रयास किये जा रहे थे। उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद बहुत से नये देश विश्व के नक्शे पर दिखायी देने लगे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारत ने जो विदेश नीति अपनायी उनमें हम इन सभी सरोकारों की झलक पाते हैं। वैश्विक स्तर की उन सभी चिन्ताओं के अतिरिक्त देश की अपनी भी समस्यायें थी। ब्रिटिश सरकार अपने पीछे अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की एक पूरी विरासत छोड़ गई थी। बंटवारे के कारण गरीबी, अव्यवस्था अपनी चरम सीमा पर थी। ऐसी स्थिति में भारत ने अपनी विदेश नीति में अन्य सभी देशों की सम्प्रभुता का सम्मान करने और शक्ति कायम करके अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य अपने सामने रखा और देश ने एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपनी भागीदारी शुरू की।

1.2 आजाद भारत के विदेशी सम्बन्ध

आजादी के बाद भारत ने अन्य ताकतवर देशों की मर्जी को ध्यान में रखकर ही अपनी विदेश नीति तैयार की। भारत जब अपनी विदेश नीति तैयार कर रहा था तब शीतयुद्ध प्रारम्भ ही हुआ था और दुनियाँ बड़ी तेजी से दो खेमों में बँटती जा रही थी। एक खेमा संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके समर्थक देशों के प्रभाव में रहा तो दूसरा खेमा सोवियत संघ के प्रभाव में रहा। दोनों खेमों के बीच विश्वस्तर का आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य टकराव जारी था। किसी राष्ट्र की विदेश नीति में उसके आन्तरिक और बाहरी सरोकारों की झलक मिलती है। भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन जिन विचारों से प्रेरित था, उनका असर भारत की विदेश नीति पर भी पड़ा। इसी दौर में संयुक्त राष्ट्र संघ भी अस्तित्व में आया, परमाणु हथियारो का निर्माण शुरू हुआ और चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना हुई। अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया भी इसी दौर में आरम्भ हुई। इन परिस्थितियों में भारत के नेताओं को अपने राष्ट्रीय हित इसी सन्दर्भ के दायरे में साधने थे।

1.2.1 भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करने वाले कारक

गुटबन्दियाँ – आज के युग में विदेश–नीति का निर्धारण किसी भी देश के प्रशासन के लिए बड़ी कठिन समस्या है। सैनिक और आर्थिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्र के लिए तो यह कठिनाई कई गुना बढ़ जाती है। भारत इस सिद्धान्त का अपवाद नहीं हो सकता था।

15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ। उस दिन से भारत स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी विदेश–नीति का निर्धारण करने लगा। लेकिन यह एक अत्यन्त ही कठिन कार्य था। स्वतन्त्र भारत की विदेश–नीति के निर्धारण में अनेक कठिनाइयाँ थीं। सबसे बड़ी समस्या युद्धोपरान्त विश्व का दो विरोधी गुटों में बंटा होना था। अभी द्वितीय विश्व–युद्ध समाप्त नहीं हुआ था कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ में मनमुटाव पैदा हो गया। यह मनमुदाव बढ़ते–बढ़ते ''शीत–युद्ध'' के रूप में बदल गया। संसार दो गुटों में बँट गया एक का नेता सोवियत संघ और दूसरे का संयुक्त राज्य अमेरिका था। इन गुटबन्दियों में स्वतन्त्र भारत का क्या स्थान हो, भारत के विदेश–मंत्री के सामने यह एक प्रमुख प्रश्न था।

भौगोलिक तत्व – भारत की भौगोलिक स्थिति इस समस्या को और भी जटिल बनाती थी। उत्तर भारत साम्यवादी गुट के दो प्रमुख देशों (रूस और चीन) के बिल्कुल निकट है। इसके अतिरिक्त आजादी के शीघ्र बाद भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए पश्चिमी गुट की मर्जी पर आश्रित था। भारत दक्षिण पूर्व और दक्षिण–पश्चिम में समुद्रों से घिरा हुआ है। इतने लम्बे समुद्र तट की रक्षा के लिए बहुत बड़ी नौ–सेना आवश्यक है और इस दृष्टि से हम पूर्णरूप से ब्रिटेन पर आश्रित थे। भारतीय सेना का संगठन भी पश्चिमी ढंग से हुआ था। फिर भारत के दोनों छोरों पर पाकिस्तान स्थित है। काफी मनमुटाव और झगड़े के बाद पाकिस्तान की स्थापना हुई थी और इसलिए भारत और पाकिस्तान का सम्बन्ध सन्तोषजनक नहीं था। अतः भारतीय विदेश–नीति के निर्धारण में इस भौगोलिक स्थिति पर ध्यान देना आवश्यक था।

विचारधाराओं का प्रभाव – भारतीय विदेश–नीति के निर्धारण में एक तीसरी बात को भी शामिल करना था। राष्ट्रीय आन्दोलन के वक्त कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तरह–तरह के आदर्श संसार के सामने प्रस्तुत किये थे। कांग्रेस ने हमेशा विश्वशान्ति और शान्तिपूर्ण सहजीवन का समर्थन तथा साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का घोर विरोध किया था। 1974 में भारत का शासन–सूत्र इसी पार्टी को मिला। सत्तारूढ़ होने के पश्चात् कांग्रेस सरकार को अपनी विदेश–नीति के निर्धारण में उन सभी आदर्शों पर ध्यान देना था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस के कुछ अपने सिद्धान्त थे। कांग्रेस को इन सिद्धान्तों का भी ख्याल रखना था।

तत्कालीन परिस्थिति – तत्कालीन आन्तरिक परिस्थिति विदेश–नीति के निर्धारण में एक बड़ी समस्या थी। देश के विभाजन के पश्चात् साम्प्रदायिक दंगे के कारण देश की स्थिति काफी सोचनीय हो गयी थी। इससे भी अधिक सोचनीय आर्थिक स्थिति थी। देश के बंटवारे से भारत अब एक ऐसा देश नहीं रह गया जो आर्थिक दृष्टि से एक इकाई कहलाये। साम्प्रदायिक दंगे के कारण लाखों की संख्या में शरणार्थी पाकिस्तान से भागकर भारत चले आये। भारत सरकार के सामने उन्हें बसाने और राजी–रोटी देने का सवाल था। इसके तुरन्त बाद भारत सरकार को कश्मीर–युद्ध में फँस जाना पड़ा। इन सब कारणों से देश का आर्थिक जीवन बिल्कुल अस्त–व्यस्त हो गया। देश के मजदूर असन्तुष्ट थे। हड़ताल मामूली बात हो गयी थी। इसके अलावा भारत में विदेशी उपनिवेशों की समस्या थी। अंग्रेज तो भारत छोड़कर चले गये, लेकिन भारत के अन्दर अभी भी फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों के छोटे–छोटे उपनिवेश थे। इन उपनिवेशों का बने रहना स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्रता के लिए खतरे की बात थी।

आर्थिक तत्व – इस सोचनीय परिस्थिति की पृष्ठभूमि में भारत की विदेश–नीति को अपनी नीति निर्धारित करना था। आर्थिक विकास के लिए भारत में राष्ट्रीय साधन और जन–शक्ति का अभाव नहीं था। ये सब चीजें प्रचुर मात्रा में थी। असल सवाल था इन साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करना और इनका उपयोग विदेशी सहायता से ही सम्भव था। भारत विदेशी सहायता का इच्छुक था। दुनिया के सभी विकसित राष्ट्रों से सहयोग प्राप्त कर भारत अपनी उन्नति चाहता था। इस दृष्टिकोण से भारत के लिए सभी देशों के साथ मैत्री संबंध रखना आवश्यक था।

पिछड़े राष्ट्रों की उन्नति के लिए शान्ति कायम रखना अति आवश्यक शर्त है। भारत की उन्नति तभी सम्भव थी जब संसार में शान्ति बनी रहती। अतएव विश्व–शान्ति भारत के लिए जीवन–मरण का प्रश्न बन गया। भारतीय विदेश–नीति के निर्धारण के प्रारम्भिक इतिहास में हमें कई बातों पर ध्यान देना होगा।

विदेश–नीति की विशेषताएँ – सितम्बर, 1946 में अन्तरिम सरकार के गठन के बाद ही भारतीय विदेश–नीति विकसित होने लगी। 26 सितम्बर को एक प्रेस–सम्मेलन में बोलते हुए पं0 नेहरू ने इसकी एक रूपरेखा निर्धारित की। सरकारी तौर पर भारत की विदेश

नीति से सम्बन्धित यह पहली महत्वपूर्ण घोषणा थी। पं0 नेहरू ने कहा, स्वतन्त्र भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्वतन्त्र नीति का अवलम्बन करेगा और किसी भी गुट मे शामिल नहीं होगा। भारत दुनिया के किसी भी भाग में उपनिवेशवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध करेगा और विश्व–शान्ति के समर्थक देशों के साथ सहयोग करेगा। 1947 के आरम्भ में, जब भारत पूर्णतया स्वतन्त्र भी नहीं हुआ था, एशियाई देशों का एक सम्मेलन दिल्ली में हुआ। यह इसी नीति का परिणाम था। पंडित नेहरू के उक्त वक्तव्य के आधार पर ही स्वतन्त्र भारत की विदेश–नीति विकसित हुई। अतः अब हम भारतीय विदेश–नीति की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करेंगे।

भारतीय विदेश–नीति के अध्ययन के आधार पर हम निम्नलिखित विशेषताएँ पाते हैं– (1) वर्तमान गुटबन्दियों की विश्व–राजनीति में असंलग्नता की नीति का अवलम्बन, (2) शान्तिपूर्ण सह–जीवन के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए विश्व–शान्ति कायम रखने में सहयोग देना (3) साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध तथा पददलित राष्ट्रों की सहायता, (4) पारम्परिक आर्थिक तथा जनहितों के रक्षार्थ एशियाई–अफ्रीकी देशों को संगठित करना तथा (5) संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा उससे सम्बद्ध उसकी अन्य संस्थाओं का समर्थन तथा सहयोग।

1.2.2 भारत की विदेश नीति के उद्देश्य

भारत की विदेश नीति की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए श्री जवाहरलाल नेहरू ने सितंबर 1946 में एक प्रेस सम्मेलन में कहा था–''वैदेशिक संबंधों के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटों की खींचतान से दूर रहते हुए संसार के सभी पराधीन राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का अधिकार दिलाने तथा जातीय भेदभाव की नीति का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन का प्रयत्न करेगा। साथ ही वह दुनिया के शांतिप्रिय राष्ट्रों के साथ मिलकर अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के प्रसार के लिए भी निरंतर प्रयत्नशील रहेगा।'' नेहरू का यह कथन आज भी भारत की विदेश नीति का आधार स्तंभ है। भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 में कर दिया गया, जिसके अनुसार राज्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्वक संबंधों को बनाए रखने का प्रयास करेगा, राज्य अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को पंच फैसलों द्वारा निपटाने की पद्धति को बढ़ावा देगा।

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति को राष्ट्रीय हित के संदर्भ में देखा जाना चाहिए क्योंकि विदेश नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना ही है। भारत की विदेश नीति के प्रमुख आदर्श निम्न हैं –

1. राष्ट्र की समृद्धि एवं विकास, भारतीय विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य है।
2. अंतर्राष्ट्रीय नीति और सुरक्षा के लिए हर संभव प्रयत्न करना।
3. अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाए जाने की नीति को प्रत्येक संभव

तरीके से प्रोत्साहन देना।

4. भारत को दक्षिण एशिया में शक्ति के रूप में स्थापित करना तथा एशिया को महाशक्ति के रूप में उभारना।

5. सभी राज्यें और राष्ट्रों और राष्ट्रों के बीच परस्पर सम्मानपूर्ण संबंध बनाए रखना।

6. अंतर्राष्ट्रीय कानून के प्रति और विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों में संधियों के पालन के प्रति आस्था बनाए रखना।

7. अफ्रीकी, एशियाई देशों के साथ सहयोग एवं परस्पर सहमति को बढ़ावा देना ताकि विश्व राजनीति में अफ्रीएशियाई देशों को उचित स्थान मिल सके।

8. उपनिवेशवाद/साम्राज्यवाद एवं जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करना एवं विश्वशांति के लिए जनमत तैयार करना।

9. सैनिक गुटबंदियों और सैनिक समझौतों से अपने आपको अलग रखना तथा ऐसी गुटबंदी को निरूत्साहित करना।

10. उन देशों की जनता की सक्रिय रूप से सहायता करना जो उपनिवेशवाद, जातिवाद और साम्राज्यवाद से पीड़ित हों।

11. हर प्रकार की साम्राज्यवादी भावना को निरूत्साहित करना।

12. उन देशों की जनता की सक्रिय रूप से सहायता करना जो उपनिवेशवाद, जातिवाद और साम्राज्यवाद से पीड़ित हों।

13. संयुक्त राष्ट्रसंघ में सक्रिय भूमिका निभाना।

14. गुटनिरपेक्ष आंदोलन एवं ग्रुप ऑफ–77 को नेतृत्व प्रदान करना।

15. निःशस्त्रीकरण की दिशा में किए गए प्रयासों को प्रोत्साहित करना।

16. नाभिकीय एवं आणविक हथियारों के निर्माण एवं उपयोग का विरोध करना।

17. नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बढ़ावा देना।

18. क्षेत्रीय सहयोग की वृद्धि करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों से यह बात स्पष्ट स्पष्ट होती है कि भारत की विदेश नीति में मैत्रीपूर्ण संबंध, शांति एवं समानता के सिद्धांतों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। भारत ने सभी के साथ सहयोग एवं सद्भावना की नीति पर चलने का निश्चय किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत की विदेश नीति के प्रमुख निर्माता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेश नीति के तीन आधार स्तंभ बनाए–शांति, मित्रता और समानता।

1.2.3 भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्त

सितंबर 1946 में अंतरिम सरकार के गठन के पश्चात् ही भारतीय विदेश नीति

विकसित होने लगी। पं0 नेहरू ने स्पष्ट कहा कि स्वतंत्र भारत अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्वतंत्र नीति को अपनाएगा और किसी गुट में सम्मिलित नहीं होगा। भारत संसार के किसी भी भाग में उपनिवेशवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध करेगा और विश्वशांति के समर्थक देशों के साथ सहयोग करेगा। पं0 नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। यदि स्वाधीन भारत की विदेश नीति का समीक्षात्मक विश्लेषण करें तो निम्नांकित सिद्धांत हमारे सामने परिलक्षित होते हैं –

1. **गुटनिरपेक्षता की नीति –** विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण असंलग्नता अथवा गुटनिरपेक्षता का रहा है। इसे भारतीय विदेश नीति का सारतत्व कहा जाता है। गुटनिरपेक्षता गुटों की पूर्व उपस्थिति का संकेत देती है। जब भारत स्वाधीन हुआ तो उसने पाया कि विश्व की राजनीति दो विरोधी गुटों में विभाजित है। एक गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका और दूसरे का सोवियत संघ था। विश्व के अधिकांश राष्ट्र दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गये और शीतयुद्ध आरंभ हो गया। शीतयुद्ध का क्षेत्र विस्तृत होने लगा और इसके साथ–साथ एक तीसरे महासमर की तैयारी होने लगी। स्वतंत्र भारत के लिए यह एक विकट समस्या थी कि इस स्थिति में वह क्या करे? ऐसी स्थिति में भारत या तो दोनों में से किसी एक का साथ पकड़ सकता था अथवा दोनों से पृथक रह सकता था। भारत की नीति निर्धारक कहने लगे कि वे संसार के किसी भी गुट में शामिल नहीं होंगे। गुटबंदी में शामिल होना न तो भारत के हित में था न संसार के। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सभी सवालों पर वे गुटनिरपेक्षता की नीति का अवलम्बन करेंगे।

   भारत ने दोनों गुटों से अलग रहने की जो नीति अपर्ना उसे 'गुटनिरपेक्षता' की नीति के नाम से जाना जाता है। इस नीति का अभिप्राय है भारत वर्तमान विश्व राजनीति के दोनों गुटों मे से किसी में भी शामिल नहीं होगा, किंतु अलग रहते हुए भी उसने मैत्री संबंध बनाए रखने की चेष्टा करेगा और उनकी बिना शर्त सहायता से अपने विकास में तत्पर रहेगा भारत की गुटनिरपेक्षता एक विधेयात्मक, सक्रिय और रचनात्मक नीति है। इसका ध्येय किसी दूसरे गुट का निर्माण करना हीं वरन् दो विरोधी गुटों के बीच संतुलन बनाना है। असंलग्नता की यह नीति सैनिक गुटों से अपने आपकों दूर रखती है, किन्तु पड़ोसी व अन्य राष्ट्रों के बीच अन्य सब प्रकार के सहयोग को प्रोत्साहन देती है। इसका अर्थ सकारात्मक है।

   गुटनिरपेक्षता का अभिप्राय है विश्व के किसी भी गुट के साथ हुआ न होना, अर्थात् नाटो, सीटो या वारसा जैसे किसी सैनिक गठबंधन में शामिल न होना। यह ऐसी नीति है जो विश्व में स्वतंत्र नीति का गमन करती है। और हर समस्या पर अपने विचार प्रकट करने और सोचने के लिए स्वतंत्र समझती है। जैसे –

   1. गुटों से अलग रहना।

2. शीतयुद्ध में हिस्सा न लेना।

3. यह तटस्थता नहीं है।

4. प्रत्येक अंतराष्ट्रीय समस्या पर गुण–दोषों के आधार पर निर्णय लेना।

2. शान्ति की विदेश नीति – भारत की विदेश नीति सदैव ही विश्वशांति की समर्थक रही है। भारत ने प्रारंभ से ही ये महसूस किया है कि युद्ध और संघर्ष नवोदित भारत के आर्थिक और राजनीतिक विकास को बाधित करने वाला है।1956 में अरब घोषणा इजराइल युद्ध के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था बुरी तुरह लड़खड़ाने लगी शांतिवादी नीति की करते हुए पं. नेहरू ने कहा कि ''हमारी पहली नीति तो यह होनी चाहिए कि हम ऐसी भीषण आपत्ति को घटित होने से रोकें, दूसरी नीति इससे बचने की होनी और तीसरी नीति भी स्थिति बचाने की होनी चाहिए और यदि युद्ध छिड़ जाये तो हम उसे रोकने में समर्थ हो सकें। अतः अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे के लिए भारत शांतिमय साधनों, द्विपक्षीय या त्रिपक्षीय वार्ताओं व समझौतों, मध्यस्थता, पंचनिर्णय आदि पर बल देता है। उदाहरणतः स्वतंत्रता प्राप्ति के समय नदियों के पानी पर चल रहे भारत पाकिस्तान विवाद के कारण जो मन में तनाव था उसे 1960 में 'सिंध–जल संधि' द्वारा हल किया गया। कच्छ के प्रश्न को लेकर जब 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया तो भारत ने समस्या के शांतिपूर्ण हल के लिए 'त्रिसदस्यीय ट्रिब्यूनल' स्थापित करना स्वीकार कर लिया और भारतीय जनता के कड़े विरोध के बाद भी भारत सरकार ने राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर संबंधों को सुधारने हेतु ट्रिब्यूनल द्वारा दिये गये निर्णय को स्वीकार कर लिया 1966 में ताशकंद समझौते में भारत पाकिस्तान को वे क्षेत्र लौटा दिये जो भारत की सुरक्षा के लिए आवश्यक थे। 1971 के युद्ध के बाद भी पाकिस्तान के प्रति सद्भावना का पक्ष अपनाया और 1972 में शिमला में द्विपक्षीय वार्ताओं पर बल दिया। अप्रैल 1974 के त्रिपक्षीय समझौते द्वारा युद्धबंदियों को भी लौटा दिया जिन पर बंगलादेश अमानुषिक हत्याओं के मुकदमें चलाना चाहता था।

भारत ने अन्य पड़ोसी देशें के साथ भी विवादों का निपटारा शांतिमय साधनों से किया। श्रीलंका से चल रहे विवादों को शांतिमय तरीकों से हल किया गया। श्रीलंका में रहने वाले भारतीयों के संबंध में 1954, 1964 और 1974 में समझौते हुए। 1987 के राजीव–जयवर्द्धने समझौते के अंतर्गत भारतीय शांतिसेना भारत ने श्रीलंका भेजा। बंगलादेश के साथ भी सीमा संबंधी मतभेदों का पारस्परिक समझौतों द्वारा हल किया गया। गंगा पानी के बंटवारे के लिए भारत और बंगलादेश में 29 सितंबर 1977 को 'फरक्का समझौता' हुआ। भारत चीन के साथ भी विवादों को पारस्परिक वार्ताओं से निपटारा चाहता है।

भारत शुरू में ही विश्वशांति के लिए शस्त्रीकरण को आवश्यक मानता रहता है। यही कारण है कि जब 1963 में आणविक परीक्षण निषेध संधि हुई तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलंब इस संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। परंतु भारत ने 1968 की परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया क्योंकि अमेरिका इसके द्वारा विश्व में परमाणु शक्ति पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहता है। और छोटे और अल्पविकसित राष्ट्रों को अपनी दया पर निर्भर बनाना चाहता है। निःसंदेह 1974 एवं 1998 में भारत ने अणु शक्ति का परीक्षण किया, परंतु भारत ने अणु शक्ति का परीक्षण शांतिमय कार्यों के लिए किया।

3. **मैत्री और सह–अस्तित्व की नीति** – भारत की विदेश नीति मैत्री और सह–अस्तित्त्व पर जोर देती है। भारत की यह धारणा रही है कि विश्व में परस्पर विरोधी विचारधाराओं में सह–अस्तित्त्व की भावना पैदा हों। यदि सह–अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं किया जाता तो आणविक शस्त्रों से समूची दुनिया का ही विनाश हो जाएगा। इसी कारण भारत ने अधिक से अधिक राष्ट्रों के साथ मैत्री संधियाँ और व्यावहारिक समझौते किए इन संधियों में– भारत–नेपाल संधि, भारत–इराक मैत्री, भारत–जापान शांति संधि, भारत–मिस्र शांति संधि, भारत सोवियत मैत्री संधि, भारत–बंगलादेश मैत्र संधि उल्लेखनीय है। पं. नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि ''विश्व में आज अलगाव के लिए स्थान नहीं है। हम दूसरों से अलग रहकर जिन्दा नहीं रह सकते। हमें या तो सहयोग करना चाहिए था या युद्ध। हम शांति चाहते हैं। अपना वश चलते हम दूसरे राष्ट्र के साथ लड़ाई नहीं चाहतें।''

4. **विरोध गुट के बीच सेतुबंध बनाने की नीति** – भारत अपनी विदेश नीति के माध्यम से विश्व मे परस्पर विरोधी गुटों के मध्य सेतुबंध का कार्य करता रहा है। अपनी गुटनिरपेक्ष नीति के कारण भारत दोनों गुटों के बीच उनको एकजुट करने वाली कड़ी के रूप में कार्य कर सकने की एक विशिष्ट स्थिति में रहा है। दोनों गुटों के मुकाबले में भारत की आर्थिकी स्थिति और सैनिक स्थिति काफी कमजोर रही हे। किंतु गुटों में शक्ति संतुलन होने के कारण उन दोनों के बीच विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में मध्यस्थता का कार्य करने की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत उपयुक्त रही है। अपनी इस स्थिति के कारण अब तक उसने कोरिया, हिन्द चीन, कांगों आदि समस्याओं के समाधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया है और दोनों गुटों को समीप लाकर, विश्व–शांति का आसन्न खतरा दूर किया है।

5. **साधनों की पवित्रता की नीति** – भारत की नीति अवसरवादी और अनैतिक नहीं रही है। भारत की विदेश नीति महात्मा गाँधी के इस मत से बहुत प्रभावित है कि न केवल उद्देश्य वरन् उसकी प्राप्ति के साधन भी पवित्र होने चाहिए। स्वयं भारतीय संविधान में कहा गया है कि– ''(1) राज्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का

(2) राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का, (3) संगठित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि के बंधनों के प्रति आदर बढ़ाने का, (4) अंतर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निपटाने का प्रयास करेगा। अगर इनमें भारत का विश्वास न होता तो 1965 का 'ताशकंद समझौता' एवं 1972 का 'शिमला समझौता' कभी नहीं होता। भारत ने न केवल पाकिस्तान के युद्धबंदी ही लौटा दिये अपितु युद्ध में जीती हुई भूमि भी लौटा दी। भारत हथियारों का प्रयोग केवल आत्मरक्षा में ही करना उपयुक्त मानता है। भारत मानता है कि साधन अच्छा है तो साध्य भी निश्चित रूप से अच्छा ही होगा।

6. **पंचशील पर जोर देने वाली नीति** – 'पंचशील' के पांच सिद्धांतों का प्रतिपादन भी भारत की शांतिप्रियता का द्योतक है। 1954 के बाद से भारत की विदेश नीति को 'पंचशील' के सिद्धांतों ने एक नई दिशा दी। 'पंचशील' से तात्पर्य है– आचरण के पाँच सिद्धान्त। जिस प्रकार बौद्ध धर्म में ये व्रत एक व्यक्ति के लिए होता है उसी प्रकार आधुनिक पंचशील के सिद्धान्तों के द्वारा राष्ट्रों के लिए एक दूसरे के साथ आचरण के संबंध में निश्चित किये गये ये सिद्धान्त निम्न हैं–

(1) एक–दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सर्वोच्च सत्ता के लिए पारंपरिक सम्मान की भावना।

(2) अनाक्रमण की नीति।

(3) समानता एवं पारस्परिक लाभ।

(4) शांतिपूर्ण सह–अस्तित्त्व।

(5) एक दूसरे के आन्तरिक मामलें में हस्तक्षेप।

वैश्विक स्तर पर पंचशील के इन सिद्धांतों का प्रतिपादन सबसे पहले 29 अप्रैल 1954 को तिब्बत के संबंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझौते में किया गया था। 28 जून 1954 को चीन के प्रधानमंत्री चाऊ–एन–लाई तथा भारत के प्रधानमंत्री नेहरू ने 'पंचशील' में अपने विश्वास को दोहराया। एशिया के प्रायः सभी देशों ने 'पंचशील' के सिद्धांतों को अपनाया। अप्रैल 1955 में ''बाण्डुग सम्मेलन'' में 'पंचशील' के सिद्धांतों को पुनः विस्तृत रूप दिया गया। ''बाण्डुग सम्मेलन'' के बाद विश्व के अधिसंख्य राष्ट्रों 'पंचशील' सिद्धांत को मान्यता दी। सन् 1955 में ऑस्ट्रिया, सोवियतस संघ, पोलेण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया ने भी पंचशील को मान्यता दी। 14 दिसंबर 1959 को 82 राष्ट्रो की संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भारत द्वारा प्रस्तुत किए गये 'पंचशील' के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार 'पंचशील' को संपूर्ण विश्व की मान्यता मिल गई। पं. नेहरू ने स्पष्ट कहा था कि ''यदि इन सिद्धांतों को सभी देश मान्यता दे तो आधुनिक विश्व की अनेक

समस्याओं का निदान हो जायेगा।

7. **साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध** – भारत साम्राज्यवाद के दुष्परिणामों का स्वयं भुक्तभोगी रहा है, अतः उसके लिए साम्राज्यवाद का विरोध करना स्वभाविक है। प्रजातीय विभेद के कारण भी अंतर्राष्ट्रीय वातावरण दूषित होता है और युद्ध के कारण उत्पन्न होते है। अतएव भारत इन दोनों का विरोध करता रहा है।, 'यही कारण है कि विश्व में जहाँ भी राष्ट्रवादी आंदोलन विदेशी दासता से मुक्ति पाने के लिए हुए, भारत ने खुलकर उनका समर्थन किया। इण्डोनेशिया पर जब हॉलैण्ड ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पुनः अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया तो भारत ने इसका कड़ा विरोध किया। इसके लिए उसने एशियाई देशों को संगठित किया और संयुक्त राष्ट्रसंघ में इस मामलें को प्रस्तुत किया। 1956 में इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिलकर मिस्र पर आक्रमण कर दिया। वे स्वेज नहर को हड़प लेना चाहते थे। भारत ने इस नवीन साम्राज्यवाद का जमकर विरोध किया। इसी प्रकार भारत ने लीबिया, ट्यूनेशिया, मोरक्को, मलाया, अल्जीरिया आदि देशों के स्वतंत्रता संग्राम का पूरा समर्थन किया। पश्चिमी एशिया में भारत ने डॉलर साम्राज्यवाद का सर्वदा विरोध किया और अरब राष्ट्रों का साथ दिया। हिन्द चीन (वियतनाम, कंपूचिया, लाओस) में अमरीकी हस्तक्षेप का भारत ने सर्वदा विरोध किया है। बंगलादेश की स्वतंत्रता में तो भारत की भूमिका एक 'मुक्तिदाता' के रूप में रही है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में उपनिवेशवाद के खिलाफ आवाज उठाता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यास परिषद् में भी भारत ने सक्रिय भूमिका निभाई और इस बात पर बल दिया कि स्वशासन न करने वाले प्रदेशों का शासन चार्टर के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

    भारत ने प्रजाति विभेद का इतना विरोधी था कि उसने दक्षिणी अफ्रीका के साथ अपने संबंध भी विच्छेद कर लिए।

8. **संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन करने वाली नीति** – भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्थापक सदस्य है। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ को विश्वशांति स्थापित करने वाला एक उचित संघ मानता है। भारत के लिए संघ राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का एक प्रमुख प्रभावशाली एवं उचित मार्ग है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों और विशेष अभिकरणों में सक्रिय रूप से भाग लेकर महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। भारत ने आज तक कभी अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन नहीं किया और संयुक्त राष्ट्रसंघ के आदेशों का यथोचित सम्मान किया। कोरिया और हिन्द चीन में शांति स्थापित करने के लिए भारत ने संघ की मदद की। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के आह्वान पर कांगों में शांति स्थापना हेतु सेनाएँ भेजी जिन्होंनें उस देश की एकता को सुरक्षित रखा। संयुक्त राष्ट्र संघ को भारत ने जो सहयोग दिया उसी के कारण 1991 में

वह पाँचवी बार सुरक्षा परिषद् का अस्थायी सदस्य बना। 1968 में 'अंकटाट' का द्वितीय सम्मेलन बुलाकर भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित की। पं0 नेहरू ने स्वीकार किया कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ के बिना आधुनिक विश्व की कल्पना नहीं कर सकते हैं।

9. **अफ्रेशियाई एकता** – भारत की विदेश नीति जहाँ साम्राज्यवाद से स्वतन्त्र होने वाले देशों की स्वतंत्रता को स्थायी बनाने की रही है,। उसकी यह इच्छा भी रही है कि ये देश पारस्परिक सहयोग द्वारा अपना आर्थिक और तकनीकी विकास करे। एशियाई–अफ्रीकी एकता को ठोस रूप देने के लिए भारत द्वारा मार्च 1947 में दिल्ली में एक एशियाई सम्मेलन बुलाया गया। दूसरा सम्मेलन इण्डोनेशिया के नगर बाण्डुग में अफ्रोशियाई राष्ट्रों ने भाग लिया जिसमें उपनिवेशवाद का विरोध किया गया, पंचशील के सिद्धान्तों में आस्था व्यक्त करते हुए उनका विस्तार किया गया और एक दूसरे के साथ सहयोग के वचन दिये। वर्तमान समय में भारत की पहल पर संयुक्त राष्ट्र संघ में एशियाई–अफ्रीकी एकता ने एक ठोस रूप ले लिया और यह स्पष्ट कर दिया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन महाशक्तियों के संकेतों पर नहीं चल सकता।

1.3 बोध प्रश्न

प्रश्न–1 गुटनिरपेक्षता की नीति पर दस पंक्तियाँ लिखिए ?

प्रश्न–2 पंचशील सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–3 निम्न प्रश्नों के आगे सही/गलत का चिन्ह लगाये।

(a) भारत ने पंचशील सिद्धान्तों में विश्वास प्रकट किया।

(b) भारत ने संयुक्त राष्ट संघ के माध्यम से कश्मीर प्राप्त करने का प्रयास किया।

(c) भारत ने प्रारम्भ से ही अमेरिका से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उसके लिए गुट में शामिल हो गया।

(d) भारत ने तठस्थ के सक्रियता की नीति अपनायी।

1.4 सारांश

आजादी के प्रारम्भिक बीस वर्षों तक भारत का इतिहास भारतीयों की पूर्ण सफलता का इतिहास नहीं है। लेकिन यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारत ने अपनी विदेशनीति में अपनी प्रगति के लिए ठोस कदम उठाये जिससे भारत का नवनिर्माण सम्भव हो सका। साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत ने दुर्बल होत हुए भी शक्तिशाली राष्ट्रों के

विरोध में प्रजातन्त्र, नैतिकता, न्याय निस्पक्षता, समाजवाद, प्रेम, सहयोग, विश्व–शक्ति के महान–आदर्शों को विश्व के सामने रखा।

1.5 शब्दावली

शीतयुद्ध – द्वितीय विश्व युद्ध के काल में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच उत्पन्न तनाव की स्थिति को शीतयुद्ध के नाम से जाना जाता है।

गुटनिरपेक्षता – एक अवधारणा जिससे सम्बन्धित देशों ने निश्चय किया कि वे विश्व के किसी भी एक शक्ति (अमेरिका या रूस) के साथ न रह कर तटस्थ रहेगें।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

(a) सही

(b) सही

(c) गलत

(d) सही

Notes

Notes